भारत-दर्पण-ग्रंथमाला
ग्रंथ-संख्या—५

—विक्रेता—

भारती-भंडार
लीडर प्रेस, प्रयाग

सस्ता साहित्य-मंडल
कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण
सं० २००७ वि०
मूल्य १२)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

भूमिका

कुछ वर्षों से भारतीय सस्कृति का नाम देश विदेशो में फैल रहा है और लोग उस संस्कृति के सब अंगो को जानने के लिए उत्सुक हैं। पर अभाग्यवश भारतीय सस्कृति का अर्थ अभी तक इस देश की गूढ विचारधाराओं और नाना मत मतातरों तक ही सीमित है। भारतीय दर्शनो और धर्मो के प्रति इस अनुराग का नतीजा यह हुआ है कि सस्कृति के दूसरे अंग अछूते ही छूट गये हैं। विद्वानो ने भारतीय कला का, जो हमारी प्राचीन सस्कृति का एक विशिष्ट अंग है, कुछ न कुछ अध्ययन किया है, पर उसके समझाने में कुछ विद्वानो द्वारा छायावादी विचारो का आश्रय लेने से, हम उस कला में केवल अपनी दार्शनिक मनोवृत्तियो का ही प्रतिविम्ब देखने लगे हैं। कला के इस दार्शनिक रूप की विचारधारा इतने कठिन शब्दो में व्यक्त की जाती है कि विना भारतीय दर्शन के ज्ञान के वह समझी तक नहीं जा सकती। कला के दार्शनिक सिद्धांतो पर इतना अधिक जोर देने का नतीजा यह हुआ है कि 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को ले कर हम भारतीय कला की समीक्षा करने में डरते हैं। दर्शन की पेचीदा विचारधाराओ में डूब कर कला अपना निजत्व खो बैठती है। कला की दार्शनिक पृष्ठिका भारतीय कला के उस महत् उद्देश्य की अवहेलना करती है, जिसके अनुसार लोक जनित कला सब के जीवन और भावनाओं का प्रतिविम्व है और जिसके द्वारा रसानुभूति करने का सब को अधिकार है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अज्ञात के प्रति आध्यात्मिक विचार ही भारतीय सस्कृति है? कदापि नहीं। भारतीय द्रष्टाओं के मतानुसार जीवन का परम ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है; इन चारो के सतुलित और सम्मिलित प्रयोग से ही हम पूर्णता और विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं। अगर हम केवल धर्म और मोक्ष के साधन में ही लगे रहें, तो इसके माने होते हैं कि जीवन में अर्थ और काम की कोई महत्ता ही नहीं है। ऐसा करने से जीवन एकागी वन जाता है और उस पूर्णता और गौरव तक नहीं पहुँच सकता, जो आदर्श जीवन के लक्ष्य है।

इसमें संदेह नहीं कि दर्शन और धार्मिक तर्क भारतीय जीवन को बहुत प्रिय थे और जहां तक सूक्ष्म से सूक्ष्म आधिदैविक विचारधाराओ के सृजन और मनन का संबंध है, भारतीय संसार के बड़े से बड़े दर्शनो से टक्कर लेते हुए आगे निकल जाते हैं। पर साथ ही साथ भारतीय जीवन और उसके आधि-भौतिक साधनो से भी प्रेम करते थे। सुसज्जित महल, करीनेदार नगर, अनेक जातियों और वर्णो वाले दास-दासियो से युक्त राज सभाएं, वादक और नर्तक, चमचमाते हुए गहने और अनेक तरह की वेश-भूषाएं और कपड़े, प्रसाधन के लिए अनेक भाति के गंध द्रव्य, ये सब भी तो भारतीय संस्कृति और जीवन के प्रतीक थे। दार्शनिको को सभ्यता के इन बाह्य प्रतीको में अस्थिरता भले ही देख पडती हो, लेकिन सासारिकता में पड़े हुए एक साधारण जन के लिए तो सभ्यता के ये प्रतीक सत्य और सुन्दर देख पड़ते हैं। सभ्यता के इन बाह्य प्रतीको से हम इतिहास की सूखी हड्डियों में जान डाल सकते हैं। रूखी घटनाओ के विवरण से यह सभव नहीं है।

भारतीय संस्कृति की पूरी तस्वीर खींचने के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम उसके भौतिक पहलुओं को अच्छी तरह से जाच-पड़ताल करें। इस जाच पड़ताल के लिए संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश में काफी सामग्री है। इन से मिले विवरणो की सत्यता हम पुरातत्व, मूर्तियो और चित्रों से जांच

सकते हैं । इस सबंध में हम यह कह देना उचित उमझते हैं कि हमें साहित्य को सास्कृतिक इतिहास में सब से ऊँचा स्थान नहीं देना चाहिए । एक लेखक चाहे वह कितना ही विद्वान् अथवा सूक्ष्म-दर्शक हो, एक वस्तु विशेष का विवरण हमारे सामने उतनी खूबी से नहीं रख सकता, जितनी सफाई या सुदरता के साथ एक मूर्ति, स्तर अथवा चित्रकार। साहित्यिक पुरातत्व का अपने क्षेत्र में महत्व है, लेकिन और बच्चे सबूतों के रहते हुए उसको प्रधानता न देना ही श्रेयस्कर है ।

इस पुस्तक का उद्देश्य प्राचीन भारत के सास्कृतिक जीवन का एक पहलू अर्थात् वेश-भूषा का इतिहास लोगो के सामने रखना है । अभी तक विद्वानो ने भारतीय सस्कृति के इस पहलू पर ध्यान तक नहीं दिया है, क्योंकि उनकी राय में भारतीय वेश-भूषा में विकास क्रम नहीं है। आज धोती, चादर और पगडी पहनी जाती है, वही दो हजार बरस पहले भी पहनी जाती थी, फिर ऐसी रूढ़िगत वेश-भूषा का इतिहास ही क्या ? भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की ओर विद्वानों का ध्यान न देने का एक कारण यह भी था कि लोगों का यह विश्वास था और अब भी है कि सिले कपडे इस देश में १६ वीं शताब्दी में मुसलमान लाए । विद्वानो के भारतीय वेश भूषा के सबध में दोनो विचार भ्रामक हैं । यह सही है कि अब तक भारतीय धोती, चादर, दुपट्टे और पगडी जो हमारे पहरावे में दो हजार बरस पहले प्रचलित थीं, पहनते हैं, लेकिन प्राचीन और आधुनिक वेश-भूषाओ की समानता यहीं खतम हो जाती है। कौन कह सकता है कि आज की धोती और दो हजार बरस पहले की धोती एक ही तरह से पहनी जाती थी अथवा आज की पगडी और तव की पगडी एक सी है ? अब की साड़ी और तव की साडी में भी बहुत बडा अतर है। ठीक बात तो यह है कि भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग में कपडे पहरने का ढग बदल जाता है। सिले कपडों का भी यही हाल है । कम से कम वैदिक युग से लेकर ७ वीं सदी तक सिले कपडो के उल्लेख साहित्य में मिलते हैं और उनका अकन भी बहुधा अर्धचित्रों और चित्रो में हुआ है। बात यह है कि इस उष्णता-प्रधान देश में धोती चादर ही आरामदेह और स्वास्थ्य वर्धक पहरावा था और उसे लोग चाव से पहनते थे, पर इसके यह माने नहीं कि सिले वस्त्र कभी पहने ही नहीं जाते थे । स्त्रियां तो अक्सर कचुक या चोली पहनतीं थीं । विदेशी सपर्क से सिले कपडो का इस देश में और अधिक प्रचार बढ़ा, पर जन-साधारण अपनी धोती चादर को कभी न छोड सका । इस बात को मानने का भी पर्याप्त कारण है कि बहुत प्राचीन काल से गधार और पजाब में लोग ठडक की वजह से सिले वस्त्र पहनते थे और इन सिले वस्त्रों में हम यूनानी, ईरानी और मध्य एशिया का काफी प्रभाव देखते है क्योकि इन प्रान्तो का उपरोक्त जातियो से बहुत प्राचीन काल से घनिष्ट सबध रहा और ऐसी अवस्था में दोनों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का होना स्वाभाविक था।

वेश भूषा के इतिहास में भारतीय वस्त्रो का भी इतिहास आ जाता है, क्योकि प्राचीन पहरावो में हमारी दिलचस्पी और बढ जाती है जब हम ठीक-ठीक जान लेते है कि वे किन कपडो से बनते थे और वे सादे होते थे अथवा नक्काशीदार । भारत के प्राचीन वस्त्र-व्यवसाय के इतिहास के लिए भी ऐसी जाच-पडताल बहुत जरूरी है । उदाहरणार्थ अभी तक हम प्राचीन भारतीय वस्त्रो के इतिहास के लिए यूनानी लेखकों के ही आश्रित थे और उनसे भी हमें उन कपडो के भारतीय नाम नहीं मिलते । हमारा साहित्य इन कमी को बहुत कुछ दूर कर देता है । वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्यो तथा आख्यायिकाओ और कोशों में वस्त्रो के ऐसे सैकडों नाम सुरक्षित हैं । इस वृहद् साहित्य में आयी तालिकाओ और उनकी टीकाओ से इन वस्त्रो के केवल नाम ही नहीं, उनके विवरण भी मिलते हैं । साहित्य से यह भी पता चलता है कि देश के किन किन भागो और नगरो में अच्छे कपड़े बनते थे। इन तालिकाओ में सन और वल्कल के बने वस्त्रों के

नाम आये हैं, जिन्हें बहुधा साधु अथवा बहुत ही साधारण लोग पहनते थे। इनमें बहुत से चमड़ों और समूरों के नाम भी आये हैं। कृष्णाजिन ऐसे चमड़े तो ऋषि मुनि पवित्रता के खयाल से पहनते थे, पर दूसरे चमड़े तो लगता है इस देश के बाहर भेजे जाते थे, क्योंकि इस गरम देश में समूर अथवा चमड़ों से बने वस्त्र पहनना असंभव था।

यह कहना कठिन है कि आदिम युग में भारतीयों की वेश-भूषा क्या थी। हमें अभी तक की खोजों से यह पता नहीं लगा है कि वे कपड़े पहनते थे अथवा नहीं और अगर कपड़े पहनते थे, तो वे चमड़े के बने होते थे अथवा पत्तियों और छालों के। प्रागैतिहासिक गुफा-चित्रों से तो यही पता चलता है कि उस युग के लोग प्रायः नग्न रहते थे और अचेलकत्व कोई बुरी बात नहीं मानी जाती थी। इस संबंध में हम कुछ प्राचीन संप्रदायों में अचेलकत्व का उल्लेख कर देना चाहते हैं। बौद्ध साहित्य में तो ऐसे अनेक नंगे साधुओं के संप्रदायों का उल्लेख आया है जिनमें मुख्य जैन थे। लगता है उनका नग्नत्व उस प्राचीन समाज के नग्नत्व की ओर इशारा करता है जब शरीर ढकने की भावना का उदय नहीं हुआ था। धीरे-धीरे जब सभ्यता ने आगे कदम बढ़ाया, तब समाज तो वस्त्रों का आदी हो गया, पर उसके धार्मिक गुरु नग्नत्व की प्राचीनतम प्रथा अपनाये रहे, जो एक समय सर्वसाधारण का नियम था। वैदिक और बाद के साहित्यों में आये चमड़े, वल्कल और तृणों के वस्त्र भी उसी आदि सभ्यता की ओर संकेत करते हैं। बात यह है कि पूरा समाज एक साथ ही उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं होता, उसका कुछ भाग हमेशा पीछे रह जाता है और प्राचीनता को निभाये चलता है। इन्हीं पिछड़े लोगों के विश्वासों और आदतों से हम बहुत प्राचीन काल की सभ्यता का चित्र खींच सकते हैं।

सब से पहले हमें भारतीय वेश भूषा का पता सिंधु घाटी से मिली प्रागैतिहासिक सभ्यता से मिलता है। मोहेन जोदड़ो और हड़प्पा की यह सभ्यता ३५०० ई० पू० से लेकर १५०० ई० पू० तक फली-फूली और इसका संबंध मध्य पूर्व की सभ्यताओं से था। भौतिक सभ्यता के काफी आगे बढ़ने पर भी लोग बहुत ही खफीफ कपड़े पहनते थे। बहुधा लोग नंगे रहते थे और अगर कपड़े पहनते भी थे तो वह लंगोटी या धोती छोटी तहमत होती थी। कभी-कभी लोग चादर ओढ़ लेते थे और अपने बाल फीते से बांधते थे। स्त्रियां कभी कभी पंखे के आकार का शिरोवस्त्र पहनतीं थीं।

यह कहना कठिन है कि लोग सिले वस्त्र पहनते थे अथवा नहीं, गो कि एक मूर्ति कमीज जैसा वस्त्र पहिने दिखलायी गयी है। लगता है लोग कभी-कभी चिपकी और नोकदार टोपियां भी पहनते थे।

स्त्रियां करधनी से बंधी लंगोटियां पहनतीं थीं। एक स्त्री एक धोती पहरे दिखलाई गयी है। शिरोवस्त्र पंखाकार होते थे और लगता है फ्रेम पर चढ़े मांडीदार कपड़े से बनते थे। इन शिरोवस्त्रों पर कभी कभी अलंकार भी बने होते थे। कभी-कभी शिरोवस्त्र तिपाई नुमा होते थे। स्त्रियां कभी कभी पगड़ी भी पहनतीं थीं।

तकुओं की फिरकियों के मिलने से पता चलता है कि लोग सूत कातते थे। एक वस्त्र के टुकड़े के वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि लोग कपास से अवगत थे। इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि बाबुली भाषा का सिंधु और यूनानी भाषा का सिंडोन शब्द सिंधु देश के बने कपास के कपड़े के लिए होते थे। इस तरह कपास से कपड़े बनाने का श्रेय सब से पहले इसी देश को मिलता है।

मोहेन जोदड़ो के नष्ट होने (२५०० ई० पू०) और आर्यों के भारत आने (१५०० ई० पू०) के अंतर में भारतीय सभ्यता की क्या अवस्था थी, इसका हमें पता नहीं है। जब इस अंधकार युग का परदा उठता है, तब हमें वैदिक सभ्यता का दर्शन होता है। वैदिक युग की सभ्यता एक युग की न हो कर करीब

हजार बरस में फैली है और उसमें भिन्न-भिन्न स्तर मिलते हैं। लेकिन जहां तक वस्त्र-भूषा का सबंध है, उसमें ८०० बरस तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस युग में विजेता आर्यों ने विजितो से बहुत से वस्त्र ग्रहण कर लिये, फिर भी अपने निजी वस्त्रो के प्रति उनका मोह बना रहा।

कातना और बुनना आर्य सभ्यता के मुख्य अग थे। ऊनी वस्त्र को आविक कहते थे। सिंघ की घाटी में अच्छे ऊनी कपडे मिलते थे और रावी के प्रदेश के धुले और रगीन ऊनी कपड़े प्रसिद्ध थे। कबल और शामुल्य ऊनी वस्त्र थे। शामुल्य समूर हो सकता है।

बहुत प्राचीन युग में आर्य गोचर्म पहनते थे, पर बाद में गायों की आर्थिक उपयोगिता देखते हुए यह प्रथा छोड़ दी गयी। कृष्णाजिन बहुत पवित्र माना जाता था और यज्ञादि के अवसरों पर पहना जाता था। बकरो की खालें भी ओढ़ी जाती थीं। इस देश की जगली जातिया और व्रात्य भी चमडों के कपड़े पहनते थे।

वैदिक साहित्य में कुछ ऐसे वस्त्रो के नाम आये हैं जिनकी ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती। वरासी शायद वरस नाम के वृक्ष की छाल के रेशे से बनता था। दूर्श शायद किसी किस्म का ऊनी वस्त्र था, क्षौम अलसी की छाल के रेशे से बना वस्त्र होता था जो कभी-कभी रगीन भी होता था। पांड्वाविक ऊन का बना सफेद वस्त्र था। तार्प्य की ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती, शायद यह किसी तरह का रेशमी कपड़ा था। कपास का सब से पहला उल्लेख आश्वालायन श्रौतसूत्र में आया है, इसके कई कारण हो सकते हैं। (१) सिंधु सभ्यता का आर्यों को ज्ञान नहीं था। पूर्वी भारत में आने पर उन्होने कपास के कातने बुनने से परिचय प्राप्त किया। (२) शायद अनार्य वस्त्र होने से आर्य इसके व्यवहार करने में हिचकिचाते हो, पर इसकी सभावना कम है।

कपडा बुनने वाली स्त्रियो के लिए वायित्रि और सिरी शब्दो का व्यवहार हुआ है। वैदिक साहित्य में बुनाई के बहुत से शब्द यथा ओतु (बाना), ततु (सूत), तत्र (ताना), वेमन (करघा), प्राचीनतान (आगे खिचा ताना), वाय (बुनकर), मयूख (ढरकी), आये है।

वैदिक साहित्य में पहरावे के लिए साधारणतः वासस् और वसन शब्दों का प्रयोग हुआ है। सुवसन और सुवासस् से अच्छी तरह से कपडे पहनने का बोध होता है। सुरभि के अर्थ ठीक तरह से बदन पर बैठने वाला कपडा है। अच्छे कपडे पहनने वालो का समाज में आदर होता था, रग-बिरगे कपड़े भी पहने जाते थे।

कपडो पर कभी कभी कारचोबी का काम होता था। कपडो में झालर (सिच्) और अलकृत किनारे (आरोक) भी होते थे। धुले और कोरे कपड़े पहने जाते थे। रगीली स्त्रिया रगीन और सुनहरे काम वाले कपड़े पहनतीं थीं। व्रात्य नीले कपड़ों के शौकीन थे।

कसीदे के काम को पेशस् और कसीदे काढ़ने वालियो को पेशकारी कहते थे। कसीदे का काम वस्त्रों के ऊपर नीचे और मध्य में किया जाता था। कुछ अलकार बुने जाते थे और कुछ काढ़े। खूब काम करने से सुईकार की पटुता बढ़ती थी।

आर्य नीवि (लगोटी), वासस् और अधिवास पहनते थे। नीवि शायद तहमतनुमा वस्त्र था। कोई-कोई इसकी व्युत्पति तमिकल नह से जिसका अर्थ बुनना है, करते हैं। नीवि से प्रधान अथवा पटका लटका होता था जो फूदनों से सजा होता था। स्त्रियां और पुरुष दोनो अपने शरीर को ढाकने के लिए उपवसन, पर्याणहन, द्रापि और अत्क पहनते थे। उपवसन और पर्याणहन चादर थे और प्रतिधि स्तन पट्ट। अत्क पूरे शरीर का लबा कचुक था और द्रापि कोई कोटनुमा वस्त्र। उष्णीष, जिसका उल्लेख सर्व

प्रथम अथर्ववेद में आया है, राजे यज्ञादि अवसरों पर पहनते थे, कभी-कभी स्त्रियां भी पगड़ी पहनती थीं। व्रात्यों के उष्णीष में कई फेंटे होते थे और वह एक तरफ झुका कर बांधा जाता था। जूतों का उल्लेख कम है, वहूरिणापाद शायद लड़ाई में पहनने का जूता था। उपानह यज्ञ के अवसर पर यजमान और व्रात्य पहनते थे।

यज्ञ के अवसर पर शुद्ध अनाहत वस्त्र पहने जाते थे। लोगों का विश्वास था कि बाने में अग्नि, ताने में वायु, नीवि में पितृ, प्रघात में नाग, सूत में विश्वेदेवा तथा आरोक में नक्षत्रों का अधिकार है। इस विश्वास से शायद यह मतलब हो कि वस्त्र की पवित्रता से उसमें भूत प्रेत नहीं घुस सकते थे न उस में जादू टोना लग सकता था।

राजा धोती, चादर और पगड़ी पहनते थे। पगड़ी की जगह कभी-कभी पट्टियों से काम चल जाता था। यज्ञ के अवसर पर स्त्रियां रशना पहनती थीं। दीक्षित वस्त्र के ऊपर रेशमी चंडातक जो अधोरुक जैसा कोई वस्त्र था पहिनती थीं।

व्रात्य उष्णीष, काली गोटवाले कपड़े और बकरों की खाल पहनते थे। अनुयायी व्रात्यों के कपड़ों के किनारे लाल होते थे और उनकी छोरें बटी हुईं। सूत्रों के अनुसार व्रात्य लाल पगड़ी और कुरते पहनते थे, उनकी पगड़ी टेढ़ी बंधी होती थी। वे जूते भी पहनते थे।

महाजनपद युग, शैशु नागों और नंदों (६४२-३२० ई० पू०) में भारतीय सभ्यता और आगे बढ़ी। इस युग के इतिहास की सामग्री हमें जैन सूत्रों, बौद्ध पिटकों और ब्राह्मण सूत्र ग्रंथों में मिलती है। इस युग की आर्य सभ्यता ग्रामों से निकल कर नगरों में पहुंच चुकी थी और देश का कला-कौशल काफी आगे बढ़ चुका था। कपास, क्षौम, रेशम और ऊनी कपड़ों का काफी चलन था। जातकों में रुईकार (पेसकार), बेंत बिनने वालों (नलकार) और बुनकर (तंतुवाय) के व्यवसायों को नीचकर्म कहा है। उपरोक्त भाव बौद्धों के नहीं हो सकते, क्योंकि बुद्ध तो जात-पांत मानते ही न थे। लगता है कहानियों में जाति पांति की भावना वैदिक समाज की वर्ण व्यवस्था की द्योतक है। जैन सूत्र तो दरजियों, बुनकरों इत्यादि को शिल्पार्यों की श्रेणी में रखते हैं।

इस युग में कपास की खूब खेती होती थी और बनारस की कपास मशहूर थी। रुई धुनने, कातने और सूत की गड्डियां बनाने का भी वर्णन है। रेशमी कपड़े भी पहने जाते थे। वाह्लीक और चीन से भी रेशमी कपड़े आते थे। क्षौम के बने कपड़े बहुत महीन और सुन्दर होते थे। यह कपड़ा अलसी की छाल के रेशों से बनता था। उड्डीयान और गंधार के रक्त कंबल बहुत मशहूर थे। शिवि देश के दुस्सों की तो काफी कीमत होती थी। पंजाब और गंधार ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध थे। पंजाब, उत्तरी सीमा प्रान्त, पूर्वी अफगानिस्तान से खालें कीमती शाल, समूर इत्यादि इस देश में आते थे। इस युग में पश्मीनों का बड़ा नाम था। आधुनिक पठानकोट में कोटुंबर नाम के बहुत ही अच्छे ऊनी वस्त्र बनते थे। किमख्वाब को हिरण्य वस्त्र कहते थे।

काशी में बहुत अच्छे कपड़े बनते थे। कहा जाता है कि बनारस के बने कपड़े में बुद्ध का मृत शरीर लपेटा गया था। वे कपड़े नीले, पीले, लाल और सफेद होते थे तथा इनका पोत मुलायम होता था। ये कपड़े सूती होते थे। बनारस अपनी अच्छी रुई और धोने के पानी के कारण सूती कपड़ों के लिए मशहूर था। बनारस में रेशमी और ऊनी वस्त्र भी बनते थे। बनारस की जटी की एक जगह बड़ी प्रशंसा की गयी है। बहुत मामूली दरजे के कपड़े सन, भंगेला, फल के रेशे, कुश, वल्कल तथा एरगु, मोरगु और मज्जारु

नाम के तृणों से भी बनते थे। तरह-तरह के चमड़ों का प्रयोग वस्त्र और बिछावन के लिए किया जाता था। मालूम तो यह पडता है उस समय चमड़े बहुत उपलब्ध थे और दक्षिणापथ में तो चमड़े पहनने का काफी रिवाज था ।

चादनी, मेजपोश, परदे इत्यादि भी सादे अथवा ऊनी होते थे । गोणक बकरे के बाल से बने आस्तरण होते थे । लगता है यह कपडा ईरान से आता था जहा इसे कौनकेस कहते थे । ईरान में बना कौनकेस बावुल भी जाता था जहां इसे लोग अधोवस्त्र की तरह पहनते थे । चित्तक ऊनी पट्टियों को सीकर बना कालीन होता था । सफेद कालीन को पलिका कहते थे तथा फूलदार कालीन का नाम पटलिका था । रजाई को तूलिका कहते थे । सिह, व्याघ्र इत्यादि के चित्रो से अलंकृत कालीन विकटिका थी। ऊद विलाव की खालों से कवल बनते थे । रूखे रोयें वाले कबल एकतलोमी कहे जाते थे । कट्ठिस नाम के आस्तरण में जवाहर जडे होते थे। कोसेय्य रेशमी कालीन को और कुत्तक बडे भारी कालीन को कहते थे। हाथी, घोडो और रथों के लिए भी आस्तरण होते थे। मृगचर्म साट कर कवल बनते थे। कदली मृग के समूरों से भी आस्तरण बनते थे । चिमि का चादनी थी। बाहीतिक १६ हाथ लबी और ८ हाथ चौड़ी ऊनी चादर थी। नमतक नमदा था और कोजव लबे रोयें वाला कवल।

कपडे सज्जी खार में धोये जाते थे । कपडे नीले, हरे, पीले, लाल और मजीठिया रगों में रंगे भी जाते थे। भिक्षुओं को पीत वर्ण छोड़ कर और किसी रंग के कपड़े पहनने की आज्ञा न थी।

ब्राह्मण और श्रमण सन के बने कपड़े, कफन के कपड़े, घूर पर फेंके चिथड़ों के बने वस्त्र, तिरीट के रेशे से बने वस्त्र, मृग चर्म, कुश चीर, वल्कल, केस कवल, वाल कवल, उलूक पख कवल इत्यादि पहन सकते थे । उपरोक्त कपड़े हिंदू साधुओं के भिन्न-भिन्न वर्गों में प्रचलित थे ।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियो के वस्त्र यथा सघाटी, अन्तरवासक और उत्तरासंग एक होते थे। इन तीनो के सिवाय, प्रत्यस्तरण, कडूक प्रतिच्छादन, आयोगपट्ट, कायबध का भी वे उपयोग कर सकते थे। कायबध के किनारो पर पट्टिया लगी होती थीं और सकरपारेदार तगानी का काम । वस्त्रों में भिक्षु बुक मेक लगा सकते थे । अलंकृत वस्त्रो के पहनने की आज्ञा उन्हें नहीं थी ।

बौद्ध भिक्षु अपने कपड़े स्वय बुन सकते थे। करघे को ततक, ढरकी को वेमक, टट्टी को शलाका, और डोर को वट्ट कहते थे ।

भिक्षुणिया अन्तरवासक और संघाटी के सिवाय कचुक भी पहन सकती थीं। एकात में उन्हें एक तिकोने लगोट पहनने की भी आज्ञा थी ।

जैन साधु केवल तीन वस्त्र रख सकते थे । इनमें दो क्षौम की धोतियां होती थीं और एक ऊनी चादर । कपडे धोने और रगने का उन्हें अधिकार न था।

साधारण गृहस्थ अंतरवासक, उत्तरासग और उष्णीष पहनते थे। स्त्रिया और पुरुष दोनों ही कंचुक पहन सकते थे । स्त्रिया मजबूत साडिया पहनती थीं । लोग अपने कपड़े बडे सवार कर पहनते थे और अपने शरीर पर फबने वाले रग के कपड़े ही उनको विशेष प्रिय थे । स्त्रियां तो अपने कपड़े बड़े ही सुरुचि से सभाल कर पहनती थीं। धोती हस्तिशौण्डिक (हाथी के सूड जैसी), मत्स्यवालक (मछली की पूछ जैसी), चतुष्कर्णक (चौकोर), तालवृन्तक (पखे के आकार की), और शतवल्लिक (सौ चुननों वाली) ढग से पहनी जाती थी। कमरबद या कायबध कई तरह के होते थे यथा कलाबुक (रस्सी का बना) डेड्डुभक (डेढ़े सांप की तरह का) मुरज (ढोल के आकार का), और मद्दवीन (अलकार सहित)। स्त्रिया भी कमरबद और पटके

पहनती थी, पर भिक्षुणियां केवल एक फेंटे वाले सादे कमरबंद पहन सकती थीं। पटके बांस के रेशे, चर्म पट्ट, ऊनी पट्टी, गुथी हुई पट्टी और चोल वस्त्र से बनते थे ।

जूते पहनने का काफी रवाज था । जूतो में एक से लेकर चार तल्ले तक होते थे और वे तरह-तरह के रंगीन चमडो से बनते थे; लेकिन ऐसे जूते केवल गृहस्थ ही पहन सकते थे। जूतों में निम्नलिखित प्रकार होते थे—पुटबद्ध (घुटने तक के जूते), पालिगुंठिम (पैर ढकने वाले जूते), खल्लकबद्ध (आधुनिक पेशावरी जूते जैसा), मेंडविषाण वद्धिक (जूते के नोक पर मेंढ़ की सींग होती थी), अजविषाण बद्धिक (बकरे की सींग वाला), वृश्चिकालिक (जूते पर बिच्छू की पूछ जैसा अलंकार होता था), मोरपिछपरिसिब्बित (तले या वर्दो में मोर पख सिले होते थे), तूलपुण्णिक (रूई से भरा जूता) और तित्तिर पट्टिक (तीतर के पंखो जैसी बनावट)। बौद्ध भिक्षु उपदेश सुनते समय जूते और चप्पल नहीं पहन सकते थे। उपरोक्त जूतो के अलग बहुत से वन्यपशुओ के चमडो से भी जूते बनते थे। जूते पहनने का इस युग में इतना रवाज था कि चर्मकार के व्यवसाय का जातकों में कई बार उल्लेख आया है। जूतों के सिवाय गृहस्थ तृण, मूज, तालपत्र, बास और लकडी की बनी चप्पलें और पादुकाएं भी होती थीं । कुछ शौकीन लोग सोने चादी और रत्नों से जड़ित पादुकाएं भी पहनते थे ।

इस युग के साहित्य में कभी-कभी विशेष तरह की वेश-भूषाओ के उल्लेख आ जाते हैं। प्रतियोगिता के समय एक धनुर्धारी एक सकच्छ लाल धोती, लाल कमरबद, सुनहला कचुक और उष्णीष पहने बतलाया गया है । राजे कभी-कभी दुकूल चुंवट पहनते थे, लेकिन यह पता नही लगता कि चुवट कैसा वस्त्र था।

इस युग में सिलाई की कला बहुत उन्नत हो चुकी थी और सिलाई सबधी बहुत से शब्द बौद्ध साहित्य में मिलते हैं । तेज सूइया सूची नालिका में रक्खी जाती थीं और उनकी धार बचाने के लिए नालिकाओं में जौ का आंटा, बालू, मोम इत्यादि भर दिये जाते थे। कुछ लोहारों के गाव अच्छी से अच्छी सूई बनाते थे और इस व्यवसाय में उनकी इतनी ख्याति थी कि लोग उन्हीं से सूइयां लेते थे। कपडे काटने के लिए तरह तरह की मूठों वाली कैंचियां (सत्यक) भी होती थीं। सिलाई के समय सूई की नोक से अंगुलियां बचाने के लिए अगुश्ताने (प्रतिग्रह) भी पहने जाते थे। एक तख्ते को, जिस पर कपडे बांध कर सिये जाते थे, कठिन कहते थे । कठिन के और भागों के भी नाम दिये हुए हैं। कपड़े ब्योंतने के लिए उनपर ताडपत्र के अक बना दिये जाते थे तथा सिलाई और कटाई के पहले लगर (मोघ सुत्तक) डाल दिये जाते थे। दरजी की दूकान में आलमारियां (आडेसन विस्थक), और कठिन अर्थात् सीने के फ्रेम होते थे । इसमें खूटियां और टाडें भी लगी होती थीं।

काटने, सीने और रफू करने के भी बहुत से शब्द आये है, पर इनका ठीक-ठीक अर्थ समझना आसान नहीं है । कटाई के लिए कपडे पर नख से बने निशान को उल्लिखित, लगर से जुटे कपड़े के टुकडो को वघन, लवान में मोड देकर लगर की सिलाई को ओवट्टियकरण, बड़े टुकडो से छोटे कपडों को जोडने को कडुसकरण, प्योंदा लगने अथवा फटन सीने के लिए दढ़िकरण, बटाईदार सिलाई को अनुवातकरण, बगल और पीछे की सिलाई को अनुवातकरण, कुछ जगहों की मोहरी सिलाई की ओवट्ठेयकरण, तिरछेवल को सिलाई को कुसि, आधी दूर तिरछे बल की सिलाई को अड्ढकुसि, पांच खड से एक खंड की गोल सिलाई को मडल, भीतरी मोड को विवट्ट, घुटने पर की सिलाई को जाधेयक, गले की सिलाई को गिवेय्यक और केहुनी पर लगे कपडों की सिलाई को बहन्त कहते थे । सूत से ऊंचे रफू को सुत्तलूख, एक तरफे रफू को विकण्ण, रफू से ऊचा नीचा हटाने की क्रिया को विकण्णं उद्धरितु, छीर निकालने को ओकिरति

और किनारों पर छोर बांधने को अनुगवात परिभण्डं कहते थे। भीतरी गोंट को पत्ता, किनारीदार झा
को अट्ठपाद और कधो पर लगी गोंट को अंसवद्ध कहते थे।

मौर्ययुग में भारतीय संस्कृति ने खूब उन्नति की। इस युग की वेश भूषा के इतिहास के लिए
साहित्य का ही सहारा लेना पड़ता है, क्योकि इस युग की मिली मनुष्य मूर्तिया संख्या में बहुत ही
है। इस युग की वेश-भूषा और कपड़ों के इतिहास के लिए महाभारत सभापर्व और कौटिल्य के अ
शास्त्र में काफी सामग्री है। इन ग्रथो से यह भी पता चलता है कि भारत और मध्य एशिया से क
व्यापारिक सबध था और अफगानिस्तान, बलख और ताजिकिस्तान से यहा रेशमी और ऊनी कपड़े, ख
तथा समूर आते थे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में चमडो और समूरों की विशद व्याख्या है। कान्तानावक एक नीले रंग
चमडा होता था और प्रैयक सफेद और नीले रग का बुंदकी और धारीदार चमडा। द्वादश-ग्राम से वि
जो बालदार और चित्तीदार होता था तथा महाविसी जो खुरखुरा और सफेद होता था, आते थे। हिमा
प्रदेश के आरोह नामक स्थान से गुलदार श्यामिका, भूरे और फाख्तई रंग की कालिका, काले भूरे अ
लाल रग के कदली चर्म, गोल चित्तीदार चन्द्रोत्तरा और शाकुला नाम के चमड़े और समूर आते
बलख से काले समूर, चीन देश के समूर और गेहुए रग के सामूली आते थे। ऊद बिलाव के चम
में सातीना काले रग का होता था, नलतूला हरे रगका। वृत्रपुच्छा का रग भूरा होता था और इ
ऊद बिलाव की पूछ भी होती थी। चिकने, मुलायम और गज्झिन रोम वाले समूर अच्छे माने जाते थ
गोह, चीते, सूस, सिह, व्याघ्र, हाथी, भैंसे, सुरागाय और गयाल के चमडे भी काम में आते थे।

भेंड के ऊन से बने आविक नाम के शाल, सफेद, शुद्ध रक्त और पक्ष रक्त रंगों के होते थे।
कारी और बुनाई द्वारा शाल में अलकार योजना को खचित कहते थे, करघे पर ही जिस शाल में अलं
बुने गये हो उसे वानचित्र और अनेक टुकडों को जोड कर बनाये गये शाल को खड सघात्य कहते थे
किनारे पर जालीदार शाल को तनुविच्छिन्न कहते थे। आज दिन भी कश्मीर में उपरोक्त विधियो से
शाल और जामेवार बुने जाते है।

कौटिल्य ने दस तरह के ऊनी कपडो का वर्णन दिया है जिनमें अधिकतर बिछाने के काम में अ
थे। कबल सब तरह के ऊनी कपडों के लिए एक साधारण शब्द है। ग्वालो के कबल को केचलक क
थे, गजास्तरण को कुयमितिका, वृषभास्तरण को सौमितिका, और अश्वास्तरण को तुरगास्तरण। रगं
कबल को वर्णक, पलगपोश को तलिच्छक, खूब मोटे कबल को वारवाण, हाथी के झूल को परिस्तोम अ
हाथी के जाघो की रक्षा के लिए मोटे कबल को समतभद्रक कहते थे।

नैपाल देश से दो तरह के कबल आते थे यथा भिंगिसी जो आठ टुकडो को जोड कर बनता था अ
बरसाती का काम देता था और अपसारक जो आधुनिक पट्टू की तरह कोई कपड़ा होता था।

जगली जानवरो के बालो से भी कपडे बनते थे। ऐसे ही कपडे से सपुटिका अथवा पाजामा बनत
था। चतुरश्रिका के कोनों पर अलकार होते थे, लव[illegible] एक तरह की चादर होती थी। मोटे सूत से ब
चादर को क[illegible]वानक कहते थे और किनारेदार चादर को प्रावरक।

दुकूल वस्त्र दुकूल वृक्ष की छाल के रेशे से बने वस्त्र को कहते थे। बगाल का बना दुकूल सफे
और मुलायम होता था, पौंड्र का दुकूल नीला और चिकना तथा सुवर्णकुड्या का दुकूल ललाई लिये हो
था। मणिस्निग्धोदकवान दुकूल घुटे सूत मे बनते थे, चतुरस्रकवान में बुनाई बराबर होती थी औ

श्यामिश्रवान में रेशम मिला होता था या तरह तरह के रंगीन सूतों से यह बुना जाता था। ताने-वाने में एक, दो, तीन या चार तार लगते थे । कभी कभी ताने में एक तार होता था और वाने में दो।

काशी और पुड्र क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे । पत्रोर्ण से बने कपडो के नाम उन देशो पर पड़ते थे जहां ये बनते थे । इस नियम के अनुसार उसके नाम मागधिका, पौंड्र और सौवर्णकुड्यका पड़े । पत्रोर्ण नाग वृक्ष, लिकुच, वकुल और वट वृक्षों की छालों से निकले रेशो से बनता था, और उसका रंग गेहुआं, सफेद और मक्खन का सा होता था ।

रेशमी वस्त्रों में कौशेय और चीन पट्ट मुख्य थे। कौशेय कोशकार देश का बना रेशमी कपड़ा था और चीन पट्ट चीन देश का बना रेशमी कपडा।

सूती कपड़ो के नाम भी उन देशो पर पड़ते थे जहाँ वे बनते थे । माधुर आधुनिक मदुरा में, अपरान्तक अपरात में, कालिंगक कलिंग देश में और काशिक काशी जनपद में बने कपडो के नाम थे । अर्थशास्त्र से यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काशी कर्पास और क्षौम वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध थी, रेशमी वस्त्रों के लिए नहीं। पूर्वी बगाल में बने सूती कपडे को वांगक कहते थे, वत्स देश (आधुनिक प्रयाग के पास) के सूती कपडे को वात्सक और महिष देश के कपडे को माहिषक।

कोषाध्यक्ष को देश, काल और परिभोग के अनुसार कपड़ो की जानकारी आवश्यक थी। कीड़े मकोड़ों और चूहो से रक्षा करने का भी उसे प्रबन्ध करना पड़ता था।

राज के निजी कपडे बुनने के कारखाने सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होते थे । इन कारखानों में विधवाएं, वृद्धा दासियां इत्यादि काम पर रक्खी जाती थीं और उन्हें ऊन, रूई, क्षौम इत्यादि से सूत तैयार करना पडता था । कत्तिनो को उनके काम के अनुसार वेतन मिलता था । छुट्टियों में काम करने का भी पारिश्रमिक मिलता था, पर काम खराब करने वालो का वेतन काट लिया जाता था । अच्छे कारीगरो को दिमाग तर रखने के लिए तेल इत्यादि इनाम में दिये जाते थे। कारखानो के सिवाय ठीके पर भी कपड़े बुनवाये जाते थे। घर से बाहर न निकल सकने वाली स्त्रियो को घर पर ही काम देने का प्रबंध था। कारीगरो को बढावा देने के लिए रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्र इनाम में दिये जाते थे । वस्त्रो पर चुंगी भी लगती थी। कपडे, किंशुक, कुसुंभ और कुकुम के रगों में रगे जाते थे ।

महाभारत में राजसूय यज्ञ के अवसर पर भारत के सीमा प्रान्त और बाहर से अनेक तरह के वस्त्रों के युधिष्ठिर के पास उपहार में आने का उल्लेख है । कबोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से ऊनी कपडे, समूर और सुनहले कपड़े, ऊनी चादरें, बेशकीमती दुशाले और कदली मृग की खालें आयीं। बलूचिस्तान या पारेसिंधु प्रदेश से बकरे और भेड़ों की खालें आयीं। चीन, हूण, शक, वाह्लीक और ओड्र देशों से ठीक नाप के खुशरंगीन और मुलायम वस्त्र, भेड़ के ऊनी कपडे, पश्मीने, रेशमी कपडे, नमदे तथा समूर आये। अंग कलिंग, ताम्रलिप्ति और पुड्र से दुकूल और पत्रोर्ण के बने कपड़े और चादरें आयीं। ऐसा लगता है कि उपरोक्त प्रदेशो से भारत का इस काल में घनिष्ठ व्यापारिक सबंध था ।

इस काल की भारतीय वेश-भूषा का उल्लेख यूनानी इतिहासकारो ने भी किया है । उनके अनुसार भारत के लोग आधे पैर तक की धोती और चादर पहनते थे। ये वस्त्र कभी-कभी सुवर्ण और रत्नखचित भी होते थे ।

मौर्ययुग के अतिम चरण और शुंगयुग की वेश-भूषा का पता हमें यक्ष यक्षिणियो की मूर्तियो और और भरहुत के अर्ध चित्रो से मिलती है । परखम का यक्ष आधे पैर की धोती, छाती पर सकरमुद्दी

और किनारों पर छोर बाधने को अनुगशात परिभण्ड कहते थे। भीतरी गोंट को पत्ता, किनारीदार झालर को अट्ठपाद और कधों पर लगी गोट को असबद्ध कहते थे।

मौर्ययुग में भारतीय संस्कृति ने खूब उन्नति की। इस युग की वेश भूषा के इतिहास के लिए हमें साहित्य का ही सहारा लेना पडता है, क्योकि इस युग की मिली मनुष्य मूर्तिया संख्या में बहुत ही कम है। इस युग की वेश-भूषा और कपडों के इतिहास के लिए महाभारत सभापर्व और कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में काफी सामग्री है। इन ग्रथो से यह भी पता चलता है कि भारत और मध्य एशिया से काफी व्यापारिक संबंध था और अफगानिस्तान, बलख और ताजिकिस्तान से यहा रेशमी और ऊनी कपडे, खालें तथा समूर आते थे।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में चमडों और समूरों की विशद व्याख्या है। कान्तानावक एक नीले रंग का चमडा होता था और प्रैयक सफेद और नीले रग का बुदकी और धारीदार चमडा। द्वादश-ग्राम से बिसी, जो बालदार और चित्तीदार होता था तथा महाबिसी जो खुरखुरा और सफेद होता था, आते थे। हिमालय प्रदेश के आरोह नामक स्थान से गुलदार श्यामिका, भूरे और फाख्तई रग की कालिका, काले भूरे और लाल रंग के कदली चर्म, गोल चित्तीदार चन्द्रोत्तरा और शाकुला नाम के चमड़े और समूर आते थे। बलख से काले समूर, चीन देश के समूर और गेहुएं रग के सामूली आते थे। ऊद बिलाव के चमडों में सातीना काले रग का होता था, नलतूला हरे रगका। वृत्रपुच्छा का रग भूरा होता था और इसमें ऊद बिलाव की पूछ भी होती थी। चिकने, मुलायम और गझिन रोम वाले समूर अच्छे माने जाते थे। गोह, चीते, सूंस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसे, सुरागाय और गयाल के चमडे भी काम में आते थे।

भेंड के ऊन से बने आविक नाम के शाल, सफेद, शुद्ध रक्त और पक्ष रक्त रगों के होते थे। सुई कारी और बुनाई द्वारा शाल में अलकार योजना को खचित कहते थे, करघे पर ही जिस शाल में अलकार बुने गये हो उसे वानचित्र और अनेक टुकडो को जोड कर बनाये गये शाल को खड सघात्य कहते थे। किनारे पर जालीदार शाल को तंतुविच्छिन्न कहते थे। आज दिन भी कश्मीर में उपरोक्त विधियो से ही शाल और जामेवार बुने जाते हैं।

कौटिल्य ने दस तरह के ऊनी कपडों का वर्णन दिया है जिनमें अधिकतर बिछाने के काम में आते थे। कबल सब तरह के ऊनी कपडों के लिए एक साधारण शब्द है। ग्वालों के कबल को केचलक कहते थे, गजास्तरण को कुथमितिका, वृषभास्तरण को सौमितिका, और अश्वास्तरण को तुरगास्तरण। रंगीन कबल को वर्णक, पलंगपोश को तलिच्छक, खूब मोटे कबल को वारबाण, हाथी के झूल को परिस्तोम और हाथी के जाघो की रक्षा के लिए मोटे कंबल को समतभद्रक कहते थे।

नैपाल देश से दो तरह के कंबल आते थे यथा भिंगिसी जो आठ टुकडों को जोड कर बनता था और बरसाती का काम देता था और अपसारक जो आधुनिक पट्टू की तरह कोई कपडा होता था।

जगली जानवरो के बालों से भी कपड़े बनते थे। ऐसे ही कपड़े से सपुटिका अथवा पाजामा बनता था। चतुरश्रिका के कोनो पर अलकार होते थे, लवरा एक तरह की चादर होती थी। मोटे सूत से बनी चादर को कटवानक कहते थे और किनारेदार चादर को प्रावरक।

दुकूल वस्त्र दुकूल वृक्ष की छाल के रेशे से बने वस्त्र को कहते थे। बंगाल का बना दुकूल सफेद और मुलायम होता था, पौंड्र का दुकूल नीला और चिकना तथा सुवर्णकुड्या का दुकूल ललाई लिये होता था। मणिस्निग्धोदकवान दुकूल घुटे सूत से बनते थे, चतुरस्त्रकवान में बुनाई बराबर होती थी और

व्यामिश्रवान में रेशम मिला होता था या तरह तरह के रंगीन सूतों से यह बुना जाता था। ताने-वाने में एक, दो, तीन या चार तार लगते थे। कभी कभी ताने में एक तार होता था और वाने में दो।

काशी और पुंड्र क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे। पत्रोर्ण से वने कपड़ों के नाम उन देशो पर पड़ते थे जहां वे वनते थे। इस नियम के अनुसार उसके नाम मागधिका, पौंड्र और सौवर्णकुड्यका पड़े। पत्रोर्ण नाग वृक्ष, लिकुच, वकुल और वट वृक्षों की छालों से निकले रेशों से वनता था, और उसका रग गेहुआ, सफेद और मक्खन का सा होता था।

रेशमी वस्त्रों में कौशेय और चीन पट्ट मुख्य थे। कौशेय कोशकार देश का वना रेशमी कपड़ा था और चीन पट्ट चीन देश का वना रेशमी कपडा।

सूती कपड़ों के नाम भी उन देशों पर पड़ते थे जहां वे वनते थे। माघुर आधुनिक मदुरा में, अपरान्तक अपरांत में, कालिंगक कलिंग देश में और काशिक काशी जनपद में वने कपड़ों के नाम थे। अर्थशास्त्र से यह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काशी कर्पास और क्षौम वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध थी, रेशमी वस्त्रों के लिए नहीं। पूर्वी बगाल में वने सूती कपडे को वांगक कहते थे, वत्स देश (आधुनिक प्रयाग के पास) के सूती कपडे को वात्सक और महिष देश के कपड़े को माहिषक।

कोषाध्यक्ष को देश, काल और परिभोग के अनुसार कपड़ों की जानकारी आवश्यक थी। कीड़े मकोड़ों और चूहो से रक्षा करने का भी उसे प्रवन्ध करना पड़ता था।

राज के निजी कपड़े वुनने के कारखाने सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होते थे। इन कारखानों में विधवाएं, वृद्धा दासिया इत्यादि काम पर रक्खी जाती थीं और उन्हें ऊन, रूई, क्षौम इत्यादि से सूत तैयार करना पडता था। कत्तिनों को उनके काम के अनुसार वेतन मिलता था। छुट्टियों में काम करने का भी पारिश्रमिक मिलता था, पर काम खराव करने वालो का वेतन काट लिया जाता था। अच्छे कारीगरों को दिमाग तर रखने के लिए तेल इत्यादि इनाम में दिये जाते थे। कारखानो के सिवाय ठीके पर भी कपड़े वुनवाये जाते थे। घर से वाहर न निकल सकने वाली स्त्रियो को घर पर ही काम देने का प्रवंध था। कारीगरों को वढ़ावा देने के लिए रेशमी, सूती और ऊनी वस्त्र इनाम में दिये जाते थे। वस्त्रों पर चुंगी भी लगती थी। कपडे, किंशुक, कुसुंभ और कुंकुम के रगों में रंगे जाते थे।

महाभारत में राजसूय यज्ञ के अवसर पर भारत के सीमा प्रान्त और वाहर से अनेक तरह के वस्त्रों के युधिष्ठिर के पास उपहार में आने का उल्लेख है। कवोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से ऊनी कपड़े, समूर और सुनहले कपड़े, ऊनी चादरें, वेशकीमती दुशाले और कदली मृग की खालें आयीं। वलूचिस्तान या पारेसिंधु प्रदेश से वकरे और भेंडों की खालें आयीं। चीन, हूण, शक, वाह्लीक और ओड्र देशों से ठीक नाप के खुशरंगीन और मुलायम वस्त्र, भेड के ऊनी कपड़े, पशमीने, रेशमी कपडे, नमदे तथा समूर आये। अंग कलिंग, ताम्रलिप्ति और पुंड्र से दुकूल और पत्रोर्ण के वने कपडे और चादरें आयीं। ऐसा लगता है कि उपरोक्त प्रदेशों से भारत का इस काल में घनिष्ठ व्यापारिक सवंध था।

इस काल की भारतीय वेश-भूषा का उल्लेख यूनानी इतिहासकारो ने भी किया है। उनके अनुसार भारत के लोग आधे पैर तक की धोती और चादर पहनते थे। ये वस्त्र कभी-कभी सुवर्ण और रत्नखचित भी होते थे।

मौर्ययुग के अंतिम चरण और शुंगयुग की वेश-भूषा का पता हमें यक्ष यक्षिणियों की मूर्तियो और और भरहुत के अर्ध चित्रो से मिलती है। परखम का यक्ष आधे पैर की धोती, छाती पर सकरमुद्धी

पड़ा दुपट्टा पहने है। धोती पैर तक भी पहुंचती थी और कमरबंद और वैकक्ष्य पहनने की प्रथा थी। एक जगह अटपटी पगड़ी भी आयी है। स्त्रियां एंड़ी तक पहुंचती साड़ी, कई लड़ों की करधनी, पटका और दुपट्टे पहनतीं थीं।

भरहुत के अर्ध चित्रो में पुरुष सकच्छ धोती पहनते हैं जो कभी आधे पैरों तक और कभी पूरे पैरों तक पहुंचती थी। धोती के साथ-साथ, कमरबन्द, पटके, दुपट्टे, और पगड़िया पहनने की भी चाल थी। इस युग में दक्षिण भारत के पहरावे में कुछ अंतर था। शुंगयुग में पगड़ियां अनेक तरह से बांधी जाती थीं। साधारण रीति से तो सिर पर बाल के जूट के चारों ओर पगड़ी के फेटें बाध लिये जाते थे। लट्टूदार साफा, कामदार साफा, झालरदार साफा, पीछे उभरा साफा, अटपटी पगड़ी, हलका साफा, अटपटी लट्टूदार पाग तथा छोटे झालरदार साफा पहने जाते थे।

भरहुत के अर्ध चित्रो में सिले वस्त्र केवल दो जगह आये हैं। एक जगह एक राजा का अनुचर कोट-नुमा वस्त्र पहने दिखलाया गया है और दूसरी जगह एक उत्तरापथ का आदमी बंददार कोट पहने है। इसके बाल एक फीते से बंधे हैं, कमर में धोती और पटका है और छाती पर परतला। कभी कभी शुंग-कालीन मट्टी की मूर्तियां भी कोट पहने दिखायी गयी हैं। सांची के न० के स्तूप के अर्ध चित्रो में जो शुंगकालीन हैं आधे और पूरे बाह के कचुक आये है।

भरहुत के अर्धचित्रो में स्त्रिया घुटने तक की साड़िया पहने दिखलायी गयी है। साड़ियों पर कमरबंद, करधनें और पटके होते थे। स्त्रिया कभी कभी चादर और पगड़ी भी पहनतीं थीं। यक्षिणी चदा की वेश-भूषा से एक शुगकालीन संभ्रात नारी के पहरावे का पता चलता है। उसके कमर में घुटने तक की धोती, सतलड़ी करधनी और कामदार कमरबंद है। सिर एक कामदार ओढ़नी से ढका है। एक दूसरी यक्षी पतली साड़ी, सकरमुद्धीदार कामदार कमरबद, करधनी और योगपट्ट पहने है। यक्षी चूलकोका का पटका मार्के का है

साधु कोपीन पहनते थे और उनकी स्त्रिया साड़ी और चादर। स्त्रिया रूमाल से सिर ढांक लेतीं थीं अथवा कभी-कभी पगड़ी भी पहनतीं थीं। दक्षिण भारत की स्त्रियों की पोशाक भी प्राय. ऐसी ही होती थी, घुटनो तक की साड़ी बपसुएदार कमरबद और चारखाने की ओढनी पहनने की प्रथा थी।

ई० पू० पहली शताब्दी की वेश-भूषा ई० पू० दूसरी शताब्दी की वेश-भूषा से मिलती, है पर उसमें थोड़ा अतर भी आ जाता है। धोती सादी होती है और भारी कमरबदो और पटकों का अभाव सा है, लेकिन लोग अपने कपड़े सजा कर पहनते थे। अनुचर वर्ग और सिपाही सिले कपड़े भी पहनते थे। स्त्रिया अपनी धोती और चादरें खूब सजा कर पहनती थीं। इस युग की दक्षिणी वेश-भूषा कुछ टीमटाम वाली होती थी। इस युग की वेश-भूषा के इतिहास की सामग्री हमें साची और भाजा के अर्ध चित्रों से, अजंटा के ९-१० न० की लेणो के भित्ति चित्रो से तथा मथुरा और कोशांबी से मिली मट्टी की मूर्तियो से मिलती हैं।

साची के अर्ध चित्रों में धोती सकच्छ और कभी-कमी विकच्छ होती हैं। दुपट्टे कई तरह से ओढ़े जाते थे। लोग प्राय. साफे बांधते थे। साफे के फेंटे जूडे के चारों ओर होते थे। साफे अलग-अलग ढग के होते थे यथा नीची फेंट वाला साफा कुछ चूनन लिये, दाहिनी फेंट वाला साफा, मोती की लड़ी से सजा साफा, लंबोतरे लट्टू वाला साफा, गद्दीदार साफा, तिरछा गोलुबेदार साफा, ढोल के आकार का लट्टू वाला साफा, शंखाकार साफा, चक्करदार पगड़ी, फिरहरीदार पगड़ी, लबोतरी लट्टू वाली पगड़ी, पत्राकार पगड़ी, बेलन के आकार की पगड़ी, तीन लट्टुओ वाली पगड़ी।

टोपियां बहुधा विदेशी पहनते थे। निम्नलिखित प्रकार की टोपियां सांची के अर्ध चित्रों में देख पड़ती हैं—कुलाहनुमा टोपी, चौकस गोल किनारे वाली टोपी, बीच से कटी झालरदार टोपी, नीचे वार की तुर्कीटोपी नुमा टोपी, पंजको से सजा कुलाह, चोटीदार टोपी। सिर कभी-कभी फीते से बांधे जाते थे।

स्त्रिया सकच्छ साड़ी और कमरबंद पहनतीं थी। एक दूसरी तरह की साड़ी में एक भाग कमर में लपेट लिया जाता था। कभी-कभी चूनन बगल में खोस ली जाती थी। ओढ़नी ओढने के निम्न लिखित प्रकार थे—घोंघी के आकार की ओढ़नी, दोहरे किनारे की ओढनी, दोहरी ओढ़नी, पेंचीदार ओढनी, पंखाकार ओढ़नी, बढ्ढी ढकती हुई किनारेदार ओढनी। स्त्रियां कभी कभी पगड़ी और टोपी पहनती थीं। एक जगह एक स्त्री खोद पहने दिखायी गयी है।

मथुरा और कोसम से मिली मट्टी की स्त्री मूर्तियां कचुक और गहने पहनती है। इंडियन इंस्टिट्यूट म्यूजियम, आक्सफर्ड, में एक ऐसी ही मूर्ति गहनो के सिवाय बिना बाह का कचुक, जो केवल बायां कंधा ढाकता है, और कमरपेटी पहनती है। दुपट्टे एक या उससे अधिक है।

साची के अर्ध चित्रों में सिपाही इत्यादि कंचुक पहनते है। धनुर्धारी पूरे बांह का कंचुक तहमतनुमा धोती, कमरबंद और साफा पहनते थे। पैदल सिपाही धनुर्धारियो की तरह वस्त्र अथवा कमरबद से बंधी जांघिया पहनते थे। विदेशी शक पूरी बाह का कंचुक, तथा कमरबद पहनते थे और अपना सिर रूमाल से बांधते थे। एक जगह एक विदेशी अधबहियां कंचुक, जांघिया और बूट पहने दिखाया गया है। विदेशी यूनानी चप्पल भी पहनते थे।

ब्राह्मणों का कौपीन घाघरेनुमा होता था और वे वैकक्ष्य पहनते थे। ऋषि पत्नियो का भी वैसा ही पहरावा था।

उत्तर और दक्षिण भारत की वेश-भूषा में कुछ स्थानिक विशेषताएं थीं। अमरावती के इस युग के अर्ध चित्रों में सद्गृहस्थ लंबोतरा साफा, घुटनों तक की धोती और झब्बेदार कमरबंद बांधते थे। महाराष्ट्र में धोती छोटी होती थी और कमरबंद उमेठे दुपट्टे के होते थे। भाजा के अर्ध चित्रों में एक अंगरक्षक अटपटी पगड़ी और लहरियादार कंचुक पहने है। एक द्वारपाल लबी धोती कमरबद, पटका तथा गुबददार पगड़ी पहनता है और एक सिपाही हलकी पगड़ी, वैकक्ष्य, सरकती धोती और कमरबद पहनता है। एक जगह घुमावदार पगड़ी आयी है।

स्त्रियों के शिरोवस्त्र तरह-तरह के होते थे यथा सिर पेंच सहित ओढनी, कई तहो की भारी ओढ़नी, दांतेदार पगड़ी, गोल मूंगरीनुमा शिरोवस्त्र, फीतेदार जूड़ा और कान तक पहुंचती पगड़ी।

अजन्ता के ९-१० नं० की लेणों के भित्ति चित्रों में हलकी पगड़ी, अधबहियां कंचुक और अंगा आते हैं।

ईस्वी सन् के प्रथम तीन सौ वर्षों में भारतीय जीवन और संस्कृति में काफी उन्नति हुई। इस युग में बृहत्तर भारत और मध्य एशिया में भारतीय उपनिवेश बने और भारत और रोम में रत्नो, गध द्रव्यो, स्फटिक के बरतनों और कपड़ों का कीमती व्यापार बढ़ा।

इस युग में भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की प्रचुर सामग्री हमें गंधार की मूर्तियो और अर्ध चित्रों

से, मथुरा की मूर्तियो से और अमरावती और गोल्ली के अर्ध चित्रो से मिलती है। इस काल में उत्तर-पश्चिमी भारत में धोती, चादर, पगडी, साडी और ओढ़नी के सिवाय कचुक, शलवार, टोपिया, जिरह-बख्तर और पूरे बूट प्रचलित थे, जैसे ईरानी और मध्य एशिया के पहरावे भी मिलते हैं। यहां हमें यूनानी वेश-भूषा के भी दर्शन मिलते हैं। शक राजाओ की पोशाकों का पता सिक्को से चलता है। इस युग में दक्षिण भारत में स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा काफी सादी होती थी। दोनों ही मलमली कमरबन्द और धोतियां पहनते थे। पुरुष पगडी भी पहनते थे। सिपाही और द्वारपाल इत्यादि कचुक पहनते थे और कभी-कभी उनके सिर पर कुलाहनुमा टोपी भी होती थी।

कुषाणयुग के साहित्य से कपड़ों और वेश-भूषा पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। वस्त्रों के वर्णन छिटफुट से है और उनके माने समझने में भी कठिनाई पडती है। इस युग के कपड़ों का अच्छा वर्णन पेरिप्लस आफ दि एरीथ्रियन सी नामक ग्रंथ में आया है।

इस युग में कपास खूब होती थी। कपास बाजार से खरीद कर धुन ली जाती थी और उससे एक सा महीन सूत कात लिया जाता था। बुनकर चीर छोड़ कर कपडे बिनते थे और उनकी स्त्रिया ताने पर माड़ी देती थीं।

कलिंग देश के नाग बुनकर बहुत अच्छी मलमल बिनते थे, जिसकी खपत यहां और विदेश दोनों में ही होती थी। रोम साम्राज्य में भारतीय मलमल की गहरी खपत थी। पेरिप्लस के अनुसार बढ़िया मलमल को मोनाचे और घटिया रूई के कपड़े को सगमतोगेने कहते थे। गुजरात के घटिया तरह के कपड़े को मोलोचीन कहते थे। यहां से कपड़े पूर्वी अफ्रिका के बदरगाहो को, तथा अरब, मिस्र और सोकोतरा को भेजे जाते थे। त्रिचनापल्ली और तजोर की मलमल को अर्गरतिक कहते थे। मसलीपटम में भी मलमल बनती थी। पूर्वी भारत की मलमल को गेंजटिक कहते थे और यह शायद काशी और ढाका के पास बनती थी।

इस युग में रेशमी कपड़े भी खूब चलते थे और इनके लिए पट्ट।शुक, चीन, कौशेय और धौतपट्ट शब्दों का व्यवहार हुआ है। विचित्र पटोलक में तरह-तरह की नक्काशियां बनी होती थीं और इसकी तुलना गुजरात की आधुनिक पटोला साडी से की जा सकती है।

सिंध नदी के बाब्रिकन बदरगाह से रेशम और रेशमो कपड़ो का निर्यात होता था। इस युग में चीनी रेशमी कपड़े ब्रह्मपुत्र की घाटी, आसाम और पूर्वी बगाल हो कर भी आते थे। मलाबार के बदरगाहों में भी पूर्वी बगाल से रेशमी कपडे आते थे। कावेरीपट्टन में रेशम के व्यापारियों की दूकानें थीं। रोमन व्यापारी रेशमी कपड़े गगा के मुहाने, खभात की खाडी और त्रावनकूर के बंदरगाहों से खरीदते थे, जहां चीनी व्यापारी आते थे।

ऊनी कपडों को साधारणत कंबल कहते थे। दूश्य भी किसी तरह का ऊनी कपड़ा होता था। ऊन दुकूल मिलाकार भी अच्छे वस्त्र बनते थे। अच्छे पश्मीने भी बनते थे। इसी पश्मीने के बने एक लाल रग के रूमाल को ईरान के एक बादशाह ने रोमन बादशाह आरेलियन को उपहार में भेजा। पश्म को शायद रोमन कानून के संग्रह में मारकोकोरम लाना कहा है। हुरमुज द्वितीय को काबुल की राज कन्या के साथ विवाह करने पर दहेज में पश्मीने के शाल मिले जिनकी सुन्दरता देख कर लोग चकित हो गये।

ऊनी और सूती कपड़ों के सिवाय, क्षौम, सन और सफेद दुकूल के कपड़े भी चलते थे। खालिस सुनहले कलावत्तू से बने वस्त्र को हर्रणी अथवा हिरिवस्त्र कहते थे। बनारस के बने कपड़ों के लिए काशिक वस्त्र, काशी, काशिकाशु इत्यादि शब्दो का प्रयोग हुआ है। शायद काशिक वस्त्र का तात्पर्य रेशमी वस्त्रो से न हो

कर सूती वस्त्रो से है । काशी की मलमल बड़ी महीन होती थी और उससे पहनने के कीमती कपडे बनते थे । फलक नाम का वस्त्र शायद फल के रेशों से बनता था। अपरात में बने वस्त्र को अपरातक कहते थे । फुट्टक वस्त्र से शायद छींट का मतलब है । पुष्पपट्ट से किंखाव का तात्पर्य है ।

भिक्षुक तथा श्रमण-ब्राह्मण वृक्षो की छालों के रेशों, घास इत्यादि के बने कपड़े और ऊट, बकरों इत्यादि के वालो के बने कवल और जानवरो की खालें पहनते थे । इस युग में भारत और रोम के बीच चमडे और समूरो का अच्छा व्यापार था। समूर चीन, तिब्बत इत्यादि देशो, से भारत में आते थे । कुछ मामूली दरजे के चमड़े अथवा कवल भी खभात की खाड़ी हो कर पूर्वी अफ्रिका जाते थे ।

इस युग में कपडे का इतना गहरा व्यापार था कि बहुत से व्यापारी केवल एक ही किस्म के कपड़े रखते थे । सोपारा में काशी के वस्त्रों की दूकान और छींट की दुकान का उल्लेख है । मदुरा में वजाजे का जिक्र है । कावेरीपट्टन में कपड़े के दल्लालों का भी उल्लेख है ।

इस युग के साहित्य में वेश-भूषा का कम उल्लेख है । साधारणत. लोग धोती दुपट्टा पहनते थे । काशी के धोती दुपट्टे प्रसिद्ध थे और कभी-कभी इनके बड़े ऊचे दाम होते थे । राजे चौड़े किनारे वाले, नये वस्त्र पहनते थे । मामूली किसान सन की धोती और लगोटी पहनते थे । पगड़ी पहनने की भी प्रथा थी । राजे कभी-कभी कचुक भी पहनते थे । अग रक्षक और सिपाही तो अक्सर कचुक और जिरह-बख्तर पहरते थे। दक्षिणी राजे जडाऊ टोपी और धोती पहनते थे । उच्च वर्ग के तामिल धोती पहनते थे और एक टुकडे कपड़े से अपने सिर ढक लेते थे । अग रक्षक कोट पहनते थे । यवन अग रक्षक युद्ध क्षेत्र में कचुक पहन कर पहरा देते थे ।

तामिल स्त्रिया पैर तक पहुंचती साडिया पहनतीं थीं। वारवनिताओं की साडी आधी जाघ तक पहुचती थी । जंगली स्त्रियां पत्तो की घघरिया पहनती थीं।

गधार की मूर्तियों और अर्घ चित्रो में आयी वेश-भूषा में हम भारतीय ईरानी, और यूनानी वेश-भूषाओं का सम्मिश्रण पाते हैं । राजे और सामत पैर तक पहुचती सिलवटदार धोती तथा चादर पहनते थे । चादर अनेक तरह से पहनी जाती थी ।

डोरी से बने कमरबंद झब्बेदार होते थे । चट्टी या खडाऊ पहनने की भी प्रथा थी । बाल अक्सर मोती की लडों और रत्नों से सजे होते थे, पर पगडी भी पहिनी जाती थी ।

ये पगडिया बधी बधाई पहिनी जाती थीं। शीर्षपट्ट बहुधा अलकृत होते थे । एक शीर्षपट्ट पर मिथुन का आकार है, दूसरे पर सुवर्ण और नाग, तीसरे पर बुद्ध मूर्ति और चौथे पर मोर। पगडी का ऊपरी सिरा पखे जैसा होता था, और फेंटें खूब सजी हुई। एक पगडी में गरुड़ मूर्तियो से सज्जित एक पट्टी है जिसके बद हवा में पीछे फडफड़ाते दिखाये गये हैं ।

पगडियों के निम्न लिखित रूप हैं—चक्करदार पगडी, हलकी पगडी, त्रिकोण अलंकार से सज्जित हलकी पगडी, चक्राकार हलकी पगड़ी, शीर्षपट्ट युक्त भारी पगडी।

श्रेष्ठि गण धोती उत्तरीय और चादर पहनते थे। सरदी में कचुक पहनने की प्रथा थी। कभी-कभी इसमें तुक मेक के लिए पट्टी होती थी। एक दाता कंचुक, वैकक्ष्य और फुदनेदार टोपी पहने है। समूरी अस्तर वाला चुगा भी कभी-कभी पहना जाता था।

गधार की मूर्तियों में सिपाही दो तरह के कपडे पहनते थे। एक तरह के सिपाही धोती, पेटी और वैकक्ष्य पहनते थे । उनके वाल खुले अथवा पगड़ी से ढके होते थे। दूसरी तरह के सिपाही खोद बख्तर पगड़िया कमरवन्द और परतले पहनते थे । कभी-कभी सिपाही जाघिया भी पहनते थे ।

शिकारी केवल धोती पहने दिखाये गये हैं। खेतिहर एक छोटी धोती और मजदूर लंगोट पहनते थे। पहलवान लगोट अथवा जाघिया पहनते थे । ब्राह्मण धोती और चादर पहनते थे ।

विदेशियों की टोपिया निम्न लिखित प्रकार की होती थीं——गोटदार कुलाहनुमा टोपी, अर्धचद्र से अलकृत फूदनेदार टोपी, सकर मुद्धी के रूप की चोटी सहित टोपी, कटे किनारे वाली टोपी या खोद ।

स्त्रियों की वेश-भूषा में तीन कपडे, यथा कचुक, साडी और दुपट्टा चादर, होते थे। कभी-कभी चादर का कोना कमर में खोस लिया जाता था । स्त्रियो के कचुक प्राय घुटने तक पहुचते थे। कभी-कभी ये आगे खुले भी रहते थे और तब यह कोटनुमा दिखते थे । एक दूसरी तरह का कोट नाभि को ढकता दिखलाया गया है। कचुक साड़ी के नीचे अथवा ऊपर पहने जाते थे। कसे कंचुक पर प्रायः सिलवटें पड़तीं थीं। स्त्रिया कभी कभी स्तन पट्ट भी पहनतीं थीं।

साडिया दो प्रकार से पहनी जातीं थीं। एक में एक हिस्सा कमर में लपेट लिया जाता था और दूसरा पीछे खोंस लिया जाता था, दूसरी में साडी का एक सिरा कधे पर डाल लिया जाता था। कभी-कभी साडी काफी बडी होती थी और उसका छुट्टा भाग आगे अथवा पीछे लटका रहता था। कभी-कभी साड़ी का छुट्टा सिरा बायें कधे पर योजक से बांध दिया जाता था, कभी-कभी साडी का छुट्टा सिरा दाहिने स्तन को अनावृत रखते हुए कधे पर डाल दिया जाता था, ढीली तौर से साडी पहनने में बायीं छाती खुली रह जाती थी, दुपट्टा या चादर का एक छोर कमरबद में खोंस लिया जाता था। स्त्रिया अक्सर अपने जूडे शेखरकों से सजाती थीं, पर कभी कभी मुकुट भी पहनतीं थीं।

यवनिया भारतीय और यूनानी दोनों तरह की पोशाकें पहनतीं थीं। यूनानी पोशाक में कचुक, घाघरा और कमरबद होते हैं। सिर पर टोपिया होती हैं। भारतीय अगरक्षिकाए साड़ी, कमरबंद और चादर पहनती हैं।

मथुरा की मूर्तियो से हमें विदेशियों तथा मध्य देश के निवासियो की वेश-भूषाओ का पता चलता है। भारतीय प्राय सकच्छ लबी धोती, दोनो कधों पर पडा दुपट्टा और पगडिया और पटके पहनते थे। कभी-कभी कमरबद भी वेश-भूषा का अग होता था। कभी-कभी कमरबंद रस्सी की तरह बटा होता था। दुपट्टों और कमरबदों के पहरने के और भी बहुत से ढग बतलाये गये हैं। घुड़सवार कई फेंटो से बधी जाघिया पहनते थे।

पगडी प्राय सादे कपडे की बनी होती थी और जूडे के चारो ओर लपेट ली जाती थी। रईस शीर्षपट्ट युक्त कामदार पगडिया पहनते थे। कभी-कभी शीर्षपट्ट चपकनदार होता था और कभी-कभी धातु की एक पट्टी से युक्त। कभी-कभी शीर्षपट्ट में कलगी लगती थी।

विदेशी राजे और सिपाही कचुक, शलवार, टोपी और जूते पहनते थे । कनिष्क की बेसिर वाली मूर्ति घुटने के नीचे तक पहुचता कचुक, चुगा और तस्मेदार बूट पहने है। एक शक राजा की मूर्ति अलकृत वस्त्र का बना गोटदार कचुक और पूरे बूट पहने है । एक तीसरी मूर्ति गोटदार कचुक और कमरपेटी पहने दिखायी गयी है। सूर्य की एक मूर्ति गोटदार चुस्त कचुक, कमरबद और कारचोबी टोपी पहने हैं। एक ईरानी की मूर्ति खूब कामदार कचुक, पीठ पर लहराता रूमाल और चद्र सूर्य के आकारों से अलकृत कुलाहनुमा टोपी पहने है।

ईरानी और शक टोपियां पहनते थे । टोपियां निम्न लिखित तरहो की होती थीं—दो टुकडे नमदो से बनी कुलाहनुमा टोपी, बल खायी हुई कुलाहनुमा टोपी, अर्धचद्र युक्त टोपी, दिल्लीवाल पगड़ी नुमा टोपी, चपटी छत वाली सजी हुई टोपी ।

स्त्रियां करधनी से युक्त साडी और तहदार दुपट्टे पहनतीं थीं, कमरबद में दोनो ओर फंदे पड़ते थे। कभी-कभी कमरबद का झब्बेदार सिरा आगे लटकता हुआ छोड दिया जाता था, कभी-कभी दोहरे कमरबद का निचला भाग साडी में खोंस लिया जाता था, कहीं-कहीं कमरबद का एक सिरा हाथ में ले लिया जाता था। पटके भी पहने जाते थे।

कभी-कभी लंहगा भी पहना जाता था, पर कुषाणयुग की वेश-भूषा म यह अपवाद स्वरूप है। मथुरा की मूर्तियों में एक ग्वालिन की मूर्ति लहगा पहने है। लहगा कमर पर सीधा है और निचले भाग में केवल एक घेर पड़ता है।

विदेशी स्त्रिया कचुक पहनतीं थीं। कचुक का निचला भाग चूननदार होता था। कुछ स्त्रियां कचुक के ऊपर साडी भी पहिनतीं थीं। कभी कभी ईरानी स्त्रियां खूब कामदार कचुक पहनतीं थीं।

स्त्रियां प्राय' सिर नहीं ढकतीं थीं, पर कभी-कभी ओढ़नी ओढ़ी जाती थी। कभी-कभी स्त्रियां लीलावश अपने शिरोवस्त्र पगडी की तरह बांध लेतो थीं।

इस युग में दक्षिण भारत के लोग, जैसा कि अमरावती इत्यादि के अर्ध चित्रों से पता चलता है। सकच्छ लबी धोती पहनते थे। धोती कभी-कभी घुटनों तक और लांग सहित होती थी। कमरबंद बाधने की अनेक कलात्मक रीतिया थीं। नाचते समय कमरबद की मोर मुरक से नर्तक के सादे पहरावे में एक गति आ जाती थी।

वैकक्ष्य पहनने की अनेक रीतियां थीं। कभी-कभी छाती पर दुपट्टा परतले की तरह पहना जाता था। और कभी-कभी वह कधों पर डाल लिया जाता था।

शीर्षपट्ट युक्त पगड़िया दो तीन सादे फेटोंमें बाध ली जाती थीं। पगडियो के निम्न लिखित बहुत से प्रकार मिलते हैं, यथा अटपटी पगड़ी, मोरपंख युक्त चक्करदार पगडी, कुंडेदार शीर्षाभूषण युक्त पगड़ी, छल्लेदार पगड़ी, सरपेंच युक्त छोटी गोल पगड़ी, तीन कुब्बेवाली पगडी, दोहरी पट्टी वाले आभूषण से सज्जित नीची पगड़ी, शीर्षपट्ट युक्त तीन फेंटे की पगडी, चौंरीदार अटपटी पगडी, फिरकीनुमा आभूषण युक्त अटपटी पगडी, अनेक लट्टुओं वाली पगडी, गोल पेंचदार पगडी, दिल्लीवाल पगड़ी जैसी पगड़ी और चक्करदार ऊची पगड़ी, इत्यादि।

दक्षिण भारत में झब्बेदार धातु निर्मित टोपिया भी पहनी जाती थीं। टोपियो के निम्नलिखित प्रकार मिलते हैं यथा मोरपख और पत्राकार आभूषण से सजी टोपी, चायदानी के ढक्कन के शकल की टोपी, चपटी टोपी जिसका छज्जा ऊपर मुड़ा है, लहरियेदार छज्जे वाली टोपी, कटोप और शीर्षपट्ट युक्त टोपी। कोई-कोई अपने सिर और कान रूमाल से ढाकते थे।

साधारण इस युग में दक्षिणी सिले वस्त्र नहीं पहनते थे, पर सेवक, गायक, वादक, और विदेशी इस नियम के अपवाद थे। कंचुक के साथ कटोप और धोती पहनी अथवा पगडी, दुपट्टा और धोती पहनी जाती थी। शरीर के साथ कंचुक कमरबंद से बांध दिया जाता था। कभी-कभी ढीले बांह का कंचुक टोपी और चूड़ीदार पाजामें के साथ पहना जाता था। पालकी उठाने वाले कहार बांहदार या बिना बाह के कंचुक पहनते थे। एक साईस अंग्रेजी टेल कोट नुमा कचुक पहने है। ग्वाले जांघिया पहनते थे।

दक्षिणी स्त्रियां पैर तक पहुचती करधनी और कमरबद से युक्त साड़ियां पहनतीं थीं। कभी-कभी साडी पर करधनी, कमरबंद और पटका होता था और सिर पर पगडीनुमा वस्त्र। कभी-कभी स्त्रिया दुपट्टा या चादर हाथ में ले लेतीं थीं। स्त्रिया कभी-कभी पगड़ी और मुकुट भी पहन लेतीं थीं। पगडियां और मुकुट निम्न लिखित प्रकार के होते थे, झब्बेदार शीर्षपट्ट से युक्त चक्करदार पगड़ी, सींगनुमा केशवेश के ऊपर बधी पगडी, मकराकृत मुकुट, पूरे मकर की आकृति वाला मुकुट, कलगी युक्त चक्करदार मुकुट, छोटा मुकुट और लहरियादार मुकुट। ओढ़नी ओढ़े केवल एक स्त्री दिखलायी गयी है।

ब्राह्मण साधु पटकेदार कौपीन और दुपट्टा पहनते थे। बौद्ध भिक्षु कभी-कभी पासु दुकूल पहनते थे।

सिपाही कंचुक, कमरबद और धोती पहनते थे।

बच्चे जांघिया और कमरबंद पहनते थे। कभी कभी वे छन्नवीर और पेट पर कस कर बधा रूमाल पहनते थे।

प्राक् गुप्तयुग में हमें भारतीय वेश-भूषा का कम मसाला मिलता है। मथुरा से मिली इस युग की कुछ मूर्तिया तथा पवांय के अर्ध चित्रों के बल पर हम उत्तर भारत की वेश-भूषा का पता पाते है। दक्षिण भारत की वेश-भूषा का गोल्ली के अर्ध चित्रो में अच्छा प्रदर्शन है। खास गुप्त युग की वेश-भूषा के इतिहास की सामग्री हमें सारनाथ, देवगढ़, मडोर इत्यादि से मिली मूर्तियो और अजटा के १७ न० की लेण के भित्ति चित्रों में मिलती है। अजटा की लेणें गुप्त-साम्राज्य में नहीं थीं, पर गुप्तयुग की कला स्थानिक न हो कर देश के कोने-कोने में फैल चुकी थी और इस दृष्टि से अजंटा की कला को गुप्त कला के अन्तरगत मानना ठीक ही है। गुप्त सिक्कों पर अकित प्रतिकृतियों से भी तत्कालीन वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पडता है। इनसे पता लगता है कि गुप्तयुग के आरभ में राजो की वेश-भूषा शकों जैसी थी, गो कि वे कभी-कभी भारतीय वस्त्र भी पहनते थे, लेकिन इस युग के अंत में उनका पहिरावा पूर्ण भारतीय बन गया। रानियां कचुक और साडिया पहनतीं थीं। सिक्को पर आये वस्त्रो के सूक्ष्म अध्ययन से यह भी पता लगता है कि गुप्त-युग में भद्दे शक वस्त्रों में आकर्षण लाकर उन्हें भारतीय बाना दे दिया गया।

समुद्रगुप्त (३३५-३८५ ई० पू०), चद्रगुप्त द्वितीय (३८५-४१३) और कुमारगुप्त (४१४-४५५) में साम्राज्य के बढने के साथ ही कला और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। गुप्तयुग सास्कृतिक दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। महाकवि कालिदास ने इसी युग में अमर काव्यो और नाटकों की रचना की। भौतिक सस्कृति भी किसी से पीछे न रही। अजटा के भित्ति चित्रों और पुरातत्व के अवशेषों से हम उस युग की संस्कृति का पूरा खाका खींच सकते है। कपडे पहनने का लोगो को इतना शौक था कि प्रसाधन के लिए सस्कृत साहित्य में अनेक शब्द आये है।

गुप्तयुग में प्राय नौकर-चाकर सिले वस्त्र पहने दिखलाये गये हैं। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वे सब विदेशी थे। लगता है कुषाणयुग में राज दरबार की प्रथा के अनुसार दास-दासिया भी सिले कपडे पहनने लगे और यही प्रथा गुप्तकाल में भी प्रचलित रही। इस युग में विदेशो से भी दास-दासियो के आने का जैन साहित्य में उल्लेख है जिससे पता लगता है कि अफ्रिका, अरब, ईरान, यूनान, मध्य एशिया इत्यादि से दासिया इस देश में आती थीं और वे अपने जातीय पहरावे पहनतीं थीं। लगता है राजमहल के अंदर रहने वाली दासियो के पहरावे का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ा होगा। पर गुप्तयुग में विदेशी व्यापा-

रियों और सिपाहियों के सिले वस्त्रो का प्रभाव भी पड़ा । समन्वय के इस युग की एक विशेषता है कि विदेशी वस्त्रो के ग्रहण करते हुए भी उन्हें भारतीयता के साचे में ढाला गया।

इस युग में सिपाहियों की वर्दी भी दो तरह की थी। एक वर्दी में तो सिपाही धोती दुपट्टा पहनते थे और दूसरी में कंचुक और जाघिया । लगता है कि दूसरी वर्दी की लड़ाई में उपयोगिता देख कर गुप्तो ने उसे शकों और हूणों से ग्रहण किया ।

गुप्तयुग में बहुत तरह के महीन, छपे हुए और नकाशीदार कपड़े बनते थे जिनमें घारखाने, डोरिये, हस मिथुन इत्यादि मुख्य थे। अभाग्यवश इस युग के साहित्य में कपडो के छिटपुट वर्णन आये हैं; पर बाण-भट्ट की कादवरी और हर्षचरित से तथा जैन छेद सूत्रो से तत्कालीन कपड़ो के वर्णन मिल जाते हैं। वस्त्र चार विभागों में बटे थे यथा वल्कल, फाल, कौशेय और राकव । राकव पश्मीना था, जो पामीर के प्रदेश से आता था।

जैन साहित्य में कपडों की निम्नलिखित तालिका आई है—भगिय (भगेला), जगिय (ऊट के बाल से बना कपड़ा), पोत्तग (ताड़ के पत्तों से बना कपडा), क्षौम, तूल कड (सेमल की रूई से बना वस्त्र), आइणग (चमडे के बने वस्त्र), सहिण (महीन कपडे), महिण कल्लण (रंगीन और नक्काशीदार कपडे), आजक (बकरे के रोए से बने कपड़े), काय (नीली रूई के सूत से बने कपड़े), दूकूल (दुकुल वृक्ष की छाल के रेशे से बने कपड़े), हस दुकूल (हसाकृतियो से अलकृत महीन दुकूल), पट्ट (रेशमी वस्त्र) जिसके बहुत से भेद होते थे यथा मलय-अशुक, चीनांशुक, कृमिराग और सुवर्ण; पत्रोर्ण (शायद जगली रेशम), देसराग (जाटों के देश का रगीन कपडा), अमिला (कलफदार कपडा), गज्जफल (कड़कडाता कपडा), फालिय (पारदर्शी कपडा), कोयव (रोयेंदार कंबल), कबल (ऊनी चादर), पावर (चादर) इत्यादि।

शाल और चादरें निम्न लिखित भाति की होती थीं—उद्र (ऊद बिलाव के चमडे के बने रूमाल), पेस (सुईकारी के कामवाला शाल), पेसल (पश्मीने की चादर), नीलमिगाइणग (नीलगाय के चमडे से बना ओढना), गोरमिगाइणग (एक सफेद पशु के चमड़े से बनी चादर), कणग (सुनहरे काम की चादर), कणगकतिय (सोने के भरपूर काम वाली चादर), कणगपट्ट (पूरी कलाबत्तू से बिनी चादर), कणगखचिय (जरदोजी के काम की चादर), कणगफुसिय (थोडे सुनहले काम की चादर), कणगयक (सुनहरे किनारे वाली चादर), कणगफुल्लिय (जिसके फूल कलाबत्तू से कढ़े हो), ऊंट, बाघ और चीतों की खालों से बने प्रावार, आभरण (पत्ती की नक्काशी वाली चादर), आभरण-विचित्त (भरी नक्काशीदार चादर), पवग (पश्मीना), तिरीटपट्ट (तिरीट वृक्ष की छाल के रेशे से बने महीन कपडे), वडग (टसर), इत्यादि। इनके सिवाय रल्लक (एक तरह का कंबल) और शांणक (सनी कपडा) के नाम भी आये हैं।

इस युग के सूती कपड़ों का कम उल्लेख आया है । इसका कारण यह हो सकता है कि सूती कपड़े इतने प्रचलित थे कि उनके वर्णन की आवश्यकता नहीं समझी गयी, फिर भी उपरोक्त तालिका में गर्जफल और फालिक शायद सूती वस्त्र थे ।

अमर कोश में कपडे बुनने की क्रिया का उल्लेख है। करघे से तुरन्त उतरे कपड़े को निष्प्रवाणि, बिना धुली किये कपड़े को अनाहत, और करघे पर चढ़े कपड़े को तंत्रक कहते थे। कपड़े के किनारे को दशा या वस्ति, लबाई को दैर्घ्य, आयाम और आरोह और पनहे को परिणाह और विशालता कहते थे । साधारणतः बहुमूल्य कपड़ों के लिए सुचेलक और पट और मामूली कपड़ों के लिए वराशि और स्थूलशाटक शब्द आये हैं। कपडे धोने के लिए पहले वे सज्जीखार के घोल में डाल दिये जाते थे और बाद में उबाल कर साफ पानी में धो लिये जाते थे ।

गुप्तयुग के साहित्य में कपड़े बुनने के प्रसिद्ध स्थलों के नाम आये हैं । मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थी। लाट देश से आकर मदसोर में बसे पट्टवाय बहुत ही कोमल रग, बिरंगे और नक्काशीदार रेशमी कपडे विनते थे । आसाम के रेशमी कपडो में जाती पट्टिका (चमेली के फूलों से अलकृत मूगा) और कोमल चित्रपट मुख्य थे । पौंड् (उतर, बगाल) के धोती दुपट्टे प्रख्यात थे। गुजरात की बाधणी या चूदरी को पुलकबध कहते थे । कोट्टम्ब (आधुनिक पठान कोट), ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) और सिंधु कपड़े बुनने के बड़े केन्द्र थे । शायद पुष्पपट्ट (किखाब) काशी में बुने जाते थे ।

विवाह के अवसर पर धनिक वर्ग और राजे महराजे दहेज में तरह-तरह के कीमती कपड़े देते थे। राज्यश्री के विवाह अवसर पर राज महल में अनेक तरह के कपडे दहेज में देने के लिए सजाये गये थे जिनमें क्षौम, बादर (सूती कपड़े), दुकूल, लालातंतुज (बहुत महीन रेशमी कपड़ा) और नेत्र (एक तरह का रेशमी कपडा) मुख्य थे ।

इस युग में सर्व साधारण जन धोती दुपट्टा पहनते थे । धोती के लिए चार शब्द यथा अतरीय, उपसव्यान, परिधान और अधोंशुक आये हैं और चादर के लिए प्रावार, उत्तरासंग, वृहतिका, सव्यान और उत्तरीय । कूर्पासिक एक मिर्जई अथवा चोली की तरह कोई वस्त्र था । आधी जाघ तक की घघरी को चडातक कहते थे । जाडे में पहरे जाने वाले लबादे को नीशार और पैर तक लटकते अगे को प्रपदीन ।

इस युग में स्त्रिया साड़ी, चादर और वैकक्ष्य पहनती थीं। कभी-कभी वे रग बिरगे कंचुक और चंडातक पहनती थीं। साड़िया कभी-कभी पुष्पों और चिडियों की नक्काशी से सजी होती थीं। स्त्रियां बहुधा मौसिम के अनुकूल कपडे पहनतीं थीं। गरमी में हलकी दुकूल की साड़ी और बसंत में केसरिया साडी और लाल स्तनपट्ट पहनने के उल्लेख हैं ।

राजे सादे पर सजीले कपडे पहनते थे । रेशमी धोती, सितारे टके हुए दुपट्टे, तथा हसदुकूल वे अक्सर पहनते थे । उच्चवर्ग के लोग भी अपनी मान मर्यादा के अनुकूल कपडे पहनते थे ।

पैदल सिपाही कचुक, रूमाल और कमरबद पहनते थे । सिपाही रग बिरगी पगडियां और कंचुक भी पहनते थे । अश्वारोही दुकूल की बनी पगडी और वारवाण पहनते थे । युद्ध के अवसर पर सामंतगण पाजामे, कंचुक, स्तवरक के बने वारवाण, चीन चोलक और कूर्पासक पहनते थे । उनकी पगडियो में कर्णोत्पल की नालें खुसी होती थीं और उनके सिर केसरिया रंग के उत्तरीय से ढके होते थे ।

गुप्तयुग के साहित्य में पगडी के काफी उल्लेख हैं। ये मलमल की पट्टियों से बनी होती थीं।

जैन छेद सूत्रों से भी गुप्त की वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पडता है । हमें बतलाया गया है कि निम्नलिखित अवसरो के लिए अलग अलग कपड़े होते थे—नित्यनिवसन, मज्जनिक (नहाने के बाद के कपडे) क्षणोत्सविक (तिहवारों पर पहरने के कपडे) और राजद्वारिक (राजा से भेंट करने के समय के कपड़े) । कपड़े खूब साफ सुथरी तौर से रक्खे जाते थे । इनकी धुलाई (धौत), कुटी (घृष्ट), माडी (मृष्ट), और वासने (सप्रधूमित) का उल्लेख है । कपड़ों के भिन्न-भिन्न भागों में देवताओं और असुरों के निवास का लोगों को विश्वास था। शायद इसका यह कारण रहा हो कि लोग धार्मिक अवसरों पर ठीक नाप के शुद्ध कपड़े पहनें।

जैन साधु ऊट के बाल, भाग के रेशे, ताल के पत्ते, सन, ऊन, बकरे की रोएं इत्यादि से बने कपड़े पहन सकते थे । इनके कपड़े प्रमाणवत्, सम, स्थिर और रुचिकारक होते थे । उन्हें सूती और उसके न मिलने

पर रेशमी अधोवस्त्र, तथा ऊनी चादर और उसके न मिलने पर छालटी और रेशमी चादर ओढ़ने का आदेश है। साधु एक साथ केवल दो वस्त्र यथा ऊनी और सूती अथवा तिरीटपट्ट और छालटी पहन सकते थे।

जैन छेदसूत्रों में कटाई और सिलाई के अनेक शब्द आये है। यथाकृत सादे कपडे होते थे। कटे किनारे अथवा थोड़े काम वाले कपड़े को अल्पपरिकर्म और काफी काट वाले शरीर के नाप के बने कपड़े को बहुपरिकर्म कहते थे। उपरोक्त तीन तरह के वस्त्रों में जैन साधु केवल यथाकृत वस्त्र पहन सकते थे, लेकिन यात्रा और बीमारी के समय इस नियम का उल्लघन क्षम्य था। जैन साधु साधारण नागरिको की भाति कृत्स्न वस्त्र ग्रहण नहीं कर सकते थे। कृतस्न वस्त्र छः श्रेणियों में अर्थात् नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के अनुसार बटे थे। द्रव्यकृत्स्न वस्त्र के दो विभाग थे सकल और प्रमाण। सकल के अन्दर गज्झिन, चिकने, बिना छोर और किनारे वाले कपड़े होते थे। प्रमाणकृत्स्न वस्त्रों की नाप साधुओं के वस्त्रो के नाप से बढ कर या घट कर होती थी। क्षेत्रकृत्स्न वस्त्र अप्राप्य और बहुमूल्य वस्त्र होते थे। काल कृत्स्न वस्त्र साल के कुछ महीनों में बहुत महंगे पडते थे और मुश्किल से मिलते थे। भावकृत्स्न दो विभागों में यथा मूल्य के अनुसार (मूल्ययुत) और रग के अनुसार (वर्णयुत) बंटे होते थे। साधु इन दोनों तरह के कपड़े नहीं पहन सकते थे। पर स्थूण देश में अथवा उन देशों में जहा चोरों का भय नहीं था और जहां अच्छे वस्त्र पहनना कौतुक का हेतु नहीं बनता था जैन साधु कीमती, कपड़े किनारे हटा कर पहन सकते थे, पर कुछ अवस्थाओं में किनारे रख भी सकते थे। उकवत से पीडित साधु प्रमाणहीन वस्त्र भी पहन सकते थे। नैपाल, ताम्रलिप्ति और सिंधु-सौवीर में अच्छे कपडे पहनने की प्रथा थी, इसलिए जैन साधु भी अच्छे कपडे पहन सकते थे। कुछ ठडे देशो में साधु कीमती कबल भी ओढ सकते थे। जैन संघ में आने वाले राजकुमारों इत्यादि को उस समय तक कोमल वस्त्र पहनने की आज्ञा थी, जब तक वे खुरदरे कपडों के पहनने के अभ्यस्त नहीं हो जाते थे।

धोती चादर के सिवाय साधु सादे सूती कमरबंद भी पहन सकते थे। बीमार साध्वियो की सेवा करते समय वे गोपालकच्छ नामक वस्त्र विशेष पहनते थे।

साधारण नागरिकों की तरह जैन साधु निम्नलिखित चादरो और उपधानों का उपयोग नहीं कर सकते थे—कोयव (रोयेंदार कंबल), प्रावार (रजाई), पूरिका (पाटकी बनी चादर), विरलिका (दो सूती), उपधान (परो से भरी तकिया), तूलि (अर्क तूलसे भरी तकिया), आलिंगणिका (गाव तकिया), मसूरक (गोल गद्दी), गडोपधान (सिर के नीचे एक तरफ रखने की तकिया)।

जैन साध्वियां अपने शरीर को अच्छी तरह से ढकने के लिए निम्न लिखित वस्त्र पहनती थीं—अवग्रह (गुप्ताग ढकने के लिए एक तिकोना कपड़ा), पट्ट (नीवी बंद), अर्धोरुक (जाघिया), चलनिका (आधी जांघों की घघरी), अंतरनिवसनी (कपड़े पहनते समय आड के लिए एक गमछानुमा वस्त्र), बहि-निवसनी (एडी तक पहुंचती साडी), कंचुक (यह बेसिला वस्त्र होता था), औपकक्षिकी (छाती ढकते हुए दाहिने कंधे पर बधा वस्त्र विशेष), वैकक्षिकी (वैकक्ष्य), संघाटी (भिन्न-भिन्न अवसरों पर पहनने के लिए चार सघाटियां होती थीं) और स्कंधकरणी (हवा से कपडे उडने से बचाने के लिए कंधे पर फहराजाने वाला एक वस्त्र-विशेष)। गृहस्थ स्त्रियों की तरह साध्वियां साड़ी की चूनन आगे या पीछे नहीं खोंस सकती थीं। वे पर्यस्तक भी नहीं पहन सकती थीं, पर बीमारी में यह आज्ञा लागू नहीं थी, फिर भी यह आवश्यक था कि यह बारम्बार न हो।

आश्चर्य की बात है कि जिस युग में अनावृत शरीर आकर्षक माना जाता था दासियां और नर्तकियां सिले वस्त्र पहनती थीं। रायपसेणिय में एक जगह इसका उल्लेख है कि नट उत्तरीय, चित्र-पट से बने परिकर, कचुक और रग बिरगें वस्त्र पहनते थे । नटिया भी कचुक पहनती थीं।

गाय, भैंस, बकरे इत्यादि के चमड़ो से इस युग में तरह-तरह के जूते वनते थे। ये जूते प्रमाण और वर्ण के अनुसार सकल, प्रमाण, वर्ण और बंधकृत्स्न में वटे थे । सकलकृत्स्न एक तल्ले जूते होते थे और प्रमाण-कृत्स्न दो या इनसे अधिक तल्लों वाले जूते। खल्लक बूट नुमा जूते होते थे। इनके दो उपभेदो में अर्ध-खल्लक आधे पैर ढकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर। वागुर से पैर की अंगुलियां ढक जाती थीं और कोशा से ठोकर लगने से बचाव होता था । जघा पूरे जघे को ढकता था और अर्धजघा आधे जघे को । तसमेदार जूते को पुटक कहते थे । कोशक और खपुसा सरदी और बरफ से बचने के लिए पहने जाते थे । सकलकृत्स्न जूते एक चमडे से वने होते थे और वर्णकृत्स्न रंगीन चमड़े से । वंधकृत्स्न जूते में कई वद होते थे । जो घुटनो और पैर की अगुलियो पर होते थे । उपरोक्त किस्म के जूते केवल गृहस्थ पहन सकते थे । जैन साधु तो कई टुकडे चमड़ो से वने एक तल्ले जूते ही पहन सकते थे। कुछ अवसरों पर जैसे यात्रा, वीमारी, आकस्मिक विपत्ति में अविहित जूते भी पहने जा सकते थे ।

जैन साधु और साध्वियो की उपरोक्त वेश-भूषा में हम जैन-धर्म के विकास का रूप पाते हैं । आरंभ में रूखे वस्त्र केवल सामाजिक नियमो की पावदी के लिए पहने जाते थे, पर धीरे-धीरे भारतीय सस्कृति की विलासिता के प्रभाव से तप-प्रधान जैन धर्म भी नहीं बच सका और जैन धर्म को भी अपने वस्त्र सवधी कठोर नियमो को ढीला करना पडा ।

सातवीं शताब्दी के चीनी यात्रियों ने भी भारतीय वेश-भूषा का विवरण किया है। युवान च्वाङ के विवरण से पता चलता है कि पुरुष सफेद धोती, और वैकक्ष्य पहनते थे और स्त्रिया शायद कचुक, चादर और साडी । उत्तर भारत में सरदी के मौसिम में लोग तातारी ढग की वगल वदी पहनते थे । ई्त्सिग के अनुसार कश्मीर से लेकर मगोलिया तक लोग कमीज, पाजामें और रेफनाम का एक जाकेट नुमा वस्त्र पहनते थे ।

ई्त्सिग के अनुसार वौद्ध भिक्षु सघाटी, उत्तरासग और अतरवासक पहनते थे । इनके सिवाय वे निम्न लिखित वस्त्रों का व्यवहार भी कर सकते थे—निषीदक, निवसन, प्रतिनिवसन, कायप्र छन, मुखप्रोछन, केशप्रतिग्रह और भेषजपरिष्कार चीवर । रेशमी वस्त्र भी पहनने की आज्ञा थी। बौद्ध निकाय के चार सम्प्रदायो के भिक्षु अपने निवसन अलग-अलग ढग से पहनते थे और इससे उनकी पहचान हो जाती थी।

भिक्षुणिया उत्तरासग, अन्तरवास, और सकक्षिका तो भिक्षुओ के ढग पर ही पहनती थीं, पर निवसन की जगह चार हाथ लवी और दो हाथ चौडी घघरी पहनतीं थीं, जिसमें कमर पर बांधने के लिए वद लगा होता था ।

कुरता आज दिन भारतीयो का साधारण वस्त्र है । सस्कृत साहित्य में तो इसका उल्लेख नहीं आता, पर लि-येन के सस्कृत चीनी कोश में इसका रूप कुरती दिया हुआ है। यह तो निश्चय है कि कुरता पुर्तगाली भाषा का शब्द नहीं है जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, हो सकता है कि मध्य एशिया की तुर्की भाषा का यह शब्द हो।

फानयुत्सामिग में जतों के लिए कई शब्द आये हैं। कवधि, जो शायद ईरानी कफस का रूप है, वूट होता था, इसी से वृहत् कल्पसूत्र भाष्य का कफुस्स निकला है । ले-फान-तांग-सिआओसि में दो तरह के

और जूतों के नाम हैं—शवनस् और पूल, पर इन जूतों की बनावट का पता नहीं चलता। महाव्युत्पत्ति में जूतों के लिए उपानह, पादुका, पादवेष्टनिका, पूल और मड (मुड) पूल शब्द आये हैं। मडः जूता आज दिन भी उत्तरी भारत में पहना जाता है।

गोल्ली के अर्ध चित्रो से पता लगता है कि गुप्तयुग के पहले दक्षिण भारत की वेश-भूषा अमरावती के आयी वेश-भूषा से बहुत भिन्न न थी। उच्च पदस्य लोग घुटने तक की धोती और चूडी से निकलता हुआ कमरबद पहनते थे। एक जगह एक राजकुमार चुनी धोती, पेटी कमरबद और शीर्षपट्ट युक्त पगड़ी पहने हैं। घर में भी लोग कमरबद पहनते थे। युद्ध यात्रा के समय सिपाही अपनी धोती कमरबंद से खोंस लेते थे। अक्सर सिपाही धोती, कमरवद अथवा पगडी, कंचुक और धोती पहनते थे। अक्सर लोग लांगदार धोती पहनते थे। पगडी स्थिर रखने के लिए पीछे कभी-कभी चौपतिया कोढा लगा होता था। ब्राह्मण धोती और वैकक्ष्य और प्रतिहारी कचुक, ऊंची टोपी और वैकक्ष्य पहरते थे। गोल्ली में एक जगह एक स्त्री टोपी पहने दिखलायी गयी है।

गुप्तयुग की मूर्ति कला में रस और आध्यात्मिकता को प्रोत्साहन देने से उसमें यथार्थवादिता की कमी आ गयी है। उसमें वेश-भूषा का चित्रण रूढिगत आधारों पर हुआ है, इसलिए इस युग की मूर्तियो का महत्व वेश-भूषा के इतिहास के लिए कम है, पर इस कमी को अजंटा के भित्ति चित्र पूरा करते हैं। सिक्कों से भी हम तत्कालीन वेश-भूषा का सुन्दर चित्र पाते हैं। अजंटा के चित्रो पर सिक्को से मिली वेश भूषा से हमें पता चलता है कि भारतवर्ष मध्य एशिया, चीन और ईरान में आपस के सास्कृतिक और व्यापारिक सबध के कारण इस देश में बहुत से विदेशी वस्त्र भी ग्रहण कर लिये गये।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में तो बोधिसत्व धोती, चादर, और मुकुट पहने दिखाये गये हैं, पर सिक्कों पर अकित राजे तो धोती, दुपट्टा, कचुक, पाजामा, पगडी, टोपी और जूते पहने दिखाये गये हैं। लगता तो यह है कि बोधिसत्वों की वेश भूषा रूढिगत है और सिक्को पर राजाओ की वेश भूषा यथार्थ है। सिक्कों पर गुप्त राजे अधबहिया चाकदार और कामदार कोट, चूड़ीदार पाजामा और पूरे बूट पहनते थे। यह कोट कभी-कभी पूरी और ढीली आस्तीन वाला होता था और उसके साथ बटनदार बूट होता था। अधबहिया कचुक कभी-कभी जाघियो के साथ पहना जाता था। राजे अक्सर कंचुक, कमरबद, जाघिया और शीर्षपट्ट युक्त पगडी पहनते थे। कभी-कभी वे तुकमेकदार कोट, ब्रीचेस और खपुसा किस्म के जूते पहनते थे। आराम के समय राजे धोती और टोपी पहनते थे। चन्द्रगुप्त एक जगह कंचुक और कमरबद और कहीं-कहीं जाघिया और कमरवन्द पहरे दिखलाये गये हैं। शिकार के समय राजा कचुक, कमरवद, धोती और खोद पहने दिखाये गये हैं। घोडे पर सवार राजा धोती और कमरबद और कभी-कभी कमरबंद, कचुक और धोती पहनते थे। कभी-कभी उनके गले में दुपट्टा भी पड़ा होता था। कुमारगुप्त के युग में एक जातीय पहरावे का आविष्कार हुआ, जिसमें से पाजामा और पूरे बूट निकाल दिये गये। साधारणतः राजे चाकदार कंचुक और धोती पहनते थे और उनके साथ कमरवद भी। सिर प्रायः खुला रहता था। कभी-कभी वे टोपी भी पहनते थे।

अजंटा के भित्ति चित्रों में राजे और सामंत प्राय धोती और वैकक्ष्य पहनते हैं, पर उनके मुकुट रत्न जटित और भारी भरकम होते थे। एक जगह राजा धारीदार धोती, फब्वेदार कमरवद और सिर में पेंच युक्त पगड़ी पहने हैं। एक दूसरी जगह उनके पहरावे में धोती, पेटी, पटका, दुपट्टा और टोपी है। एक तीसरी जगह वे चारखानेदार धोती और धातु निर्मित टोपी पहने हैं। एक जगह राजा कूर्पासक, कमरबद और टोपी पहने हैं। दूसरी जगह राजा कूर्पासक, कमरबंद, धोती, वैकक्ष्य, करधनी और मुकुट पहने

है। एक चित्र में घोड़े पर सवार राजा कंचुक, धोती और कमरबंद पहने है । बाग के एक चित्र में राजे धारीदार धोती और चौखूटा मुकुट, तथा धोती और तिकोना मुकुट पहने दिखाये गये हैं। राजे अक्सर दुपट्टे नहीं पहनते थे और उनकी धोती प्राय: धारीदार होती थी । एक जगह अवलोकितेश्वर धारीदार धोती तिकोना मुकुट और करधनी पहने दिखलाये गये है। एक जगह राजा चारखानेदार धोती, दुपट्टा और आकर्षक गहने पहने है। एक जगह वे धारीदार धोती, मुकुट और कमरबंद पहने है। एक जगह उनकी वेश भूषा में मुकुट, धोती, कमरबद और करधनी है। एक ईरानी राजा कामदार लबा कोट, गोल टोपी और बूट पहने दिखाया गया है ।

अजटा के भित्ति चित्रो में निम्न लिखित भांति के मुकुट पाये जाते हैं—रत्न जटित लंबोतरा मुकुट, चोटीदार मुकुट, मोती की लडो से अलकृत लबोतरा मुकुट, वृत्तो और अर्ध चद्रो से अलकृत तिरछा मुकुट, पुष्पो से अलकृत त्रिभुजाकार मुकुट, कलगेवार मुकुट, तख्तियो से मडित त्रिभुजाकार मुकुट, चिपकी टोपी जैसा मुकुट, ऊचा टोपी जैसा मुकुट ।

अजटा के भित्ति चित्रों में घुड़सवार अक्सर पूरे बाह वाले कचुक पहने दिखलाये गये है। कभी-कभी वे कूर्पासक और जाघिया भी पहनते थे। ईरानी सवार तिकोने गले वाले अगे और ऊची टोपियां पहने दिखाये गये हैं। कभी-कभी चाकदार कचुक पर एक दूसरा वस्त्र होता था । उनके कंचुक कभी-कभी चौडे कालर के भी होते थे। बाग के एक गुफा चित्र में एक सवारो का गरोह तरह-तरह के कचुक पहरे दिखलाया गया है।

हाथीवान बहुधा कूर्पासक और जाघिया पहनते थे, पर कभी कभी लबे कचुक भी पहन लेते थे।

पैदल सिपाही धोतियां पहनते थे और कभी-कभी पट्टियों से सिर के बाल बांध लेते थे। कभी कभी वे कूर्पासक और सिर पर रूमाल बाघते थे । एक जगह एक असिवाहक और कुंतलवाहक (आ० ३२३) कचुक और कमरबद पहने है।

युद्ध भूमि में राजे और सामत कूर्पासक और पगडिया पहनते थे। शिकारी और बहेलिये छोटी धोतियां पहनते थे । एक जगह एक शिकारी चप्पल पहरे दिखाया गया है । एक जगह एक जगली लगोटी पहरे और धनुषबाण लिये दिखलाया गया है । एक जगह एक सँपेरा चारखानेदार धोती पहरे है । एक दूसरी जगह ऐसी ही धारीदार धोती पर तीर के फल बने हैं ।

अच्छे श्रेणी के शिकारी कंचुक और पाजामे पहनते थे । कचुकीगण पगडी, कंचुक और दुपट्टे पहनते थे । मन्त्रिगण कचुक, चादर और कूर्पासक पहरते थे। सामत और राजकुमारो की वेश-भूषा सादी होती थी। वे कभी-कभी जाघिया के ऊपर धोती पहरते थे। धोती उनकी चुनी होती थी और उस पर बटा कमरबद होता था । कभी-कभी धोती और पगडी पहनने का भी रवाज था। धोती खूब चुन और सजा कर पहनने की प्रथा थी । कभी-कभी लोग धारीदार धोती और चक्करदार पगडी पहनते थे। धोती पर भारी पेटी और ढीले कमरबद भी पहरे जाते थे।

गायक और वादक टोपी, कचुक और पाजामा पहनते थे और कभी-कभी कचुक और धोती । वे तरह तरह की टोपिया भी पहनते थे । वे धारीदार धोतिया भी पहनते थे । एक जगह एक वादक धोती, कमरबद और पेटी पहरे है ।

द्वारपाल भी अपने कपडे सभाल कर पहरते थे, उनकी धोती चुनी हुई और कमरबद खूब सजा हुआ होता था। वे कचुक और चौडी पेटी भी पहरते थे और कभी कभी फूलदार कोट और टोपी। एक जगह एक द्वारपाल बूट और कचुक पहरे दिखाया गया है।

राजभृत्य सिले कपड़े अथवा धोती पहरते थे। इनके कंचुको पर कभी कभी नक्काशियां वनी होती थीं। युद्ध के अवसर पर राजभृत्य अक्सर कूर्पासक, खौद और छोटी धोती पहरता था। नहलाने वाले नौकर लाल रंग की धोती पहरते थे और उनके सर रूमाल से ढके होते थे।

साधारण जन धोती, दुपट्टा और पगड़ी पहनते थे। ब्राह्मण धोती, दुपट्टा, कट।प और वैकक्ष्य पहनते थे। विदूषक कचुक, वूट, धोती, दुपट्टा और टोपियां पहनते थे। एक जगह मदारी चारखानेदार धोती और दुपट्टा पहने दिखाया गया है।

अजटा के भित्ति चित्रों में हम मध्य एशिया, ईरान और सिरिया के लोगों की वेश-भूषा के चित्रण भी पाते हैं। इन देशों से इस युग में भारत का व्यापारिक और सास्कृतिक सवध था। इनकी वेश-भूषा का भारतीय वेश-भूषा पर भी प्रभाव पडा, और विशेषकर दास दासिया सिले कपडे पहनने लगे।

मध्य एशिया अथवा ईरानी लोग कसीदे के कामदार कंचुक और कमरवद पहनते थे। कभी-कभी वे कचुक के साथ पगडी भी पहनते थे। ईरानी फीतेदार गोल टोपी, पाजामे, मोजे और रूमाल पहने दिखाये गये हैं।

अजटा में एक जगह एक राज दरवार में प्रणिधिवर्ग का समागम दिखलाया गया है। विद्वानो का अब तक विश्वास था कि इस दृश्य का संवध खुसरो द्वारा पुलकेशी के पास भेजे गये प्रणिधि वर्ग से है, पर वास्तव में यह दृश्य वेस्सन्तर जातक का है। यह हो सकता है कि इस दृश्य का अकन किसी विदेशी प्रणिधिवर्ग अथवा व्यापारियों के किसी भारतीय राज्य दरवार में आने के दृश्य को लेकर किया गया हो। कम से कम अजटा के इस दृश्य में तो ये सिरिया के व्यापारी मालूम पड़ते हैं जो राजा को अपनी भेंट देने आये है। ये धारीदार कमीज, कोट, पाजामे, नोकदार वूट और टोपिया पहरे दिखलाये गये है। सिरिया में ड्यूरा युरोपास की खुदाई से मिले कुछ भित्ति चित्रो में भी ऐसी ही पोशाक का अकन हुआ है और इसी के आधार पर हम कह सकते है कि अजटा के प्रणिधिवर्ग वाले दृश्य के विदेशी सिरिया के है।

अजटा के विदेशी तरह-तरह की टोपियां और खौद पहने भी दिखलाये गये हैं।

अजटा के चित्रों में वच्चे, धोती, वालवद, पटके, जाघिया, कंचुक, वूट, टोपी, छन्नवीर और कमर पेटी पहने दिखलाये गये हैं।

गुप्तयुग के सिक्को में स्त्रिया साड़ियां, कचुक, स्तनपट्ट, चादर और कूर्पासक पहने दिखलायी गई हैं। कभी-कभी वे जालीदार टोपी भी पहनतीं थीं। एक जगह एक स्त्री कुरता और घांघरा पहरे दिखायी गयी है।

अजटा के चित्रो में रानिया साड़ी और घघरी पहनती है। साडी बहुधा धारीदार होती है। कभी-कभी वे चोली पहनती थीं। एक जगह रानी चोली और कामदार घघरी पहने है, और एक जगह कचुक और स्तनपट्ट भी पहना गया है। घघरी गोटदार भी होती थी। चोली के साथ छोटी घघरी भी पहनी जाती थी।

अजंटा के चित्रो में हम दास-दासियों की वेश-भूषा में काफी चटक-मटक पाते हैं। मामूली तौर से दासियां साड़ी, ढीला कमरवद और कमरपेटी पहनती थीं, लेकिन वहुत सी दासिया घघरियां और कचुक भी पहनती थीं। इन के सिले वस्त्रों में कचुक, कंचुक के ऊपर जाकेट, वढावदार आगे वाला कचुक, फ्राकनुमा चोली, हंसदुकूल का वना पूरे वाह का कंचुक, विचित्र तरह की टोपी के साथ कचुक, कामदार टोपी और कुलाहदार टोपी मुख्य हैं।

विदेशी नस्ल की दासियाँ, टोपी, कसीदेदार कंचुक झालरदार लहँगे पहनतीं थीं। एक दूसरी जगह एक विदेशी दासी कुब्बेदार टोपी और कचुक पहने है। एक जगह कचुक के साथ रूमाल है। एक जगह उसकी टोपी तरंगेदार है। एक जगह एक दासी जाकेट और खोदनुमा टोपी पहने है।

दासिया मोती के गोटों से सजी चोली भी पहनती थीं। एक जगह एक दासी कचुक, चोली और घघरी पहने है। एक पखा हाकने वाली स्त्री स्तनपट्ट और घघरी पहरे दिखलायी गयी है। दासियां अकसर अधबहिया कचुक भी पहनती थीं। दासिया घघरी के साथ वैकक्ष्य भी पहनतीं थीं। वे बिना कधो और बाहो वाला कचुक और छपहली टोपी भी पहनतीं थीं। उनकी टोपी कभी-कभी चौपहली और धारदार भी होती थी। एक जगह एक मध्य वर्ग की स्त्री अथवा दासी बिना बांह की चोली पहरे है।

बाग के एक भित्ति-चित्र में हाथी पर सवार स्त्रिया जांघिया, चोली और घघरी पहने हैं।

अजटा के भित्ति चित्रों में रानियां मुकुट पहने दिखलाई गयी है। दासियां कभी-कभी टोपी पहनती है। एक जगह एक स्त्री छपे रूमाल से अपना सिर ढके है। एक जगह टोपी झालरदार है।

जगली स्त्रिया पत्तियों की बनी घघरी पहनतीं थीं। ग्रामीण स्त्रियां साडी पहने बतलायी गयी है।

नाचने बजाने वाली स्त्रियां धोती वैकक्ष्य और चोली, लबा कचुक जिसके ऊपर एप्रन जैसा वस्त्र होता था, घाघरा अथवा घघरी पहनतीं थीं। बाग के चित्रों में नर्त्तकी चाकदार कचुक, या जामा और रूमाल पहनती है। एक बजाने वाली के कंधे पर रूमाल है। वे घाघरा और अधबहिया कचुक भी पहनती है।

अजटा से आये कपड़ों पर निम्नलिखित नक्काशियां मिलती है : पट्टियां और फूल पत्तियां, और फूल की पखडिया, फुल्ले, खिले फूल, पेचक, धारियां और तीर के फल, पत्तिया छोटे फूल इत्यादि।

प्रागैतिहासिक काल से सातवीं सदी तक की वेश-भूषाओं और कपडों के वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय वेश-भूषा के इतिहास में भी एक विकास क्रम है, जिसके अनुसार समय-समय पर इसमें लोगों के रुचि के अनुसार और विदेशियों के ससर्ग से परिवर्तन होते आये। हमारा देश उष्ण प्रधान है और इसीलिए यहां सिले वस्त्रो को उतनी प्रधानता नहीं मिली जितनी कि ठढे देशो में। कपडे सिले न होने से उनमें एक सादगी है, पर मनुष्य की रुचि सर्वदा से बनाव चुनाव की ओर अधिक रही है और इसी लिए हम इन सादे वस्त्रों में भी बनाव चुनाव अधिक पाते है। शिरोवस्त्र और पगडियों के इतने प्रकार तो शायद ही और किसी देश में और किसी काल में मिलते हों। साराश यह है कि अगर वेश-भूषा के पैमाने से भी हम भारतीय सभ्यता को जांचें, तो भी वह किसी प्राचीन सभ्यता से कम नहीं रहेगी।

अन्त में मै उन मित्रों का आभारी हूँ, जिन्होने मुझे इस कठिन विषय को आगे बढ़ाने में सदा प्रोत्साहित किया। इन मित्रों में डा० वासुदेवशरण मुख्य है। पर यह पुस्तक अधूरी ही रह जाती, अगर मेरे चित्रकार मित्रो ने मेरा हाथ न बटाया होता। प्रारम्भ में श्री हरिहरलाल मेढ और श्री जगन्नाथ अहिवासी ने मेरी बड़ी सहायता की। बाद में श्री राम सूबेदार ने आकृतियो के बनाने का काम सभाला, बिना इनकी मदद के शायद यह काम ही न कर पाता। एतदर्थ मैं इन मित्रों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। प्रेस कापी तैयार करने में मेरी पत्नी श्रीमती शान्ति देवी ने पूरा हाथ बंटाया, इसके लिए मैं उन्हें क्या धन्यवाद दूं।

प्रथम अध्याय

प्रागैतिहासिक युग मे भारतीय वेश-भूषा—मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा

ऐतिहासिक अनुश्रुतियो के आधार पर तो हमारी सभ्यता सनातन है, और अधिकतर भारतीयो का विश्वास भी ऐसा ही है। पर किसी सभ्यता का इतिहास केवल अनुश्रुति गत कल्पनाओ को ही लेकर नही लिखा जा सकता। आजकल का वैज्ञानिक युग सत्य तो उसे ही मानता है जो दृश्य है और जिसकी सत्ता वैज्ञानिक आधारो पर साबित की जा सकती है। केवल आज से पचीस तीस वर्ष पहिले पुरातत्व शास्त्री भारतीय सभ्यता के इतिहास का आरभ वैदिक युग यानी १५०० ई० पू० या अधिक से अधिक २००० ई० पू० से करते थे। वैदिक आर्यों के पूर्व इस देश मे एक सभ्यता थी, यह तो विद्वान मानते थे पर उसका ठीक ठीक रूप क्या था इसका निश्चय विना पुरातत्व के सहारे करना कठिन था। युरोपीय विद्वानों को तो दृढ विश्वास हो चुका था कि भारतीय इतिहास का आरभ करीव १५०० ई० पू० से ही होता है और इसके पहिले शायद एक द्रविड सभ्यता इस देश मे थी पर उसकी सस्कृति आर्य संस्कृति से काफी कमजोर थी। द्रविड एक तरह से जगली थे और उनके धार्मिक विश्वास अर्थात नाग, वृक्ष पूजा इत्यादि भी उनके जगलीपन के सबूत है। इस विश्वास की मजबूती का अन्दाजा इसी वात से लगाया जा सकता है कि वेदों मे या वौद्ध और पौराणिक साहित्यो मे अगर भारत का किसी ऐसे देश से सवध का जिक्र है जिसकी ऐतिहासिक स्थापना से भारतीय सभ्यता का इतिहास १५०० ई० पू० के कुछ आगे बढ सकता हो तो विद्वानो मे एक तरह की खलवली मच जाती थी और वे इन ऐतिहासिक स्थापनाओ का खडन कर के यह दिखलाने का प्रयत्न करते थे कि भारतीय साहित्य मे यह अवतरण वाद के है। उदाहरण के लिए वावेरु जातक (जातक ३३९) मे वावुल देश को भारत से मयूर पक्षी जाने का उल्लेख है, जिससे पता चलता है कि इस देश से वावुल का सवध काफी प्राचीन समय से था[1]। इस सदर्भ को लेकर विद्वानो में काफी वहस छिड पडी। पालि वावेरु प्राचीन ईरानी हखामनी वादशाहो के अभिलेखो में आये वविरु का रूपान्तर माना गया और इस आधार पर इस मत की स्थापना हुई कि फारस की खाडी के देशों से और भारतवर्ष से ई० पू० पाचवी से सातवी सदी तक व्यापारिक सवध था। लेकिन इस स्थापना को विद्वानो ने एक स्वर से स्वीकार नही किया। श्री हलेवी का तो यह दृढ मत था कि यह उद्धरण ई० पू० दूसरी शताब्दी के पहिले का नही हो सकता लेकिन इस सवध में श्री हलेवी इस वात की मीमासा करना भूल गये कि जातककार ने अगर अपनी कथा ई० पू० पहली

१—सिलवें लेवी, ओतूर दु वावेरु—जातक, पृ० २८४ आगे, मेमोरियल सिलवें लेवी, पेरिस, १९३७

या दूसरी शताब्दी मे लिखा तो उसने बाबुल का ग्रीक नाम जो सिकदर के समय से चल चुका था क्यो न देकर उसके पहले चलने वाले ईरानी नाम का क्यो प्रयोग किया। इन सब तर्कों से यह पता चलता है कि पश्चिमी पुरातत्ववेत्ता और भाषाशास्त्री भारतीय सभ्यता को मिश्र और बाबुल की प्राचीन सभ्यताओ की कोटि में नही आने देना चाहते थे। इस बात से उनका पक्षपात तो साबित होता है पर प्रमाणाभाव से हम उनकी विधिवत युक्तियो के खडन मे प्राय असमर्थ थे । लेकिन उनका मत कुछ दिनो तक ही चल सका। १९२२ ई० मे मोहेन-जोदडो के एक बौद्धस्तूप की खुदाई करते हुए श्री राखालदास बेनर्जी को सिंधु-घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता का पता चला। मोहेनजोदडो और हडप्पा की खुदाई जैसे जैसे आगे बढती गयी वैसे वैसे भारतीय सभ्यता की प्राचीनता के ठोस सबूत मिलते गये और पुरातत्ववेत्ताओ ने एक स्वर से इस बात को स्वीकार कर लिया कि भारतीय सभ्यता प्राचीनता मे सुमेर और मिश्र की सभ्यताओ से न केवल टक्कर ही लेती है वरन कुछ बातो में जैसे नगर रचना में तो उनसे भी आगे बढ जाती है।

इस सिंधुघाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता के जो कुछ भी अवशेष मिले है उनसे पता चलता है कि वह सभ्यता वैदिक सभ्यता से कही आगे बढी हुई थी। सिंधुसभ्यता ३००० ई० पू० या ४००० वर्ष पूर्व फूल फल रही थी और इसमे वैदिक आर्यों की सभ्यता का कोई लेश नही मिलता। इस सभ्यता का सबध सुमेर, अक्काड और एलम से भी था और अफगानिस्तान, कश्मीर और सुदूर दक्षिण से भी। उस प्राचीन काल में भी सिंधुघाटी की सभ्यता काफी आगे बढी हुई थी। बडे बडे शहरो मे लोग रहते थे । गेहू और जौ की खेती होती थी और लोग बैल, भैंसे, भेंडें, सूअर, कुत्ते तथा हाथी पालते थे । सवारी के लिए वे पहियेदार गाडियो का व्यवहार करते थे। वे धातुओ के सामान और औजार बना सकते थे। लडाई और शिकार में वे धनुष बाण, भाले, कुल्हाडिया, छूरे तथा गदा व्यवहार मे लाते थे । उनके घरेलू मिट्टी के बरतन चाक पर चढे होते थे और अक्सर उन पर अलकार बने होते थे। समृद्धजन प्रसाधन के लिए सोने, ताबे, कच्चे शीशे, हाथीदात और अकीक इत्यादि की मणियो से बने गहने पहनते थे, गरीब मट्टी तथा शख के बने गहनो ही पर सतोष करते थे । लेखन कला से भी वे अवगत थे । सभ्यता के इतने आगे बढने पर भी सिंधु सभ्यता मे वस्त्र काफी सादे होते थे । साधारणत लोग लगोटी या तहमत पहनते थे। बहुधा लोग नगे भी रहते थे । कभी कभी चादर से छाती ढकी होती थी। बाल बहुधा फीतो से बधे रहते थे। स्त्रियो के शिरोवस्त्र कभी कभी पखे के आकार के होते थे ।

मोहेनजोदड़ो में कताई के साधन

मोहेनजोदड़ो से बहुत सी तकुओ की फिरकिया मिली है जिनसे पता लगता है कि अमीर गरीब सब सूत कातते थे । गरम कपड़े ऊन से बनते थे और हलके कपडे सूती होते

थे। मोहेनजोदडो से मिले हुए एक चांदी के पात्र में चिपके वस्त्र के कुछ टुकडो के वैज्ञानिक अनुसधान से इस वात का पता चला कि इन टुकडो में सूत उस सावारण कपास का है जो आज दिन वहुतायत से भारतवर्ष में होती है। सर जान मार्शल का कहना है कि इस खोज से अव यह वात पुष्ट हो जाती है कि वावुली भाषा मे सिधु और ग्रीक भाषा मे सिडोन (Sındon) जिनका अर्थ कपडा होता है सेंमल रूई के सूत के न हो कर कपास के होते थे[२]।

सिंधु सभ्यता में पहनने के कपड़े

सूती वस्त्र खंड के मिलने से यह विचार स्वाभाविक ही है कि मोहेनजोदडो में भाति भाति के वस्त्र पहने जाते रहे होगे लेकिन वस्त्रो के इतिहास के सम्वन्ध में जो कुछ भी सामग्री हमें मोहेनजोदडो और हडप्पा से मिली है उससे हमारी यह धारणा गलत सिद्ध होती है। एक मनुष्य मूर्ति एक लंवी चादर पहने हुए है (चि० १–२) यह चादर छाती ढकती हुई वाए कधे पर डाल दी गई है, वांयाँ हाथ खाली है। यह चादर काफी लवी होती थी और वैठने पर पैरो तक पहुंच जाती थी। पत्थर की एक दूसरी मूर्ति एक तहमत नुमा कपडा पहने हुए है[३]। वाए कधे के नीचे एक अनिर्धारित रेखा से शायद चादर का तात्पर्य हो। अगर हमारा अनुमान ठीक है तो चादर दाहिने कधे को ढकती थी। लेकिन चादर पहिनने का यह ढग अनियमित सा है क्योकि अव तक मिली हुई मूर्तियो मे चादर वायें कधे को ही ढाकती हुई दिखलायी गयी है, उनका दाहिना कधा हमेशा खुला हुआ होता है।

यह कहना तो कठिन है कि आदमी चादर के नीचे धोती, लगोटी या तहमत ऐसा कोई वस्त्र वरावर पहिना करते थे क्योकि मनुष्य मूर्तिया प्राय नगी वतलायी गयी है। लेकिन मुद्राओ पर चित्रित देवता और वीर पुरुष एक वहुत सकरा कोपीन पहने हुए दिखलाये गये है। हडप्पा से मिले हुए एक ठीकरे पर वनी हुई मनुष्य मूर्ति[४] एक तग मोहरी वाला पाजामा या धोती पहने हुए दिखलायी गयी है।

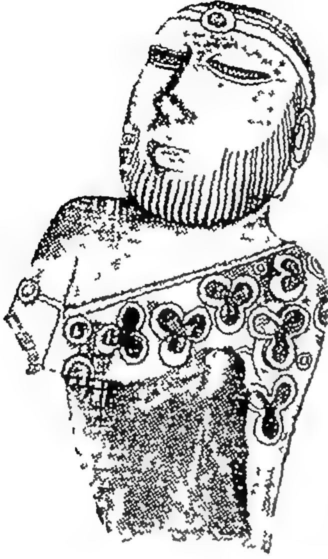
हडप्पा और मोहेनजोदडो से अभी तक जो सामग्री हमें मिली है उसके आवार पर यह कहना मुश्किल है कि सिंधु सभ्यता के लोग सिले हुए कपडो से अवगत थे अथवा नही। केवल एक मूर्ति कमीज जैसा वस्त्र पहिने हुए है जो कमर पर एक डोर से वधी हुई है[५]।

२—मार्शल, मोहेनजोदडो एड इडस वेली मिविलाइजेशन १, पृ० ३३, प्लेट ९८

३—मेके, फरदर एक्सकेवेशंस एट मोहेनजोदडो, भा० १, पृ० २५७, भा० २, प्ले० १०५, सं० ६०-६१

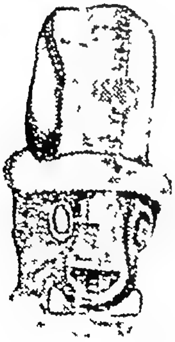
४—मेके, इडस वैली सिविलाइजेशन, पृ० १०३

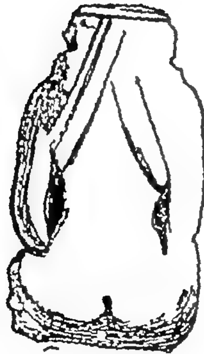
५—मेके, उपरोक्त

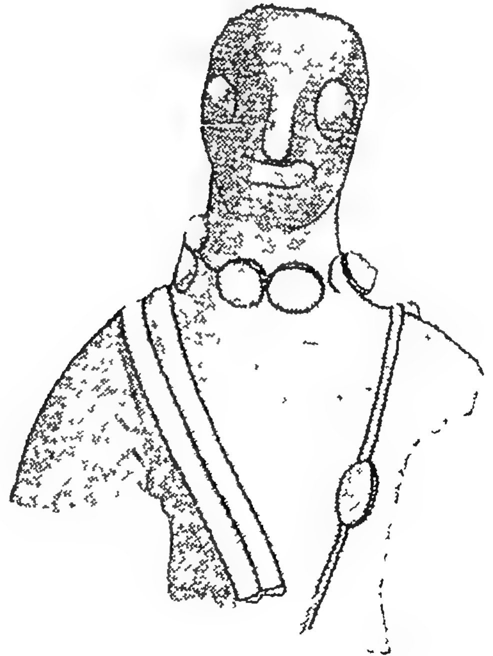

१


२


३


४


५


६

वाल बहुधा फीते से बधा होता था (आ० १)। लगता है मनुष्य कभी कभी नोकदार चपकी हुई टोपी भी पहनते थे। इस टोपी की नोक या तो फीते से बधी हुई एक तरफ झुकती हुई दिखलाई गई है (आ० ३) [६] या वह पेचदार है (आ० ४) [७]।

कभी कभी दुपट्टे की तरह का वस्त्र मनुष्य गले मे पहने दिखलाये गये है। यह एक तरफ झुकता हुआ होता है (आ० ५) [८]। बटन या ब्रूच से बधा हुआ यह दुपट्टा प्राय दोहरा होता था (आ० ६) [९]। डा० मेके [१०] का यह अनुमान है कि यह दुपट्टा शायद किसी पद के अधिकार का अथवा किसी धर्म विशेष का द्योतक है।

स्त्रियो की वेश-भूषा

मट्टी की मूर्तियो मे स्त्रियो के जो भी वस्त्र आते है वे काफी साधारण है। अगर गहने बाद कर दिये जावे तो स्त्रियो के धड नगे दीखते है। सकरी साडी घुटने के बहुत ऊपर पहुचती है, इसे साडी न कह कर लगोटी कहना बेहतर होगा। जतरो पर बनी स्त्री मूर्तिया भी ऐसी ही लगोटी पहने है। लेकिन इस लगोटी का आगा पीछा के बनिस्वत काफी छोटा होता है। लगोटी को कमर से बाधने के लिए मेखला पहनी जाती थी। यह मेखला कई लड मनको या सादे कपडे की, जिसके छोर मिलाने के लिए एक चपकन होती थी, बनी होती थी। एक जगह मेखला किसी बुने कपडे के फूदने से बधी दिखलायी देती है। कही कही लगोटी किसी गुलिका (boss) जैसे आभरण से भूषित दिखलायी गयी है [११]। एक मट्टी की मूर्ति में एक स्त्री घोघी (cloak) पहने दिखलायी गयी है। इस घोघी ने स्त्री के हाथ छिपा रखे है, और वह लगोटी के छोर के नीचे नही पहुचती (आ० ७)। डा० मेके का अनुमान है कि शरीर रक्षा के अतिरिक्त साधन के रूप मे इसका व्यवहार हुआ है [१२]।

स्त्रिया और पुरुष भी पखे के आकार का एक शिरोवस्त्र पहनते है (आ० ८)। अभी तक इस बात का पता नही चल सका है कि उसके बनाने मे कौन सा कपडा लगता था। डा० मेके का अदाजा है कि शायद यह फ्रेम पर चढे माडीदार कडे कपडे से बना हो [१३]। यह भी हो सकता है सिर पर की चादर का एक कोना बाध कर इस शिरोवस्त्र का रूप खडा किया

६—मार्शल, वही, प्ले० ६४, ११

७—मार्शल, वही, प्ले० ६४, ४

८—मेके, फर्दर एक्सकेवेशन...२, प्ले० ७६, २२

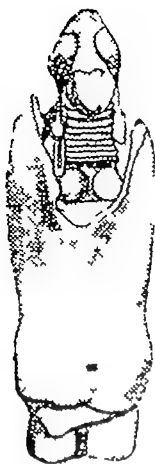
९—वही, प्ले० ७६, १५

१०—वही, भा० १, पृ० २६२

११—मेके, इडस वेली सिविलिजेशन, पृ० १००-१०१

१२—मेके, फर्दर एक्सकेवेगस् आ० २, प्ले० ७५, ६, इडस वेली..पृ० १०१

१३—मेके, इडस वैली पृ० १०१



७



८



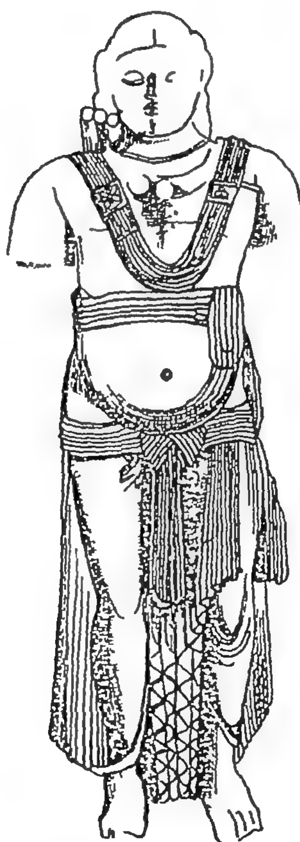
९



१०

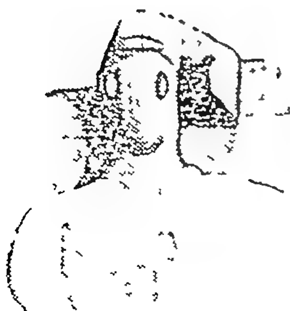


११





१४



१२

१३



१५

गया हो क्योकि साची मे इस शिरोवस्त्र का रूप ऐसा ही वनाया गया है। जव यह शिरोवस्त्र दोनो तरफ दिवलीदार न हो कर सादा होता था तो इस पर कुछ अलकार होते थे। कभी कभी इसके दोनो ओर वृत्ताकार अलकार होते थे और कभी मनके की लड़ो और एक चोगानुमा अलकार से इसकी सजावट होती थी (आ० ९-१०) [१४]। कही कही शिरोवस्त्र सीधा सिर पर रक्खा हुआ देख पडता है और कही कही वह पीठ पर गिरती चोटी से लगा हुआ और सिर से एक फीते से वधा मालूम पडता है [१५]। दिवलीदार शिरोवस्त्र तो शायद देवी माता ही पहिनती थी। पेशानी पर वधे एक फीते के सहारे ये शिरोवस्त्र टिके रहते थे। शिरोवस्त्र में लगी दिवलियो में काजल ऐसे कुछ धव्वे मिले हैं जिनसे पता चलता है कि शायद इनमें किसी समय दीपक जलाये जाते थे [१६]। इससे यह भी सिद्ध होता है कि हाथ में या सिर पर दीप धारण किये हुए मध्यकालीन और आधुनिक दीपलक्ष्मी की मूर्तियो का स्रोत प्रागैतिहासिक काल में है।

कही कही कुछ अजीव ढग के शिरोवस्त्र भी मिलते है [१७]। पखे के आकार वाले इन शिरोवस्त्रो पर एक तिपाई सी दीख पडती है, यह तिपाई शायद किसी अलकार की द्योतक हो। यह भी हो सकता है कि इस तिपाई का तात्पर्य किसी देवपीठ से हो। आज दिन भी देवयात्राओ मे स्त्रिया अपने सिरो पर देवपीठ ले कर चलती है। पगडी पहने हुए स्त्री मूर्तिया (आ० ११) कम मिली है [१८]। लगता है स्त्रिया कभी कभी ढीली टोपी भी पहिनती थी (आ० १२) [१९]।

१४—मेके, फर्दर एक्सकेवेशस् भा० २, प्ले० ७५, ३, ८, ७६, १७
१५—मार्शल, वही, भा० १, पृ० ३३८
१६—वही, भा० १, पृ० २६०, २, प्ले० ७३, ३, ४, ७५, २१—३७
१७—वही, भाग २, प्ले० ७५, १५, १६
१८—वही, भा० २, प्ले० ७६, १६
१९—मार्शल, वही, भा० १, पृ० ३४०, प्ले० १५३, २५

द्वितीय अध्याय

वैदिक युग मे वेश-भूषा

सिंधु सभ्यता के समाप्त होने से लेकर ई० पू० तीसरी शताब्दी तक हमे भारतीय सभ्यता के इतिहास के लिए पुरातत्व की अधिक सामग्री नही मिलती । मोहेनजोदडो के नष्ट होने (२५०० ई० पू०) और आर्यो के भारत आने (१५०० ई० पू०) के बीच में जो एक हजार वर्ष का अतर पडता है उसमे भारतीय सभ्यता किस तरह से फूली फली इसका भी हमे ठीक ज्ञान नही है।

जब सिंधु सभ्यता के बाद ऐतिहासिक अधकार का परदा उठता है तो हमे वैदिकयुग का दर्शन मिलता है, और भारत की आरभिक आर्य सभ्यता का दर्शन कराने के लिए हमारे सामने ऋग्वेद के मत्र आते है। लेकिन वैदिक सभ्यता कोई एक काल विशेष तक सीमित नही थी वह तो १५०० ई० पू० से लेकर करीब ५०० ई० पू० तक बढती और प्रसरित होती रही । पहले सहिताए बनी, बाद मे ब्राह्मण ग्रथ, और अत में उपनिषद् और सूत्र ग्रथ । काल क्रम के पैमाने मे आगे या पीछे होने से वैदिक साहित्य मे भी एक ऐतिहासिक विकास क्रम पाया जाता है । वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रथो के समय निर्धारित करने की विद्वानो ने चेष्टा की है लेकिन अभी तक वे दृढता के साथ वैदिक ग्रथो का समय निश्चित नही कर सके है।

वैदिक साहित्य के काल क्रम की यह गडबडी जब हम वैदिक सभ्यता का इतिहास लिखने बैठते है तो बडी खलती है, क्योकि हम दृढतापूर्वक यह नही कह सकते कि सभ्यता के प्रतीक अमुक अग का आरभ और विकास समय के पैमाने में कब से कब तक हुआ। साधारणत हम ऋग्वेद को वैदिक आर्यो का आदि ग्रथ मान कर उसी के आधार पर आरभिक आर्य सभ्यता का रूप खडा करते है, लेकिन अथर्ववेद और कही कही ब्राम्हणो में भी आर्य और अनार्य सभ्यताओ के कुछ ऐसे प्रारभिक रूप आये है जो ऋग्वेद के समकालीन हो सकते है। बात यह है कि ऋग्वेद कोई इतिहास का ग्रथ तो है नही जिसमे तत्कालीन सभ्यता के सब रूप आने जरूरी थे। वह तो दान तथा देव स्तुतियो और दार्शनिक विचारो का एक सग्रह मात्र है। जिसमे वैदिकसभ्यता के भिन्न भिन्न पहलुओ के सकेत आनुषगिक रूप से हो गये है । वैदिक युग की भारतीयसभ्यता के अनेक प्रतीक श्रुत वा दृश्य अथर्ववेद और कही कही ब्राहणो में बाद मे आये लेकिन केवल बाद मे आने ही से तो यह कहा नही जा सकता कि उनका विकास बाद में हुआ । बहुधा वैदिक साहित्य के अध्ययन में ऐसी अडचनो का हमे सामना करना पडता है और तब हमें बुद्धि और वैज्ञानिक

तर्क की तराजू पर यह तौल कर देखना पडता है कि पलडा किस पक्ष का भारी है और उसी के अनुसार हमें अपनी राय कायम करनी पडती है। ऐसे समय हमें पुरातत्व का कोई सहारा न मिलना वडा खलता है क्योकि साहित्य तो साहित्य ही है केवल उसी के सहारे हम उस वैज्ञानिक तथ्य तक नही पहुच सकें जिस पर हम वैज्ञानिक पुरातत्व की खोजो से पहुच सकते है। पुरातत्व के सहारे हम सभ्यता सवधी साहित्यिक उद्धरणो की जाच पडताल करके उनके कालसम्वन्धी एक विशेप निष्कर्ष पर पहुच सकते है, पर कोरे साहित्य से और ऐसे साहित्य से जिसका काल अभी विवादग्रस्त है हमारा विशेष काम नही निकल सकता। लेकिन जव हमारे पास पुरातत्व के साधन नही है तो हमें लाचार होकर साहित्य का आश्रय लेना ही पडता है। फिर चाहे उससे निकाले गये नतीजे कितने ही विवादग्रस्त क्यो न हो।

वैदिक साहित्य भारतीय सभ्यता के १००० वर्षो से अधिक विकास के इतिहास का भण्डार है। लेकिन उसमें जो कुछ आया है उसे हम एक ही काल में नही ढूढ सकते, उसमें ऐतिहासिक विकास की परपरा दिखलाने के लिए हमें काल विभाजन का सहारा तो लेना ही होगा। जहा तक वस्त्र-भूषा का सवध है हमारी कठिनाई कुछ इसलिए सरल हो जाती है कि सहिताओ, व्राह्मणो और उपनिषदो मे आनुषगिक रूप से वस्त्रो की जो भी चर्चा आई है उसमें एकता है जिससे यह पता चलता है कि जहा तक वस्त्रो का सवध है वैदिक काल में करीव ८०० वर्षों तक विशेप परिवर्तन नही हुआ। इसके दो कारण हो सकते है, (१) अपने प्रारभिक वेश-भूषा के प्रति आर्यों का मोह, गो कि वैदिक साहित्य के कुछ शव्दो से यह पता चलता है कि आर्यों ने भारत मे अपने पूर्व के निवासी द्रविड़ो और निपाद जातियो से कुछ वस्त्र ग्रहण किये थे। (२) इतिहास में वहुधा यह देखा गया है कि किसी नवीन सभ्यता के सम्पर्क में आने से अथवा उससे विजित होने पर विजित सभ्यता विजेताओ के वस्त्र ग्रहण कर लेती थी। उदाहरण के लिए करीव २९०० ई० पू० मे जव अक्काद के लोगो ने सम्पूर्ण सुमेर पर अपना अधिकार जमा लिया तो प्राचीन सुमेर के लोगो ने 'कौनकेस' या तहमत की जगह जो उनका जातीय वस्त्र था अक्कादियो के वस्त्र कमीज और चादर को अपना लिया। लेकिन वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि न तो वे वाहरी किसी शक्ति से विजित हुए न उनके विशेष सपर्क में आये। इसीलिए उनके अपने वस्त्र जिनमें उन्होने देश काल के अनुसार सुधार भी कर लिये होगे ज्यो के त्यो वने रहे। वस्त्रभूपा की इस एकता को देखते हुए हमने सपूर्ण वैदिक युग को एक ही माना है और इसके काल विभाजन नही किये हैं। हा सूत्र युग में जिसका आरभ करीव ५०० ई० पू० से होता है हमें नये वस्त्रो के नाम मिलने लगते हैं और इसीलिए हमने इस सूत्र युग की वेश-भूपा का वर्णन महाजनपद युग की वेश-भूषा के अतर्गत किया है।

आर्यो का आदि स्यान कहा था इस प्रश्न पर तो काफी वहस रही है लेकिन इतना

तो निश्चित जान पडता है कि आर्य भारतवर्ष मे और पश्चिमी एशिया मे एक साथ प्रविष्ट हुए और ईरानी और भारतीय आर्य करीब २५०० ई० पू० में अलग हुए। भारतीय आर्यों ने इस देश में २००० ई० पू० और १४०० के बीच अफगानिस्तान और हिंदूकुश के रास्ते से होकर प्रवेश किया और सबके पहले सिंध नदी की उपरली घाटी में बसे। बाद मे उन्होने धीरे धीरे आगे बढते हुए गगा की घाटी मे भू-स्थापना की और अत मे विंध्यक्षेत्र और सुदूर दक्षिण मे फैल गये। पशु पालन और कृषि इनके प्रधान व्यवसाय थे और आरभिक काल में वे गावो में रहते थे। गृह निर्माण, बढईगिरी और रथ बनाने की कला मे वे पटु थे। अयस के बरतन बना सकते थे और सोने और गहनो के उपयोग वे करते थे। वे कपडे भी बुन सकते थे। सीने पिरोने, चमडे कमाने और मिट्टी के बरतन बनाने की कलाओ से भी वे परिचित थे।

ऊनी वस्त्र

आर्य कातने और बुनने के लिए भेडो का ऊन व्यवहार मे लाते थे और इसीलिए भेंड को वे ऊर्णावती[१] कहते थे और ऊन को आविक[२]। सिंध की घाटी को सुवासा ऊर्णावती इसलिए कहा गया है कि वहा ऊन और ऊनी कपड़े बहुतायत से मिलते थे[३]। गधार की भेंडें प्रसिद्ध थी[४] और जिस प्रदेश से रावी (परुष्णी) बहती थी वहा का रगीन अथवा धुला हुआ (सुन्ध्यव) ऊनी कपडा प्रसिद्ध था[५]। पूषण द्वारा ऊनी क़पडे बिनने का भी उल्लेख है[६]।

कबल और शामुल्य

कबल[७] और शामुल्य[८] स्त्रियो और पुरुषो के नित्य के पहिनने के वस्त्र थे। कबल से शायद खुरदरे ऊनी कपडे का तात्पर्य रहा हो। प्रो० प्रिजलुस्की के मतानुसार[९] कबल मुडा—ख्मेर भाषा का शब्द है और वैदिक सस्कृत ने इस शब्द को उस भाषा से उधार लिया है। अथर्ववेद में सबसे पहले यह शब्द आने से यह धारणा होती है कि इस शब्द को आर्यों ने आदिवासियो से अधिक घनिष्टता बढने पर अपना लिया। शामुल्य समूर का बना कपडा होता था। पर

१—ऋ० वे०, ८।६७।३
२—बृहदारण्यक उ०, २।३।६
३—ऋ० वे०, १०।७५।८
४—ऋ० वे०, १।१२६।७
५—ऋ० वे०, ४।२२।२, ५।५२।६
६—ऋ० वे०, १०।२६।६
७—अथर्ववेद, १४।२।६६, ६७
८—ऋ० वे० १०।८५।२६, अ० वे० १४।१।२५
९—प्री आर्यन एण्ड प्री ड्रवीडियन, पृ० ६-८, श्री बागची द्वारा सपादित

शामुल्य के संबंध मे डा० सुविमलचद्र सरकार[10] का और ही मत है। उनका विचार है कि शामुल्य रूई भरा कोई हल्का कपडा था। वे हमारा ध्यान इस ओर भी दिलाते हैं कि आधुनिक शमला जो एक सकरा शाल है, और जिसका व्यवहार पगडी पर के वद के लिए होता है और जिसकी व्युत्पत्ति अरवी शामिलात से जिसके अर्थ होते हैं जोडना, वास्तव मे शामुल्य से निकला है। इस धारणा को सत्य मानने मे कई कठिनाइया है। शामुल्य को रूई से भरा वस्त्र मानने में सदेह होता है क्योकि रूई का ज्ञान, जैसा कि हम आगे चल कर देखेगे, आर्यों को सूत्र काल मे हुआ। शामुल्य तो समूर शव्द का प्राचीन रूप मात्र है जिसका अर्थ आज दिन भी रोएदार चमडा होता है। इसी अर्थ में इस शब्द का व्यवहार कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी हुआ है।

खालो के वस्त्र

जानवरो की खालो का भी वस्त्ररूप में व्यवहार होता था। देवता, मुनि, व्रात्य और देश के आदि निवासी खालो से वने कपडे पहनते थे। इस सवध में शतपथ ब्राह्मण[11] में एक कहानी दी हुई है जिससे पता चलता है कि वैदिक सभ्यता के आरभिक युग में आर्य गोचर्म पहना करते थे। कहानी यह है कि मनुष्य एक समय गोचर्म से आच्छादित होता था। गाय की उपादेयता का देवताओ को ज्ञान था और इसीलिए मनुष्य के शरीर से गोचर्म उन्होने खलिया कर पुन गायो को वापस कर दिया। खाल के विना मनुष्य को वरावर चोटें लगा करती थी। इसलिए उनका खोया हुआ आवरण पुन. वापस देने केलिए देवताओ ने वस्त्रो की सृष्टि की। इस कहानी से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभ्यता के आरभिक युग में आर्य गोचर्म पहना करते थे। इसमें कोई आश्चर्य की वात नही है। जिस समय सभ्यता शिकारी अथवा पशुपालक अवस्था मे थी उस समय मनुष्य पशुओ के चमडो से अपने वदन ढाका करते थे। प्राचीर सुमेर मे भी लोग सारगान के काल तक वकरे की खाल की वनी तहमत पहना करते थे। ऐसा लगता है कि जव आर्यों की सभ्यता उन्नति के मार्ग पर आगे वढी तो उन्हें गाय की आर्थिक उपयोगिता का ज्ञान हुआ और चमडे के लिए व्यर्थ गो-हत्या का निषेध करके वे और तरह तरह के वस्त्र पहनने लगे।

कृष्णाजिन

शतपथ ब्राह्मण की[12] एक दूसरी कहानी से पता लगता है कि कृष्णाजिन वहुत ही पवित्र माना जाता था। कहानी यह है कि यज्ञ की आहुति एक समय मृग का रूप धारण

१०—सरकार, सम आसपेक्टस् ऑफ दी अर्लियस्ट सोशियल हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० ५६, फु० नो० ६

११—शतपथ ब्रा०, ३।१।१३-१६

१२—शतपथ ब्रा०, १।१।४।१

कर के देवताओ से बचने के लिए भाग गयी। देवताओ को जब इसका पता लगा तो उन्होंने उसे पकड कर उसकी खाल उतार लिया। उसी दिन से कृष्णाजिन पर दीक्षा दी जाने लगी और यज्ञ की आहुति के लिए धान्य भी उस पर घोटा जाने लगा। यज्ञादिक कार्यों में मृगचर्म का व्यवहार विहित है। इसी बात को साबित करने के लिए ऊपर की कहानी गढी गयी है। कहानी हमारी उस पूर्वकालीन सस्कृति की ओर भी इशारा करती है जब धार्मिक कार्यों में मृगचर्मो का प्रयोग बेधड़क होता था। आज दिन भी धार्मिक कार्यों में मृगचर्म पवित्र माना जाता है।

मरुत् हिरन की खालें पहनते थे[१३]। हिरन की खालें पहन कर और उन्ही के चमडे की बनी ढाले लेकर देवगण शत्रुओ मे भय उत्पन्न करते थे[१४]। मुनिगण भूरे और कमाए हुए चमडे (पिशङ्गमला) पहनते थे[१५]। व्रात्यो के अधिनायक और उनके साथी दोहरे (द्विसहितानि) चमड़े पहनते थे जिसमे एक काला (कृष्ण) और दूसरा सफेद (वलक्ष) होता था[१६]। जगली जातिया नाच के समय कृत्ति और दूर्श पहनती थी[१७], और अजिन भी व्यवहार में लाती थी[१८]। यज्ञ के समय कृष्ण मृगचर्म पहना जाता था[१९]। बकरे की खाल (अजर्षभ्यस्य अजिन) पहनी जाती थी[२०]। समूर के व्यापार का भी उल्लेख है[२१]।

कुछ और तरह के भी कपडे व्यवहार में लाये जाते थे पर उनका कोई विवरण न प्राप्त होने से उनकी पहचान में काफी कठिनाई पैदा होती है और न ठीक ठीक से यह कहा जा सकता है कि वे वनस्पतियो के किन किन रेशो से बनते थे।

बरासी

बरासी का उल्लेख सबसे पहले काठक सहिता[२२] मे आया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र[२३] और लाट्यायन श्रौत सूत्र[२४] के अनुसार बरासी वस्त्र सोमयाग में भाग लेने वाले नेष्ट्रि को

१३—ऋ० वे०, १।१६६।१०
१४—अ० वे०, ५।२१।७
१५—अ० वे०, १०।१३६।२
१६—पञ्चविंश ब्रा०, १७।१-१५
१७—अ० वे०, ८।६।११
१८—अ० वे०, ४।७।६
१९—अ० वे०, ५।२१।७, ६।११।८५
२०—शत० ब्रा०, ३।६।१।१२, ५।२।२१।२४
२१—वाजसनेयी स०, ३०।१५, तैत्तिरीय ब्रा०, ३।२।१३।१
२२—काठक स०, १५।४, पचविंश ब्रा०, १८।९।६
२३—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७
२४—ला० श्रौ० सू०, ६।२।१५

दक्षिणा के रूप मे दिया जाता था। लाट्यायन श्रौत सूत्र के टीकाकार को इस शब्द का ठीक ठीक अर्थ का पता नही था और इसीलिए उसने वरासी को क्षौम्य अर्थात् अतसी की छाल के रेशे का बना वस्त्र कहा है । आश्वलायन श्रौत सूत्र के टीकाकार ने वरासी का अर्थ मोटे सूत का कपडा किया है । डा० सरकार के मत से उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात और हिमालय के वहिर्गिरि पर उगने वाले वरस (एक प्रकार के लाल फूल वाला रोडोडेड्रन) नाम के वृक्ष की छाल के रेशे से शायद यह वस्त्र बुना जाता था [२५]।

दूर्श

इस कपडे का उल्लेख अथर्ववेद मे आया है[२६]। पालि साहित्य मे भी दुस्स नाम के कपडे का उल्लेख आया है। आज दिन धुस्सा जो दूर्श से निकला है एक तरह की खरदरी ऊनी चादर का नाम है जो पजाब और कश्मीर मे बनती है, पर यह ठीक तौर से नही कहा जा सकता कि वैदिक युग मे दूर्श का क्या रूप था।

क्षौम

क्षुमा अथवा अतसी की छाल के रेशे से बने हुए वस्त्र का सर्वप्रथम उल्लेख मैत्रायणी सहिता और तैत्तिरीय सहिता मे आया है[२७]। कुसमी रग के क्षौम परिधान का उल्लेख शाङ्खायन आरण्यक[२८] में आया है। आश्वलायन श्रौत सूत्र[२९] के अनुसार क्षौम वस्त्र सोमयाग में नेष्ट्रि को दक्षिणा रूप में दिया जाता था।

पाड्व

शतपथ ब्राह्मण और मैत्रायणी[३०] सहिता के अनुसार पांड्व वस्त्र यज्ञ के समय राजाओ द्वारा पहना जाता था। बृहदारण्यक उपनिषद्[३१] में पाड्वाविक वस्त्र का उल्लेख है। यह भेड के ऊन का बना हुआ सफेद वस्त्र होता था । डा० सरकार का कहना है कि शायद पाड्व कोरा अथवा रगीन रेशमी अथवा सूती वस्त्र था[३२]। उनके ऐसा कहने का आधार क्या है यह नही कहा जा सकता।

२५—सरकार, वही, पृ० ६१, फु० नो० ३
२६—अ० वे०, ४।७।६, ८।६।११
२७—मै० स०, ३।६।७, तै० सं०, ६।१।१।३
२८—शा० आ०, ११।४
२९—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७
३०—श० ब्रा०, ५।३।५।२१, मै० सं०, ४।४।३
३१—बृ० उ०, २।३।६
३२—सरकार, वही, पृ० ५९

तार्प्य

तार्प्य का उल्लेख अथर्ववेद तथा और कई जगह आया है[३३]। कृष्ण यजुर्वेद[३४] के अनुसार यज्ञ के अवसर पर यजमान को स्वय तार्प्य पहनना पडता था। राजसूय यज्ञ[३५] के अवसर पर राजा तार्प्य वस्त्र जिस पर यज्ञ के उपादानो के रूप कढे या टके होते थे पहनता था। सायण और कात्यायन ने तार्प्य के बहुत से अर्थ दिये है। यथा क्षौम, घी में डूबा वस्त्र, तृप नाम की घास से बना हुआ, अथवा तीन बार घृत मे डुबोया हुआ वस्त्र इत्यादि। तार्प्य की इन सब व्याख्याओ से यह पता चलता है कि टीकाकारो को इस शब्द के अर्थ के बारे में दुविधा थी। कुछ ऐसा भी मालूम पडता है कि शतपथकार को भी इस शब्द के ठीक अर्थ के बारे में शक था। गोल्डस्टुकर के मत से सहमत होते हुए एगलिंग का कहना है कि तार्प्य किसी तरह का अधोवस्त्र था[३६]। डा० सरकार तार्प्य को बिहार के टसर से, जो एक तरह का मोटा रेशमी कपडा होता है, तुलना करते है[३७]। डा० सरकार इस पहचान पर कैसे पहुचे यह कहना कठिन है। सत्य तो यह है कि तार्प्य का ठीक ठीक अर्थ अभी हमे विदित नही है।

कार्पास

जैसा हम पहले अध्याय मे कह आये है सिंधु सभ्यता के युग में कपास से बने कपडे पहने जाते थे। आश्चर्य की बात है कि वैदिक सहिताओ और ब्राह्मणो मे कार्पास का कही भी उल्लेख नही है। सब से पहले कपास का उल्लेख आश्वलायन और लाट्यायन श्रौत सूत्रो[३८] में आया है। इन उल्लेखो के अनुसार सोमयज्ञ के पोतृ को कपास का कपडा (कार्पास सवास) दक्षिणा के रूप मे दिया जाता था। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कारण था कि वैदिक आर्य कपास से इतने काल तक अनभिज्ञ थे? उत्तर कई हो सकते है यथा (१) वैदिक आर्यों से और सिंधु सभ्यता से कोई सरोकार नही था और वे भारत में उस काल में आये जब सिंधु सभ्यता पूर्णत नष्ट हो गयी थी और इसलिए उस सभ्यता के एक प्रतीक कपास की कताई बुनाई का उन्हें ज्ञान नही हुआ। यह ज्ञान उन्हे तब हुआ जब वे पूर्व भारत में पहुचे जहा कपास के व्यवहार से, जैसा हमें पालि साहित्य बतलाता है, लोग भली भाति परिचित थे। (२) यह भी सभव है कि आर्यों को कपास का ज्ञान रहा हो लेकिन एक अनार्य वस्तु होने से उसके व्यवहार से वे हिचकिचाते रहे हो, गोकि इसकी सभावना कम है।

३३—अ० वे०, १८।४।३१, तै० स०, २।४।११।६, मै० स०, ४।४।३
३४—तै० ब्रा०, १।३।७।१
३५—श० ब्रा०, ५।३।५।२०, सर्वाणि यज्ञरूपाणि निस्यूतानि।
३६—एगलिंग, शतपथ ब्रा०, भा० ३, पृ० ८८, फु० नो० १
३७—डा० सरकार, वही, पृ० ६, फु० नो० ५
३८—आ० श्रौ० सू०, २।३।४।१७, ला० श्रौ० सू०, २।६।१, ६।२।१४

कताई बुनाई

कातने और बुनने का काम प्राय स्त्रियो के जिम्मे था[३९]।

अथर्ववेद[४०] के एक रूपक में रात्रि और दिवा को भगिनी मान कर उन्हें वर्परूपी कपडे को बुनते वतलाया है । इसमे रात को ताना और दिन को वाना माना है। कपडे बुनने वालियो के लिए वायितृ[४१] और सिरी[४२] शव्दो का उपयोग हुआ है। डा० सरकार के अनुसार वैदिक सिरी तामिल सिलै से लिया गया है और पूर्वी जानपदी भाषाओ मे अव भी इसका रूप सिरी, सिली, सिलाई होता है जिसका अर्थ बुना हुआ कपडा होता है ।

वैदिक साहित्य में बुनने की कारीगरी के वहुत से पारिभाषिक शव्द आये है। ओतु (वाना)[४३], ततु (सूत)[४४], तत्र (ताना)[४५], वेमन् (करघा)[४६], प्राचीनतान (आगे खिचा हुआ ताना)[४७], वाय (वुनकर)[४८], मयूख (ढरकी या शीशे का वजन)[४९] वुनाई सवधी शव्द है।

पहनने के कपडे

ऋग्वेद[५०] और वाद के साहित्य मे पहनने के कपडो के लिए साधारणत वासस् शव्द का व्यवहार हुआ है। वसन[५१] और वस्त्र[५२] के भी वही माने होते है। वैदिक आर्य अपने कपडे वडे शौक से पहनते थे। सुवसन[५३] का व्यवहार खूवसूरत कपडो तथा अच्छी तरह से पहने

३९—अ० वे०, १०।७।४२, १४।२।५१
४०—अ० वे०, १०।७।४२
४१—पञ्च० ब्रा०, १।८।९, श० ब्रा०, ३।१।२।१३ इत्यादि
४२—अ० वे०, १४।२।५१
४३—ऋ० वे०, ६।९।२-३, तै० स०, ६।१।१४
४४—अ० वे०, १४।२।५१, श० ब्रा०, ३।१।२।१८
४५—ऋ० वे०, १०।७१।९
४६—वाजसनेयी स०, १९।८३
४७—तै० स०, ६।१।१।४
४८—ऋ० वे०, १०।२६।६
४९—वा० स०, १९।८०-८३
५०—ऋ० वे०, १।३४।१, १।११५।४, ८।३।२४
५१—ऋ० वे०, १।९५।७
५२—ऋ० वे०, १।२६।१
५३—ऋ० वे०, ६।५१।४

गये वस्त्र दोनो ही के लिए हुआ है[५४]। सुवासस्[५५] विशेषण का प्रयोग अच्छे कपडे पहनने वालो के लिए हुआ है। सुरभि[५६] शब्द से पता चलता है कि पहनने के कपडे बदन पर ठीक बैठते थे। समाज में बढिया कपडे पहनने वालो के मान होने का उल्लेख शतपथ[५७] मे आया है। इस उल्लेख के अनुसार मनुष्य कपडा इसलिए पहनता है कि वह उसके बदन पर चमडे की तरह शरीर की रक्षा का काम देता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि मन से मनुष्य अच्छे कपडे पहने (सुवासा एव बुभूषेत्)। अनेक रग बिरगे कपडे पहनने की भी प्रथा थी। शतपथ में अग्नि का एक पर्याय विभावसु[५८] भी है जिसका अर्थ है रग बिरगे कपडे पहनने वाला। कौषीतकी ब्राह्मण[५९] मे अच्छे कपडे पहनने वाले युवको का उल्लेख है ।

वैदिक वस्त्रो पर अलकार

वैदिक युग मे कपडो पर बहुधा कसीदे का काम बना होता था । मरुत् कारचोबी के काम वाले कपडे पहनते थे[६०] (हिरण्यान् प्रति अत्कान्)। कपडो मे किनारे और झालरें भी होती थी। सिच्[६१] शब्द से कसीदा किये हुए किनारे या झालर का बोध होता है। दो ऊपर नीचे के और दो बगल के किनारो का उल्लेख आया है[६२]। वैदिक आरोका[६३] से शायद कपडे पर बने अलकारो से मतलब है । डा० सरकार का विचार है[६४] कि आरोका की व्युत्पत्ति तामिल अरुकणि से है जिसके अर्थ होते है कपडो के अलकृत किनारे। यज्ञ के अवसर पर कोरे कपडे[६५] पहने जाते थे पर अन्य अवसरो पर धुले कपडे (स्वित्यञ्च)[६६]। सुनहले काम वाले रगीन कपडे ऊषा की श्रेणी वाली रगीली स्त्रिया पहनती थी[६७]। व्रात्य गृहस्थ किनारेदार नीले कपडे पहनने के शौकीन थे[६८]।

५४—ऋ० वे०, ६।६७।५०
५५—ऋ० वे०, १।१२४।७, ३।८।४
५६—ऋ० वे०, ६।२६।३
५७—श० ब्रा०, ३।१।२।१६
५८—श० ब्रा०, ६।४।३।८
५९—कौ० ब्रा०, १०।२
६०—ऋ० वे०, ५।५५।६
६१—ऐत० ब्रा०, ७।३२, श० ब्रा०, ४।२।२।११
६२—सरकार, वही, पृ० ६३
६३—श० ब्रा०, ३।१।२।१३
६४—सरकार, वही, पृ० ६३, फु० नो० १२
६५—श० ब्रा०, ३।१।२।१३
६६—ऋ० वे०, ७।३३।१
६७—ऋ० वे०, १।९२।४, अधिपेशासि वपते नृतू ऽइव , १०।१।६
६८—पञ्चविंश ब्रा०, १७।१४।६

कसीदे का काम

पेशस्[६९] शव्द का व्यवहार कारचोवी के काम वाले वस्त्रो के लिए हुआ है। इसमें कढे हुए अलकार काफी फेरदार और कलात्मक होते थे[७०]। नृतु को पेशासि पहने वतलाने से[७१] शायद कारचोवी पेशवाज से तात्पर्य हो। कसीदा काढना या उससे पेशासि अथवा पेशवाज वनाना स्त्रियो का काम था। यजुर्वेद मे पुरुषमेध मे वलि देने जाने वालो मे पेशकारी का नाम आया है[७२]। ऐतरेय व्राह्मण[७३] मे निविदो को ऋचाओ का कसीदा अथवा पेशस् कहा गया है। यहाँ जो उपमा दी गई है उससे कसीदे के वारे में कुछ प्रकाश पडता है। इस तरह का काम (पेशस्) ताने के ऊपरी भाग (प्रवयण) तथा मध्य और निचले भागो (अवप्रज्जन) मे किया जाता था। पेशस् के इस विवरण से पता चलता है कि अलकार कुछ वुने भी जाते थे और कुछ काढे भी। अगर हमारा यह अनुमान ठीक है तो कौटिल्य में वर्णित खचित नामक दुशाले जो सूचीवान कर्म से वनाये जाते थे और जिन्हे कश्मीर वाले अव भी तीलीकार और अम्लीकार का सयोग वताते है, और पेशस् एक थे। वृहदारण्यक उपनिषद्[७४] के एक उल्लेख से पता चलता है कि पेशकारी एक अलकार को काढ कर जव दूसरा काढती थी तो वह पहले अलकार से भी अधिक सुन्दर उतरता था।

वैदिक आर्यों का पहरावा

ऐसा मालूम पडता है कि वैदिक आर्य तीन कपड़े पहिनते थे यथा नीवि[७५] (लगोटी), वासस् और अधिवास[७६] जो शायद आधुनिक दुपट्टे या चादर का प्रारभिक रूप रहा हो। शतपथ[७७] मे दिये हुए यज्ञ काल के पहरावे से उपरोक्त पहरावो का मेल खाता है।

नीवि

नीवि या परिधान[७८] शायद तहमत या लुगी के ऐसा कोई वस्त्र था जिसे स्त्री और पुरुष दोनो समान रूप से व्यवहार मे लाते थे। नीवि की व्युत्पत्ति नि अर्थात् नीचे और व्ये

६९—ऋ० वे०, ४।३६।७
७०—ऋ० वे०, २।३।६
७१—ऋ० वे०, १।९२।४-५
७२—वाजसनेयी स०, ३०।९
७३—ऐतरेय व्रा०, ३।१०
७४—वृ० उ० ४।४।४ तद्यथा पेशकारी पेशसो मात्रामुपादायान्यतरं कल्याणतर रूप तनुत ।
७५—अ० वे०, ८।२।१६, १२।२।५०
७६—ऋ० वे०, १।१४०।९, १०।५।४
७७—शतपथ व्रा०, ५।३।५।२०
७८—वृहदारण्यक उप०, ६।१।१०

ढकना या आच्छादित करना से की गयी है । लेकिन डा० सरकार इसे चौडा बुना हुआ किनारा मानते है और इस शब्द की व्युत्पत्ति तामिल नइ से जिसके अर्थ बुनने के होते है करते है[७९]। जब तक वैदिक काल की कोई मूर्ति हमें नही मिलती तब तक हम यह ठीक तौर से नही कह सकते कि वैदिक नीवि का क्या रूप था। लेकिन सिंधु सभ्यता की मुद्राओ और मृण्मूर्तियो मे जो पोशाक दिखलायी गयी है वह तो केवल एक कपडे का सकरा सा टुकडा है जिसे स्त्री और पुरुष दोनो लपेट लिया करते थे । इस तरह के वस्त्र पहनने का रिवाज सिंधु सभ्यता की समकालीन सभ्यताओ मे भी था। हो सकता है कि वैदिक युग मे देश का यह पुराना पहरावा बच गया हो और कालातर में आर्यो द्वारा अपना लिया गया हो।

प्रघात और वातपान

नीवि से प्रघात लटका करता था। इसका एक बेबुना छोर फूदनो से सजा होता था और दूसरा सादा छोर एक छोटी झालर से जिसे तूष कहते थे[८०]। नीवि मे वातपान[८१] भी होता था । यह शायद कपडे मे लबाई वाला किनारा था जो हवा के झटके से सूत को बाहर निकलने से रोकता था[८२]।

कपड़े पहनने के ढग

वेदो से जो कुछ भी हमे वस्त्रो के उल्लेख मिलते है उनसे यह ठीक ठीक पता नहीं चलता कि वैदिक युग मे कपडे किस ढग से पहने जाते थे। इस बात का उल्लेख है कि वासस्[८३] बाधा जाता था । नीविक्[८४] से पता चलता है कि शायद लोग नीवि इस ढग से बाधते थे जिससे उसमे गाठे और सिलवटे पडे जो देखने में सुन्दर मालूम पडती है।

शरीर के ऊपर पहनने के वस्त्र

पुरुष और स्त्रिया अपने शरीर के ऊपरी हिस्से को ढाकने के लिए उपवसन पर्याणहन, प्रतिधि, द्रापि और अत्क पहनती थी। उपवसन[८५] जैसा कि वधू के वस्त्रो के सम्बन्ध में इसके उल्लेख से पता लगता है, दुपट्टे की तरह कोई वस्त्र था। मुद्गलानी के उपवसन[८६] के हवा

७९—सरकार वही, पृ० ६३, फु० नो० ६

८०—तै० स०, १।८।१।१

८१—तै० स०, ६।१।१

८२—सरकार, वही, पृ० ६३

८३—अ० वे०, १४।२।७०

८४—अ० वे०, ८।२।१६

८५—अ० वे०, १४।२।४१६

८६—ऋ० वे०, १०।१०२।२

मे फड़कने के उल्लेख से यह बोध होता है कि यह उत्तरीय जैसा कोई वस्त्र था। डा० सरकार का अनुमान है पर्याणहन शायद लंबी-चौडी हल्की चादर की तरह कोई वस्त्र था[८७]। अधिवास राजाओ का ऊपरी वस्त्र था[८८]। प्रतिधि[८९] एक या दो कपडे की छीरो से बना स्तनपट्ट था जिसे विवाह के समय कन्या पहनती थी। शायद यह सीधे अथवा तिरछे ढग से स्तनो को ढाकने के लिए पहना जाता था।

वैदिक साहित्य मे सिले कपड़े

इन बेसिले कपडो के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में सिले कपडो के भी उल्लेख है। अत्क[९०] शब्द का व्यवहार पहनने के कपड़े के अर्थ मे ऋग्वेद मे आया है, और इसका यही अर्थ रोथ, लुडविग्, ग्रासमान और त्सिमर ने ग्रहण किया है। अत्क केवल पुरुप पहनते थे और यह लबा[९१], पूरा शरीर ढकने वाला[९२], चपक कर बैठने वाला[९३], चमकीला[९४], सुन्दर[९५] कारचोवी किया हुआ अथवा सोने के तार से बुना हुआ[९६] एक वस्त्र था। उपरोक्त विवरण से अनुमान किया जा सकता है कि अचकन या कुरते के आकार का यह कोई वस्त्र था। वैदिक युग के बाद साहित्य मे फिर इसका उल्लेख नही आता। द्रापि चपक कर बैठने वाला[९७], कारचोबी किया हुआ[९८] कोटनुमा[९९] कपडा था, जिसे पुरुष[१००] और स्त्री[१०१] दोनो पहनते थे।

उष्णीष या पगड़ी

उष्णीष शब्द का पगड़ी के अर्थ में प्रयोग सब से पहले अथर्ववेद[१०२] और पञ्चविंश

८७—सरकार, वही, पृ० ६६
८८—शतपथ ब्रा०, ५।४।४।३
८९—अ० वे०, १४।१।७
९०—ऋ० वे०, १।९५।७, ४।१८।५
९१—ऋ० वे०, २।३५।१४
९२—ऋ० वे०, ५।७४।५
९३—ऋ० वे०, ६।२९।३
९४—ऋ० वे०, ६।२९।३
९५—ऋ० वे०, ९।१०७।१३
९६—ऋ० वे०, १।१२२।२, ५।५५।६
९७—ऋ० वे०, १।११६।१०
९८—ऋ० वे०, १।२५।१३
९९—अ० वे०, १३।३।१
१००—ऋ० वे०, ९।१००।९
१०१—अ० वे०, ५।७।१०
१०२—अ० वे०, १५।२।१

ब्राह्मण के[१०३] व्रात्य प्रकरण मे आया है। ऐतरेय[१०४] और शतपथ मे[१०५] इस शब्द का प्रयोग राजाओ और व्रात्यो के पहरावो के सबध में आया है। राजे वाजपेय[१०६] और राजसूय[१०७] के अवसरो पर उष्णीष धारण करते थे। इन्द्राणी सम्राज्ञी की हैसियत से उष्णीष पहनती थी[१०८] व्रात्यो का उष्णीष सफेद होता था। सूत्रो के अनुसार उष्णीष मे कई फेंटे होते थे, और व जरा एक तरफ झुका कर बाधा जाता था[१०९]। यज्ञ के अवसर पर उष्णीष के दोनो छोर आगे लाकर उसकी तहो मे खोस दिये जाते थे[११०]। लगता है राजाओ के उष्णीष के छोर बाहर लटके रहते थे।

जूते

प्राचीन सहिताओ मे जूतो का कही उल्लेख नही आता। ऋग्वेद मे आये वटूरिणापाद[१११] से शायद लडाई मे पैरो की रक्षा के लिए किसी आवरण से मतलब हो। पत्-सगिनी[११२] का मतलब डा० सरकार के अनुसार[११३] पैर मे बाधी जाने वाली चट्टी से है जिसका व्यवहार पैदल सिपाही करते थे। उपानह का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद[११४] अथर्ववेद[११५] और ब्राह्मणो में[११६] आया है। व्रात्य इसका व्यवहार करते थे[११७]। यज्ञ के अवसर पर पहनने के जूते सूअर के चमडे से बनते थे[११८]।

यज्ञ के अवसर पर नये कपड़े पहनने की प्रथा

यज्ञ के अवसर पर नये वस्त्र धारण करने की प्रथा थी। शतपथ के अनुसार[११९] यह

१०३—प० ब्रा०, १७।१।१४
१०४—ऐतरेय ब्रा०, ६।१
१०५—श० ब्रा०, ३।३।२।३
१०६—श० ब्रा०, ५।३।५।२३
१०७—मैत्रायणी स०, ४।४।३
१०८—श० ब्रा०, ५।३।५।२३
१०९—कात्यायन श्रौ० सू०, २२।४
११०—श० ब्रा०, ३।५।२० इत्यादि
१११—ऋ० वे०, १।१३३।२
११२—अ० वे०, ५।२१।१०
११३—सरकार, वही, पृ० ६६
११४—तै० स०, ५।४।४।४
११५—अ० वे०, २०।१३३।४
११६—श० ब्रा०, ५।४।३।१६
११७—पञ्च० ब्रा०, १७।१४-१६
११८—श० ब्रा०, ५।४।३।१६
११९—श० ब्रा०, ३।१।२।१६

वस्त्र शुद्ध गिना जाता था । यज्ञ का वस्त्र बिना कुटी किया हुआ (आहत) होता था। प्रति प्रस्थातृ इसलिए इसे अच्छी तरह पीटता था कि स्त्रियो द्वारा कातने (आकृणति) और बुनने (वयति) मे जो दोष वस्त्र में आ गये हो वे इस क्रिया से निकल जायं और वस्त्र यज्ञ के लिए शुद्ध हो जाय ।

यज्ञवस्त्रो मे देवताओ का निवास

शतपथ के एक मत्र से पता चलता है[१२०] कि यज्ञ के कपडो के भिन्न भिन्न भागो पर अलग अलग देवताओ के अधिकार होने का लोगो को विश्वास था। इस उल्लेख में कपडे की बुनाई के बहुत से शब्द प्रसगवश आ गये है। मत्र के अनुसार बाने के देवता अग्नि हैं (अग्ने पर्यासो), ताने का वायु (वायो. अनुखादो)। नीवि के पितृ, प्रघात के नाग, सूत (तन्तव) के विश्वेदेवा, तथा आरोक (अलकार) के अधिकारी नक्षत्र है । सब देवताओ के अधिकार होने से ही वस्त्र यजमान के योग्य होता है। तैत्तिरीय सहिता[१२१] के एक मत्र के अनुसार कपडे के झालरदार किनारे (तूषाधान) पर अग्नि का अधिकार होता था, वायु का वातपान पर तथा ताने (प्राचीनतान) और बाने (ओतु) पर क्रमश आदित्यो और विश्वेदेवा के अधिकार होते थे । ऊपर के उद्धरणो से पता चलता है कि यज्ञ कार्य में आये हुए वस्त्रो की पवित्रता का विशेष ध्यान रखना पडता था। वस्त्र के भिन्न भिन्न भागो में देवताओ के वास से शायद यह तात्पर्य हो कि इनसे पूत होने पर वस्त्रो पर न तो जादू होने चल सकते थे और न उनमे भूतप्रेतो का ही प्रवेश हो सकता था ।

भारतीय राजाओं की वेश-भूषा

यज्ञ विधि मे जो सोम के कपडो का वर्णन शतपथ[१२२] में आया है। वही पहरावा तत्कालीन भारतीय राजाओ का था। पूरी पोशाक में उपनहन (शायद धोती की तरह कोई कपड़ा अथवा जूता), पर्याणहन (चादर) और पगड़ी (उष्णीष) होते थे। पगडी न होने पर दो तीन अगुल चौडी पट्टी से भी काम चल जा सकता था । राजसूय यज्ञ के समय तार्प्य पहनने के बाद राजा एक सफेद ऊनी कपडा (पाण्डव) पहनता था। इसके वह एक चादर (अधिवास) से अपने को ढकता था और इसके बाद उष्णीष के छोर सामने की तह मे खोस लेता था[१२३]। उष्णीष ठीक ठीक कैसे बाधा जाता था इसके सबध मे टीकाकारो का एक मत नही है। एगलिंग[१२४] का अनुमान है कि सिर पर पगडी की एक लपेट बाधी जाती थी और उसके दोनो

१२०—श० ब्रा०, ३।१।२।१८

१२१—तै० स०, ४।१।१

१२२—शतपथ ब्रा०, ३।३।२।३

१२३—शतपथ ब्रा०, ३।५।२०-२४

१२४—शतपथ ब्रा०, ३ भा०, पृ० ८६, फु० नो० २

छोर कधो पर यज्ञोपवीत की तरह लटकते रहते थे और बाद मे वे नाभि के पास शायद धोती मे खोस लिये जाते थे । इस यज्ञ मे वस्त्र पहिनने की क्रिया लाक्षणिक रीति से गर्भ के आवरणो और प्रजनन की क्रियाओ के अभिव्यजना के रूप में थी [१२५] । कुछ यज्ञो मे नीवि की चुन्नट खोल दी जाती थी [१२६] (नीविमुद्वृध्य) । ऐसा क्यो किया जाता था यह तो ठीक ठीक नही कहा जा सकता पर इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नीवि में चूनन डालने की प्रथा थी ।

राजवस्त्रो के उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि शतपथ के युग मे राजे धोती, चादर और उष्णीष पहनते थे लेकिन इन वस्त्रो के पहनने का क्या ढग था यह कहना सरल नही है ।

यज्ञ के अवसर पर स्त्रियो की वेश-भूषा

यज्ञ के समय स्त्रियो की वेश-भूषा का तो पूरा वर्णन नही मिला पर उनकी पोशाक मे रसना का एक विशेष महत्व होता था । यज्ञ के अवसर पर अध्वर्यु यजमान की पत्नी की कमर मे एक रस्सी बाधता था (योक्त्रेण सन्नह्यति) [१२७] । शतपथ के अनुसार इस क्रिया का लाक्षणिक अर्थ यह था कि स्त्री के नाभि से नीचे शरीर का भाग अपवित्र माना जाता था। यह रसना अधिवास के ऊपर बाधी जाती थी । ऐसा करने से स्त्री मे पवित्रता कैसे आ जाती थी इसे शतपथ [१२८] मे बहुत घुमा फिरा कर समझाया गया है । शतपथ के अनुसार वस्त्र वनस्पति के प्रतीक है और रस्सी वरुणपाश की प्रतीक है और इसीलिए स्त्री की रक्षा के लिए उसके शरीर और वरुणपाश के बीच मे औषधि यानी वस्त्र रक्खे गये हैं । सम्भवत इस मत्र में रसना के जादू भरे गुण और वस्त्रो के रक्षक शक्ति की ओर इशारा किया गया है ।

करधनी

करधनी को रसना कहा गया है [१२९] । यज्ञ के समय वरुण के अस्त्र होने की वजह से इसमे गाठ नही लगायी जाती थी । इसका कारण वरुण के अस्त्र के साथ छेडखानी करने के नतीजे का डर हो सकता है । इससे यह भी पता चलता है कि साधारणत रसना में गाठें लगती थी ।

१२५—शत० ब्रा०, ३ भा० , पृ० ८३, फु० नो० ३
१२६—शत० ब्रा०, २।४।२।२४
१२७—शत० ब्रा०, १।३।१।१३
१२८—शत० ब्रा०, १।३।१।१३-१४
१२९—श० ब्रा०, १।३।१।१५

रेशमी चडातक

वाजपेय यज्ञ के अवसर पर[१३०] यजमान की पत्नी को कमर मे लपेटे हुए दीक्षित वस्त्र के ऊपर कुश का बना हुआ चडातक पहनना लाजमी था । यहा चडातक और कुश के अर्थ जानने जरूरी है । सायण के अनुसार कुश शब्द कुश अथवा रेशम का द्योतक है और चडातक रेशमी होता था (क्रिमिकोशविकारभूतवास) । अगर कुश का अर्थ रेशमी वस्त्र ठीक है तो ई० पू० ७ वी या ८ वी शताब्दी मे भी इस देश मे रेशम का व्यवहार प्रचलित हो चुका था । ऐसा होना कुछ असभव भी नही है क्योकि पाणिनि के समय (ई० पू० ५ वी शताब्दी) में तो रेशम चल चुका था। चडातक और चलन एक ही होते थे । चडातक को अर्धोरुक भी कहा गया है जो आधी जाघो तक आने वाला घाघरा जैसा कोई वस्त्र था और जिसे नर्तकिया पहना करती थी। लगता है कि अर्धोरुक जाघिया या घघरी की तरह कोई वस्त्र था । इसका उल्लेख भी इस बात का प्रमाण है कि वैदिक युग मे सिले हुए वस्त्रो का व्यवहार होता था।

व्रात्यो की वेश-भूषा

अभी यह तो ठीक ठीक से कहा नही जा सकता कि व्रात्य आर्यों के समाज से बहिष्कृत जन थे या इस देश के आदिवासी जिनके धार्मिक और सामाजिक विचार आर्यों से भिन्न थे । पचविंश ब्राह्मण मे प्रायश्चित के बाद इनके पुन आर्य सस्कृति मे लाये जाने का उल्लेख है । इसी प्रकरण मे व्रात्यो के वस्त्रो पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। व्रात्यो के गृहपति उष्णीष, काली गोट वाला कपडा (कृष्णसवास) बकरे की एक सफेद और दूसरी काली खाल (कृष्णावलक्षे अजिने) पहनते थे । इनके पास चाबुक (प्रतोद) बिना बाण वाले धनुष (शायद नावक के तीर या ब्लो पाइप से मतलब हो) और तख्तो के बने रथ (विपथश्च फलकास्तीर्ण) होते थे। इनके गले मे निष्क नाम की मालाए होती थी [१३१]। इन गृहपतियो के अनुयायी व्रात्यो के वस्त्रो के किनारे (वलूकान्तानि) लाल होते थे और उनसे निकली छीरे बटी हुई होती थी (दामतूषाणि)। वे जूते पहनते थे और बकरे की दो जुडी हुई खाले ओढते थे [१३२]। लाट्यायन श्रौत सूत्र[१३३] मे व्रात्यो को लाल उष्णीष, लाल वस्त्र (लोहित वाससो)और कुरते (उरुपोत)पहने बतलाया गया है। व्रात्य अपनी पगडी टेढी बाधते थे (तिर्य्यङ्‌ नद्ध) [१३४]

१३०—श० ब्रा०, ५।२।१।८

१३१—पचविंश ब्रा० , १७।१।१४

१३२—वही, १७।१।१५

१३३—ला० श्रौ० सू०, ८।५।८

१३४—वही, ८।६।७

सूत्रो के समय व्रात्यो के वस्त्रो के सबध में सब आचार्य एक राय नही थे। शाडिल्य के[१३५] अनुसार उनके वस्त्र काले न होकर चितकबरे होते थे। गौतम[१३६] के अनुसार उनके वस्त्र सफेद (शुक्ल) होते थे और उनके किनारे काले (कृष्णदश) होते थे।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि व्रात्य शायद धोती पगडी और दो बकरे की खालें वस्त्र रूप में व्यवहार करते थे। साधारण श्रेणी का व्रात्य शायद लाल किनारे की धोती जिसमें बटी छीरे होती थी, पगडी, दो बकरे की खाले और जूते पहनता था।

१३५—वही, ८।६।१२
१३६—वही, ८।६।१३

तीसरा अध्याय

महाजानपद और शैशुनाग युगो की वेश-भूषा

६४२ ई० पू० मे ३२० ई० पू० तक का भारतीय इतिहास षोडश जनपदों शैशुनागों (६४२-४१३ ई० पू०) और नदो (४१३-३२२ ई० पू०) का इतिहास है । शैशुनाग वश मे नवीन राजगृह की नीव डालने वाले विविसार, श्रेणिक और कुणिक अजातशत्रु वुद्ध और महावीर के समकालीन थे। इस युग के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास की प्रचुर सामग्री हमें वौद्ध और जैन साहित्यो तथा धर्मसूत्रो, गृह्यसूत्रो और अप्टाध्यायी से प्राप्त है। इन सव ग्रथो के कालनिर्णय में भी हमें उसी कठिनाई का सामना करना पडता है जिसे हमे वैदिक ग्रथो के कालनिर्णय में । फिर भी उनके अध्ययन से हमें पता चलता है कि उनमें वर्णित राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाए मौर्य युग से पूर्व की है । इस युग के ब्राह्मण, जैन, वौद्ध और व्याकरण शास्त्रो मे उल्लिखित भारतीय सस्कृति का रूप करीव करीव एक सा है । इसलिए अगर हम इस युग की सस्कृति को षोडश महाजनपद युग की सस्कृति कहें तो इसमें कोई हरज नही है। श्रुत होने से इस युग के ग्रथ वाद में इकट्ठे करके लिखे गये और सभव है कि वहुत सी वाद की वातो का भी उनमे समावेश हो गया हो, पर आधुनिक ग्रथानुशीलन की परिपाटी को ध्यान मे रखकर अगर हम इन ग्रथो का अध्ययन करे तो पुराने को नये से अलग करने मे हम समर्थ हो सकते है। इस वात को ध्यान में रख कर हमने वौद्ध और जैन ग्रथो के उन्ही अशो को लिया है जो आलोचना की कसौटी पर खरे और प्राचीन उतरते है ।

महाजानपद युग में सभ्यता का विकास

इस युग की सभ्यता का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस युग में वैदिक युग से भारतीय सभ्यता आगे वढ चुकी थी। ग्राम्य सभ्यता से निकलकर भारतीय सभ्यता अव नगरो मे केंद्रित होने लगी थी और इसके फलस्वरूप राजगृह, साकेत, वाराणसी, वैशाली और पुष्कलावती ऐसे वड़े वडे नगर सभ्यता के केन्द्र वन गये थे । परिखा और प्राकारो से परिवेष्टित नगर शत्रुओ के लिए दुर्गम थे। उनकी करीनेदार सडकें, सजी दुकानें तथा कला कौशल के कारखानें भारतीय सभ्यता के प्रतीक थे। विचार स्वतत्रता इस युग की खास देन थी जिसके फलस्वरूप प्राचीन वैदिक धर्म की नीव हिल गयी। इस युग मे वहुत सी धातुए जैसे रागा, सीसा, चादी, लोहे और तावे का खूब व्यवहार होने लगा था । राज प्रासाद और रईसो के एक या कई मजिलो वाले प्रशस्त गृह ईंट और लकड़ी के वनने लगे

थे। कपास, क्षौम, रेशम, और ऊनी कपडो का खूब चलन था। कपडो पर कसीदे का काम भी होता था। तरह तरह के बरतन और सज्जा के सामान जैसे कुरसिया, सिंहासन, सेज, शीशे इत्यादि लोग व्यवहार में लाते थे। लोग सोने चादी के गहने पहनते थे और बहुत से रत्नो का उन्हे पता था।

बौद्ध और जैन साहित्यो में कारीगरों का सामाजिक स्थान

जातक कथाओ के अनुसार कारीगर अट्ठारह श्रेणियो में विभक्त थे जिनमें बढइयो, लुहारो और चितेरो की श्रेणिया भी सम्मिलित थी। कसीदा काढने वालो (पेसकारसिप्प) और बेंत बीनने वालो (नलकार)[१] को शायद इसलिये नीच काम करने वाला कहा गया है कि ये व्यवसाय देश के आदिम निवासियो के हाथो मे थे जिन्हे आर्य हेय दृष्टि से देखते थे। भीमसेन जातक[२] मे एक धनुर्धारी ब्राह्मण बुनकर (ततुवाय) के व्यवसाय को नीच काम कहता है। सुत्तविभग[३] में भी नलकारशिल्प, कुभकारशिल्प, पेशकार शिल्प और स्नापित शिल्प को नीच काम कहा गया है। ऊपर के उल्लेखो से यह न समझ लेना चाहिए कि यह विचार बौद्धो के है क्योकि बुद्ध ने तो जात पात तोडने की पूरी व्यवस्था दी है। ये भाव तो केवल तत्कालीन ब्राह्मण आर्य सभ्यता के प्रतीक मात्र है जो कहानियो के प्रसग मे बौद्ध साहित्य में भी आ गये है। जबूद्वीप प्रज्ञप्ति[४] में जो जैनग्रथ है दरजियो (तुण्णाग), बुनकरो (ततुवाय) और रेशमी कपडे बिनने वालो (पट्टगार) को शिल्पार्यों के श्रेणी मे रक्खा गया है जिसका मतलब यह है कि अपने शिल्प बल से ये कारीगर आर्यत्व को प्राप्त थे। इसी तरह दौष्यिक, सौत्रिक और कार्पासिक भी कर्म आर्य[५] माने गये है।

इस युग में निम्नलिखित तरह के कपडो का व्यवहार होता था —

कपास—हम दूसरे अध्याय मे दिखला चुके है कि वैदिक साहित्य में कपास का सर्व-प्रथम उल्लेख आश्वलायन गृह्य सूत्र मे आया है। पाणिनि के सूत्रो मे कर्पास का उल्लेख नही है लेकिन पाणिनि तूल से, जैसा कि ईषीका तूल[६] से मालूम पडता है परिचित थे। तूल का अर्थ वाद मे तो कपास होता है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि पाणिनि के युग मे भी इस शब्द के यही अर्थ होते थे। आचाराग सूत्र[७] में भी तूल (तूलकड) का उल्लेख है लेकिन

१—जातक, भा० ४, पृ० २५१

२—जा०, भा० १, पृ० ३५६

३—पाचित्तिय, २।२।१

४—ज० प्र०, सूत्र ७०

५—वही, सूत्र ६६

६—अष्टाध्यायी, ६।३।६५, डा० वासुदेव शरण, यू० पी० हि० सो० ज०, जुलाई १९४०, पृ० १०६

७—आचाराग सूत्र, २।५।१।१

टीकाकार ने इसका अर्थ कपास का वना कपड़ा न करके सेमल की रूई (अर्कतूल) किया है। यह अर्थ सदेहात्मक है क्योकि सेमल की रूई का सूत इतना कोमल होता है कि उसका वना कपडा एक धोव के वाद फट जाता है। लगता है यहा तूल से कपास का ही मतलव है। जातक कथाओ[८] मे तो कपास का वहुत उल्लेख हुआ है। तुडिल जातक[९] में वनारस के आसपास कपास के खेतो का वर्णन है। स्त्रिया कपास के खेतो की रखवारी करती थी। महाजनक जातक[१०] मे इन्हें कप्पासरक्खिका नाम से सवोधन किया गया है। कताई और वुनाई सवधी उपकरणो के भी कभी कभी उल्लेख आते है। रूई धुनने की धनुही (कप्पास-पोथन-धनुक) का उल्लेख आता है[११]। स्त्रियो द्वारा महीन सूत कात कर (सुखुम सुत्तानि कन्तित्वा) गडी (गुल)[१२] वनाने का भी उल्लेख है।

कौशेय

हम दूसरे अध्याय मे कह चुके है शायद कौशेय का उल्लेख सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में आता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे[१३] तो कौशेय के लिए एक अलग सूत्र ही है। रामायण[१४] मे सीता को पीला रेशमी वस्त्र पहिने वतलाया गया है (पीते कौशेय वाससी) वौद्ध साहित्य[१५] में कौशेय का उल्लेख है और रेशमी चादर (कौशेय प्रावार) पहनने की अनुमति वुद्ध ने भिक्षुओ को दी है[१६]। प्राचीन जैन ग्रथ आचाराग सूत्र में कौशेय का उल्लेख नही है पर पट्ट[१७] शब्द से शायद रेशम का वोध होता हो। इसी सूत्र के वस्त्रो की तालिका में चीनासुय या चीन के वने रेशमी वस्त्र का भी उल्लेख है। चीन शब्द के आने से इस तालिका की प्राचीनता पर सदेह किया जा सकता है पर अभी तक यह प्रश्न विवादास्पद है कि चीन शब्द भारतीय साहित्य में कव से आया। जैसा हम चौथे अध्याय मे देखेंगे चीन के वने रेशमी वस्त्रों का उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्र मे भी आया है, और महाभारत के सभापर्व में वाह्लीक और चीन के वने कीटज और पट्टज[१८] वस्त्रो का उल्लेख है। वाह्लीक और

८—जातक, भाग ६, पृ० ४७
९—जातक, भाग ३, पृ० २८६
१०—जातक, भाग ६, पृ० ३३६
११—जातक, भाग ६, पृ० ४१
१२—जातक, भाग ६, पृ० ३३६
१३—अष्टाध्यायी, ४।३।४२
१४—रामायण, २।४०।१६
१५—जातक, भा० ६, पृ० ४७
१६—महावग्ग, ८।१।३६
१७—आ० सू०, २।५।१।४
१८—महाभारत, २।४७।२२

चीन के उल्लेख से शायद मध्य एशिया के उस बडे रास्ते की ओर इशारा है जिससे होकर चीन से रेशम भारत और शाम आता था।

क्षौम

दूसरे अध्याय मे हम देख चुके है कि पिछले वैदिक काल मे अतसी की छाल के रेशे से बने हुये कपड़े का व्यवहार होता था। पाणिनि ने रेशेदार पौदो मे उमा[१९] यानी अतसी के पौदे का भी वर्णन किया है। उमा धान्य विशेष है या नही इस प्रश्न को लेकर वार्तिककार कात्यायन और महाभाष्यकार पतञ्जलि के मतो में भेद है। कात्यायन उमा और भगा को धान्य नही मानते और पतञ्जलि उन्हें धान्य मानते है। बौद्ध और जैन ग्रथो के आधार पर तो कात्यायन की राय ठीक मालूम पडती है क्योकि इनमे भगा और उमा का व्यवहार अन्न विशेष के लिए नही वरन् रेशो के लिये किया गया है जिनसे कपडे बनते थे। रामायण मे क्षौम के बहुत से उल्लेख आये है राम की माता क्षौम (क्षौमवासिसा)[२०] पहनती थी, एक विमल क्षौम पहने ब्राह्मण का वर्णन है[२१] और राम के नगर दर्शन के अवसर पर क्षौम और पट्ट के पावडे सड़को पर बिछाए जाने का उल्लेख है[२२]। जातको में क्षौम का उल्लेख आया है[२३] और महावग्ग में[२४] बुद्ध ने भिक्षुओ को क्षौम के चीवर बनाने की आज्ञा दी है। जैनो के आचाराग सूत्र मे[२५] जैन साधुओ को क्षौम पहनने की आज्ञा दी गयी है। आचाराग सूत्र मे[२६] कीमती वस्त्रो की तालिका में भी क्षौम आया है जिसे टीकाकार शीलाक ने सामान्य सूत का बना कपडा कहा है। यह अर्थ ठीक नही है क्योकि क्षौम का व्यवहार कही भी कपास से बने कपडे के लिए नही हुआ है। सभव यह है कि मोटे सूत के क्षौम साधारण रूप से जैन साधु व्यवहार कर सकते थे लेकिन बहुत बारीक सूत के कीमती क्षौम का व्यवहार उनके लिए वर्जित था।

कंबल

हम दूसरे अध्याय मे देख चुके है कि अथर्ववेद में कबल शब्द का प्रयोग ऊनी

१९—अष्टाध्यायी, ५।२।४, डा० वासुदेवशरण, यू० पी०, हि० सो० ज० (जुलाई १९४०) पृ० १०५

२०—रामायण, २।६।२८

२१—रामायण, २।८।७

२२—रामायण, २।१८।५

२३—जातक, भा० ६, पृ० ४७

२४—महावग्ग, ८।१।३६

२५—आचाराग सू० १।७।४।१, २।५।१।१

२६—आचाराग सू० २।५।१।४, निशीथ चूर्णि, भा० ७, पृ० ४६७ में क्षौम का अर्थ रूई क कपडा (पोण्डमया) अथवा वृक्ष विशेष की छाल से बना वस्त्र दिया है।

वस्त्रों के लिए हुआ है । महावग्ग[२७] मे भी कवल शब्द का व्यवहार ऊनी वस्त्रो के लिए ही हुआ है। जातको में[२८] गधार के रक्त पंडु कवल (इदगोपक वण्णाभा गधारा पडुकवला) की तारीफ की गयी है। महावणिज जातक[२९] में वहुमूल्य वस्तुओ की तालिका मे उड्डीयान के कवल भी शामिल है । शिवि लोगो का देश ऊनी शालो के लिए, जिन्हें वौद्ध साहित्य में सीवेय्यक दुस्स[३०] कहा है, प्रसिद्ध था। सिवि जातक[३१] में इसका उल्लेख है कि कोशल राज ने दशवल नाम के एक व्यक्ति को सिवि देश का वस्त्र (सीवेय्यक वत्थ) जिसका दाम एक लाख कार्षापण था, उपहार मे दिया। दुस्स शब्द अव भी पजावी और हिन्दी मे धुस्सा के रूप मे चला आता है लेकिन धुस्से की चादर मामूली कीमत की होती है । लगता है कि प्राचीन दुस्स दुशाले की तरह कोई कीमती ऊनी चादर थी। दुस्स प्राचीन वैदिक तूप जिसके अर्थ कपडे में वटी या अनवटी छोर है, निकला है । दुशाले मे वरावर छोर छोडी जाती है इसलिए उसका नाम महाजनपद युग में दुस्स पडा।

रामायण और महाभारत के अध्ययन से भी ऐसा पता चलता है कि गधार और पजाव ऊनी वस्त्रो के लिये प्रसिद्ध थे । रामायण में कहा गया है कि कैकय देश (आधुनिक शाहपुर-झेलम) के राजा ने अपने भाजे भरत को विदाई मे उपहार स्वरूप अलकृत कालीन (चित्राकुथान्) शुभ्र कवल और वकरो की खाले दी[३२]। महाभारत के सभापर्व के उन अध्यायो से जिनमें राजसूय यज्ञ के अवसर पर देश के विभिन्न भागो से आये उपायनो का वर्णन है यह पता चलता है कि पजाव, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और पूर्वी अफगानिस्तान से ऊनी कपडे और अधिकतर खालें आयी। कवोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) से कदली मृग की खाले, कीमती कवल, [३३]भेडो की खालें (ऐडान्श्चैलान्) और वृषदश पशु के समूर और वकरो की खालें आयी[३४]। परिसिंधु[३५] प्रदेश से भी तरह तरह के कवल आये। चीनियो हूणो, शको, ओड्रो और पर्वतांतर मे रहने वाले कवीलो ने भी तरह तरह के ऊनी वस्त्र उपहार में

२७—महावग्ग, ८।३।१

२८—जातक, भा० ६, पृ० ५००

२९—जातक, भा० ४, पृ० ३५२

३०—महावग्ग, ८।१।२९

३१—जातक, भा० ४, पृ० ४०१

३२—रामायण, २।७६।२०

३३—महाभारत, २।४५।१९

३४—महाभारत, २।४७।३

३५—महाभारत, २।४७।११

वाहीतिक[७८]—यह एक सोलह हाथ लबी और आठ हाथ चौडी एक ऊनी चादर होती थी। एक ऐसी ही चादर राजा अजातशत्रु ने प्रसेनजित् के पास उपहार मे भेजी थी। प्रसेनजित् ने इसे आनद को भेंट कर दी।

नमतक[७९]—भेडो या पहाडी बकरो के रोए से कूट कर जमाया हुआ नमदा। कश्मीर मे आज दिन भी सादे या कामदार नमदे बहुतायत से बनते है।

कोजव[८०]—लबे रोए वाला कबल। शायद यह आधुनिक थुलमे की तरह कोई कबल था।

वस्त्रो की धुलाई और रगाई

कपडे धोने की रीति का वर्णन बौद्ध साहित्य मे तो नही मिलता लेकिन जैन ग्रथ ज्ञाताधर्म कथा[८१] मे उसका पूरा वर्णन है। पहले वस्त्र मे सज्जीखार लगा कर फिर उसे उबालते थे और बाद मे साफ पानी से धो लेते थे। अभी तक धोबी इसी रीति से कपडे धोते है। रगने के पहले भी कपडा अच्छी तरह से धो लिया जाता था[८२]। कपडे नीले, पीले, लाल, मजीठ, काले और हल्दी के रग मे रग लिये जाते थे[८३]। भिक्षुओ को रगीन कपडे पहनने की आज्ञा नही थी।

भिक्षु, श्रमणों और जैन साधुओ के पहनने के वस्त्र

बौद्ध और जैन साहित्यो में भिक्षुओ और साधुओ के विहित वस्त्रो का बडा सविस्तर वर्णन हुआ है। प्रसगवश श्रमण ब्राह्मणो के वस्त्रो का इसलिए उल्लेख हुआ है कि उनका व्यवहार बौद्ध और जैन साधु न करे। अपने अपने सघो की ब्राह्मण धर्मानुयायी सघो से विभिन्नता दिखलाने के लिए ऐसा आवश्यक भी था

ब्राह्मण और श्रमणो के वस्त्र

सीहनाद सुत्त[८४] में इनके वस्त्रो का पूरा पूरा वर्णन हुआ है। ये सन के बने वस्त्र (शाणानि), सन और दूसरी तरह के सतो के मेल से बुने कपडे, मृत शरीर से अलग किये

७८—मज्झिम निकाय, २।४।८

७९—चुल्लवग्ग, १०।१०।४

८०—महावग्ग, ८।१।३६

८१—ज्ञाता धर्मकथा, ३। ६०

८२—महावग्ग, ५।१। १०

८३—महावग्ग, ८।२६। १

८४—कस्सप सीहनाद सुत्त, १४, डायलॉग्स् ऑफ बुद्ध, पृ० २३०-२३१, पाठ दीघनिकाय, भा० १, पृ० १६६-१६७

हुए कपडे (छवदुस्स), घूर पर फेंके हुये चीथडो से बने कपड़े (पासुदुकूलानि), तिरीट की छाल से बने कपडे (तिरीटानि), मृगचर्म (अजिनानि), कृष्णमृग के चर्म की पट्टियो से बने कपडे (अजिनक्खिप), कुश के बने कपडे (कुशचीर), वल्कल के बने कपडे (वाकाचीर), लकडी की फराटियो या टुकडो से बने कपडे (फलकचीर), मनुष्य के बालो से बने कबल (केसकबल), घोडे की दुम के बालो से बने कबल (वालकबल) और उल्लू के पंखो से बने कबल (उलूकपक्ख) पहनते थे। ब्राह्मणो और श्रमणो के वस्त्रो का वर्णन देखकर यह पता चलता है कि उनके भिन्न भिन्न वर्गो मे भिन्न भिन्न तरह के कपडे प्रचलित थे। सन, तिरीट, मृगचर्म और वल्कल के बने कपडे तो ब्राह्मण पहनते थे। छवदुस्स एरक नाम की घास की चटाई शव के लपेटने के लिए होती थी[८५] और पासुदुकूल लगता है कापालिक क्रिया साधने वाले पहनते थे। केसकबल भी एक तरह के श्रमणो का वस्त्र था। बुद्ध के समकालीन एक आचार्य का नाम केसकबली था। लगता है फलकचीर, वालकबल और उलूकपक्ख पहनने वाले श्रमणो के वर्ग भी रहे होगें।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्र

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियो के वस्त्र प्राय. एक से होते थे। पीले रग में रगे इनके वस्त्रो की सख्या तीन होती थी यथा सघाटी अर्थात् कमर में लपेटने की दोहरी तहमत, अतरवासक अर्थात् शरीर के ऊपरी भाग ढकने का वस्त्र और उत्तरासंग अर्थात् चादर[८६]। इनके सिवाय बैठने के लिए आसन (प्रत्यस्तरण), खुजली होने पर पहनने के लिए चार वित्ता लबा और दो वित्ता चौडा कोपीन (कडूक प्रतिच्छादन)[८७] वर्षा काल मे पहनने के लिए एक वस्त्र (वार्षिक साटिक)[८८] जो छ वित्ता लंबा और ढाई वित्ता चौडा होता था, उनके लिए विहित थे। भिक्षु आयोगपट्ट[८९] (बैठने पर दोनों घुटनो और पीठ के जोडने के लिए एक पट्टी) भी व्यवहार में लाते थे। इनके कमरबद (कायबध)[९०] सादी और फेरदार बुनावट की पट्टियो से बनते थे। इन कायबधो के किनारे फटने के डर से उलट कर सी दिये जाते थे। इनके किनारो पर लगी पट्टियो को शोभक कहते थे, और इन पर की हुई बरफीदार तगनी को गुणक[९१]। कायबधो में हुक (बीठ) भी लगते थे पर ये बीठ सदा हड्डी, शख और डोरे के बने होते थे, भिक्षुओ के लिए सोने चादी के बीठ वर्जित थे[९२]। भिक्षु अपने वस्त्रो में तुक (पासक) और मेख (घुडी) लगा सकते थे। मेख हड्डी, सूत और शख के बने होते थे सोने चादी के नही[९३]।

८५—कस्सप सीहनाद सुत्त, १५, टीका
८६—महावग्ग, ८।१३।४-५
८७—भिक्खु पातिमोक्ख, ५।३९।९०, महावग्ग, ८।१८।१
८८—भि० पा०, ५।३९।९१; म० व०, ८।५।६
८९—चुल्लवग्ग, ५।२०।२
९०—वही, ५।२९।२
९१—९३—चुल्लवग्ग, ५।२९।२

भिक्षु कचुक नही पहन सकते थे[९४]। वे लहरियादार लबे, कसीदेदार सर्प फणाकार, तथा पजक युक्त किनारो का वस्त्र नही पहन सकते थे क्योकि ऐसे वस्त्र केवल सर्वसाधारण ही पहन सकते थे

करघे और उनके भाग

ऐसा मालूम पडता है कि बौद्ध युग के आरभिक युग में बौद्ध भिक्षुओ को कपडे बिनने की स्वतत्रता थी। इसी प्रकरण मे करघा (तंतक), ढरकी (वेमक), टट्टी (शलाका) और डोर (वट्ट) के नाम आये है[९५]। जहा तक मुझे पता है कम से कम किसी भारतीय धर्म ने साधुओ और भिक्षुओ को कपडे बुनने की स्वतत्रता नही दी है। बुनाई की आज्ञा देकर बौद्ध धर्म अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देता है।

बौद्ध भिक्षुणियों के वस्त्र

बौद्ध भिक्षुणियाँ सघाटी, अतरवासक और उत्तरासग के अतिरिक्त कचुक भी पहन सकती थी। एक जगह इस बात का उल्लेख है कि बिना कचुक पहने गाव में जाने वाली भिक्षुणियो के लिए प्रायश्चित्त का विधान था[९६]। यह कहना कठिन है कि इस युग में कचुक का आकार चोली जैसा होता था या कुरते जैसा, पर शुग काल की मट्टी की मूर्तियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शायद कचुक कुरते जैसा था। भिक्षुणियाँ एकात मे कटिसूत्र से बधा लगोट जैसा एक वस्त्र पहनती थी[९७]। यह लगोट डेढ फुट लबे और छ इच चौडे एक तिकोने कपडे से बना होता था और कमर से बाँधने के लिए एक डोरी लगती थी ।

जैन साधुओं के वस्त्र

आचाराग सूत्र[९८] के अनुसार जैन साधु केवल तीन वस्त्र ग्रहण कर सकते थे, इनमें दो तो क्षौम की धोतियाँ (क्षौम कल्प) होती थी और एक ऊनी चादर (और्णिक कल्प)। शीलाक अपनी टीका[९९] मे कहते है कि जाडो मे जैन साधु ढाई हाथ वर्ग गज की दो कोपीने और एक ऊनी वस्त्र ग्रहण कर सकते थे। जिस अवस्था में कपडे साधुओ को मिलते थे उसी

९४—महावग्ग, ८।२९।१
९५—चुल्लवग्ग, ५।२०।२
९६—भिक्खुनी पातिमोक्ख, ४।४०।९६
९७—चुल्लवग्ग, १०।६।२
९८—आ० सू०, १।७।४।१
९९—टीका, पृ० २५१ अ

अवस्था में वे उन्हे पहन सकते थे । जैन साधु अपने कपडे धो, रग नही सकते थे । जाडा बीत जाने पर साधु क्षौमसाटी भी पहन सकते थे[१००] । जिनकल्पधारी साधु हमेशा नगे रहते थे ।

साधारण लोगों की वेश-भूषा

गृहस्थो के पहरावे में तीन कपडे होते थे यथा धोती (अतरवासक), दुपट्टा (उत्तरासग) और पगडी (उष्णीप)। स्त्रियाँ[१०१] और पुरुष[१०२] कचुक पहनते थे। शायद यह कुरता जैसा कोई वस्त्र रहा हो, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि यह वस्त्र आगे से खुला रहता था अथवा वद।

स्त्रियाँ साडी भी पहनती थी जो काफी मजबूत होती थी (वलित्थग साटको)[१०३] । रानियाँ अमूमन साडियाँ पहना करती थी और इसे सट्ट-साट्टक कहते थे[१०४] । वौद्ध साहित्य से यह पता नही चलता कि उस समय साडी पहनने का क्या तरीका था ।

आकर्षक ढंग से कपडे पहनने की प्रथा

वौद्ध साहित्य से पता चलता है कि लोग अपने कपडे बडे शौक से सँवार बना कर पहनते थे। वैशाली के नागरिक कपडों के वडे शौकीन थे। महापरिनिब्बाण सुत्त[१०५] में कहा गया है कि यह समाचार पाकर वुद्ध अंवपालिका के यहा पधारने वाले है वैशाली के नागरिक आतुरतापूर्वक उनसे मिलने चले । उन्होंने अपने शरीर के रगो से मेल खाते हुए वस्त्र और आभूषण धारण कर रक्खे थे । साँवले रग के आदमी गहरे रग का वस्त्राभूषण पहिने थे, साफ रग के लोग हल्के कपडे और गहने पहने थे । स्त्रियाँ भी अपने वनाव शृङ्गार मे रगो के मिलान पर वडा ध्यान देती थी। जातको मे एक जगह कहा गया है[१०६] कि विरूपाक्ष की पुत्री कालकण्णी ने सुचिपरिवार नाम सेट्ठी से मिलते समय नीले रग का वस्त्र, नील विलेपन और नील मणियो से अपना शृङ्गार कर रक्खा था। लेकिन श्रेष्ठी को यह रगविन्यास पसंद नही आया और उसने अपनी राय कालकण्णी से साफ साफ कह दी।

१००—आचारांग सूत्र, १।७।५।१

१०१—भिक्खुनी पातिमोक्ख, ४।४०।९६

१०२—चुल्लवग्ग, ५।२९।२

१०३—जातक (३२४), ३, पृ० ५५

१०४—जातक, (४३१), ३, २९६

१०५—महापरिनिब्बान सुत्त, २, १८

१०६—जातक (३८२), ३, पृ० ५५

का विशद वर्णन आया है जिससे पता चलता है कि कम से कम २५०० बरस पहले लोग सीने की कला मे पूरी तौर से प्रवीण हो चुके थे । सिलाई सबधी जो कुछ भी ज्ञान हमें बौद्ध साहित्य से प्राप्त होता है उसका वर्णन नीचे दिया जाता है ।

सूची--सूई लोग व्यवहार मे लाते थे और सुइया सूचीनालिका मे रखी जाती थी। सूइयो में मोरचा लगने के भय से सूचीनालिका मे मोम का एक अस्तर दे दिया जाता था[१२६] ।

पहले भिक्षुगण अपने कपड़े परगजे और बास के बने सूजे से सीते थे लेकिन बाद मे उन्हें लोहे की सूई से अपने कपडे सीने की आज्ञा मिल गई।

सूचिक और सूचिक नाली के उल्लेख चुल्लवग्ग मे[१२७] भी आते है। सूई की धार भोथरी न होने देने के लिए खाने मे चूना, जौका आटा, बालू तथा सिपिटक गोद मिली हुई मोम का प्रयोग होता था।

जातको मे एक स्थान पर एक सूई बनाने वाले की कथा दी हुई है जिससे पता चलता है कि सूचिकार अपने व्यवसाय मे काफी निपुण होते थे। कथा यह है[१२८] कि बोधिसत्व एक सूचिकार के चोले मे उत्पन्न हुए और उनकी इच्छा गाव के एक लुहार की कन्या से विवाह करने की हुई। उन्होने बहुत ही अच्छे किस्म के लोहे से एक सूई बनाई जो इतनी हल्की थी कि पानी पर तैर सकती थी । इस सूई को उन्होने एक कोश मे (सत्थकोश) रखा और उस कोश को एक नाली में, और फिर इस नाली को एक पेटी मे रख कर (ओवट्टिथायकत्वा) वे लोहार के गाव मे जाकर फेरी लगा कर आवाज देने लगे । "मेरी सूई सीधी और चिकनी है इसमे डोरा जल्दी पिरोया जा सकता है । कोरण्ड से इस पर पालिश की गयी है, इसकी नोक तेज है, सूई कौन लेगा।" "जल्दी पिरोई जाने वाली सीधी और मजबूत ठीक तरह से गोल की हुई मेरी सूई लोहे तक को छेद सकती है, बताओ मेरी सुई कौन लेगा।" लोहार की लडकी ने जब एक बाहरी को अपनी सूई को इस तरह प्रशसा करते सुना तो उसे एक आदमी की मूर्खता पर इसलिए आश्चर्य हुआ कि उस लोहारो के गाव की सुइया इतनी अच्छी बनती थी कि चारो ओर मे आदमी उन्हें खरीदने आते थे। लडकी ने बोधिसत्व को उत्तर दिया--

"हमारी हुके (बलिसानि) चारो ओर बिकती है, और आदमी हमारे गाव मे बनी सुइयो से भली भाति अवगत है, फिर यहा सुइया कौन बेंच सकता है।" "लोहे के काम में

१२६--चुल्लवग्ग ५।११।२

१२७--चुल्लवग्ग, ५।११।२

१२८--जातक (३८७), भा० ३, पृ० १७८-१७९

हमारी ख्याति है, हमारे हथियार सब से अच्छे बनते है, हम इस गाव के लोहार है, फिर यहा सुइया कौन बेच सकता है।"

ऊपर की गाथाओ से, जो तत्कालीन लोकगीत के सुन्दर नमूने है, यह पता चलता है कि सुइयो की यथेष्ट माग थी और इस व्यवसाय मे काफी प्रतिस्पर्धा भी थी।

कैंची—इसे सत्थक कहते थे और इसके रखने का खाना (आवेसनवित्थक) से बनाया जाता था[१२९]। कैंची की मूठे कभी कभी सोने चादी की होती थी लेकिन भिक्षु केवल हड्डी, हाथी दांत, सीग, बेत, बास, कडी लकडी, कासा और शख के बनी मूठ ही व्यवहार मे ला सकते थे।

प्रतिग्रह[१३०] (अगुश्ताना)—सूई से अगुलियो की रक्षा के लिए प्रतिग्रह या अगुश्ताने का व्यवहार होता था। रईस सोने चादी के अगुश्ताने बनवाते थे पर भिक्षु केवल हड्डी या शख इत्यादि के।

कठिन—यह एक प्रकार का फ्रेम या पट्टा होता था जिस पर दरजी सीने के कपडे फैला देता था। कपडा पट्टे पर फैला कर इधर उधर रस्सियो से बाध दिया जाता था और इसके बाद कठिन को घास की चटाई पर रख देते थे। कठिन की दोनो बगले मजबूती के लिए या तो दुहरी कर दी जाती थी या उन्हे कस कर बाध दिया जाता था (अनुवात परिभण्ड) कठिन के पायो या डडो को दड कठिन कहते थे, खूटो को पिदलक, बास की खपचियो को शलाका और बाधने की रस्सियो को विनन्धन रज्जु या विनन्धन सुत्तक कहते थे।[१३१]

सीयन की पक्तियो के बीच की चौडाई मे कमी-वेशी न आने देने के लिए कपडे पर ताडपत्र अकित कर दिये जाते थे। कपडे की सिलाई या कटाई के लिए ठीक जगह पर पहले लगर (मोघसुत्तकम्) डाल दिये जाते थे। बुद्धघोस के अनुसार ये लगर हरे डोरे से उसी प्रकार डाले जाते थे जैसे बढई काले डोरे से तख्ता काटने के लिए निशान बनाते थे।[१३२]

दरजी की दूकान मे खानेदार पेटियाँ (आवेसनवित्थक) होती थी। कठिन एक मडप या छप्पर के नीचे रक्खा जाता था। यह मडप चबूतरे (चय) पर इसलिए होता था जिससे पानी दूकान के अदर न घुस सके। चबूतरे मे ईट, पत्थर या लकडी का मुखौटा (facing) तथा ईट, पत्थर या लकडी की सीढियाँ जिनमे रेलिग (आलवनबाह) लगी

१२९—चुल्लवग्ग, ५।११।१

१३०—चुल्लवग्ग, ५।११।५

१३१—चुल्लवग्ग, ५।११।३

१३२—वही, ५।११।३

होती थी, दीवारे और छत पहले चमडे से ढाँक दी जाती थी और बाद मे उन पर भीतर बाहर से पलस्तर कर दिया जाता था। इसके बाद दुकान की छुहाई होती थी और उसमे काले लाल रग (गेरुपरिकम्म) रग लगाये जाते थे। इसके बाद माला और बेलो से वह अलकृत की जाती थी और उसमे खूटियाँ, टाडे (पचपटिक) तथा कपडे टाँगने के लिए बास और रस्सियाँ लगायी जाती थी[१३३]।

कठिन मे घुन लगने के भय से उसे गोचर्म (गोघसिका) से मढ देते थे। और काम न होने पर उसे एक खूटी (नागदन्त) से लटका देते थे[१३४]।

महावग्ग मे काटने, सीने और रफू करने के सबध मे बहुत से शब्द दिये गये है जिनसे पता चलता है कि प्राचीन भारत के लोग कटाई और सिलाई के प्रत्येक अगो से भली भाति परिचित थे। इन पारिभाषिक शब्दो के अर्थ समझने मे काफी कठिनाई पडती है क्योकि शब्द इतने प्राचीन है कि उनके अर्थ प्राय लुप्त हो गये है। शब्द और परिभाषाए नीचे दी जाती है—

(१) उल्लिखित—कपडे की लबाई चौडाई पर नाप के लिए नख या खडी से निशान बना देते थे[१३५]।

(२) बन्धन—सिलने के पहले कपडे के टुकडो को आपस मे लगर से जोडना[१३६]। पक्की सिलाई होने पर लगर तोड दिये जाते है।

(३) ओवट्टियकरण—लवान मे मोड कर लगर के सहारे सिलाई[१३७]।

(४) कडुसकरण—बुद्धघोस इसका अर्थ करते है मुद्दियपट्टबन्धनमत्तेन जिसका अर्थ ठीक ठीक नही लगता। हो सकता है इसका अर्थ कपडे के छोटे टुकडे से बडे कपडे का जोड हो[१३८]।

(५) दढिकरण—बुद्धघोस इस शब्द के निम्नलिखित अर्थ करते है (अ) दो चिमिलिकाओ (परतो) को दोहरा कर के सीना, (आ) एक परत के फट जाने पर दूसरी परत लगा कर उसे मजबूत करना, (इ) पट्टचीवर, कुक्षि इत्यादि के फट जाने पर उनमे

१३३—चुल्लवग्ग, ५।११।६
१३४—चुल्लवग्ग, ५।११।७
१३५—महावग्ग, ७।१।५
१३६—वही
१३७—वही, ८।१४।२, चुल्लवग्ग ५।१।२
१३८—महावग्ग, ७।१।५

प्योदे लगा कर उसे मजबूत करना[१३९]। यहा हमने बुद्धघोग की परिभाषाओ का केवल आशय दिया है।

(६) अनुवातकरण[१४०] —मजबूती के लिए बटाईदार सिलाइ, पिट्ठि अनुवात-आरोपण-मत्तेन, बुद्धघोस।

(७) परिभण्डकरण[१४१] —बगल और पीछे की सिलाई, कुच्छिअनुवातआरोपण मत्तेन, बुद्धघोस।

(८) ओवट्ठेयकरण[१४२] —कुछ जगहो मे दोहरी सिलाई—कठिन या दूसरे पट्ट को लेकर अकठिन चीवर से सीना।

(९) कुसि[१४३] —तिरछेबल दो सिले हुए कपडे—आयामतो दीघ च वित्थरतो च अनुवातादीना दीघपट्टान एतो अधिवचन—बुद्धघोस।

(१०) अड्ढकुसी[१४४] —तिरछे बल आधी दूर तक सिले हुए दो कपडे। अन्तरन्तरारस्स पट्टानं नामम्, बुद्धघोस।

(११) मंडल[१४५] —पाँच टुकडे वाले वस्त्र में एक खड में गोल सिलाई।

(१२) विवट्ट[१४६] —भीतरी मोड। मडलो को एक कर के सीने मे इस मोड की जरूरत पडती है।

(१३) अनुवट्ट[१४७] —मोडो में लगा हुआ अस्तर। उभेसु पस्सेसु द्वे खण्डानि अथवा विवट्टस्स एक पस्सतो द्विन्नपि चतुरपि खडान एत नामम्, बुद्धघोस।

(१४) जाघेयक[१४८] —घुटने पर सिला हुआ विशेप वस्त्र।

(१५) गिवेय्यक[१४९] —कालर। ग्रीवास्थान पर दृढता लाने के सूत से सिला हुआ टुकड़ा।

(१६) बहन्त[१५०] —केहुनी पर लगे हुए कपडो के टुकड़े। अनुवट्टान वहि एक खण्डम्, अथवा सुप्पमाण बहाय उपरि ठपिता उभो अन्तो वहिमुखा तिट्ठन्ति तेस एत नामम्।

१३९—वही

१४०—महावग्ग, ७।१।५; ८।२१।१

१४१—महावग्ग, ७।१।५

१४२—वही

१४३-१५०—महावग्ग, ७।१२।२

रफूकारी

(१) सुत्तलूख[१५१] —सत से ऊचा नीचा रफू।

(२) एक तरफ का रफू [१५२]—विकण्णो अच्चित्वा सिवितान एको सघाटि-कोणो दीघो होति।

(३) रफू मे ऊँचा नीचा हटाने की क्रिया (विकण्ण उद्धरितुम्)[१५३] इसके लिए बडे कोने को काट देना पडता था।

छीर बाधना और किनारे

(१) छीर निकालना[१५४] (ओकिरति)। छिन्न कोणतो गलति, बुद्धघोस

(२) किनारो पर छीर बाधना [१५५]—अनुवात परिभण्ड अनुवातञ्चेऽन परिभण्डम्। बुद्धघोस।

(३) पत्ता[१५६] —भीतरी वस्त्र मे लगी हुई किनारियाँ।

(४) अटठ्पाद[१५७] —एक किस्म की किनारी या झालर।

(५) असबद्ध[१५८] —कन्धो पर लगी गोट।

१५१-१५८—महावग्ग, ८।२१।१

चौथा अध्याय

मौर्य, शुग और शक-सातवाहन काल के वस्त्र

(ई० पू० तीसरी सदी से पहली सदी तक)

चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३२० ई० पू० नदवश का उन्मीलन कर के मगध साम्राज्य की शासनडोर सभाली। इस युग की राज्यव्यवस्था और सामाजिक दशा का सुन्दर चित्रण चन्द्रगुप्त के मत्री कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक (ई० पु० २७२-२३२) भारतवर्ष के महान् शासको में अपना ऊँचा स्थान रखते है। अशोक बौद्ध थे और बौद्धधर्म के प्रचारार्थ उन्होने बौद्ध भिक्षुओ को इस देश के बाहर भेजा। उनके शिलालेख प्रजा को धर्मपालन की शिक्षा देते है। अशोक ने अपने साम्राज्य में बहुत से बौद्ध स्तूप भी बनवाये। अशोककालीन मौर्य साम्राज्य का विस्तार तमाम उत्तर भारत, पूर्वी अफगानिस्तान, कश्मीर तथा दक्षिण तक फैला हुआ था। मौर्यो का शासन काल ई० पू० १८४ तक रहा। इसके बाद शुगो ने और बाद मे कण्वो ने राज्य किया। इस युग मे सातवाहनो ने जिनके पास कृष्णा गोदावरी के घाटियो में बहुत से किले थे अपना विस्तार पूना से उज्जैन तक बढाया और उनके वशवाले करीब ४५० वर्ष तक राज्य करते रहे। ई० पू० ७०-२० के बीच मे पजाब और मथुरा मे शक राज्य करते थे।

इस काल की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए जो सामग्री उपलब्ध है उसमे अधिकतर शुगकाल और बाद के अर्धचित्र है। इसीलिए मौर्यकाल की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमे साहित्य का ही सहारा लेना पडता है। इस युग के वस्त्रो के इतिहास के लिए हमे अर्थ-शास्त्र, मेगस्थनीज की इडिका और महाभारत के सभापर्व के कुछ अशो से काफी सहायता मिलती है। उपरोक्त ग्रथो के अध्ययन से पता चलता है कि जातक कथाओ और विनय-पिटक मे वर्णित भारतीय वेश-भूषा इस युग मे भी चालू रही। लेकिन इस युग की वेश-भूषा मे हम कुछ बाहरी पहरावो को भी देखते है जिनसे पता चलता है कि भारतीयो का इस युग मे विदेशियो से काफी सपर्क रहा। इस युग मे ऐसे वस्त्रो के भी उल्लेख आये है जो बलख, ताजिकिस्तान और चीन से आते थे। इन सब से यह पता चलता है कि भारतीयो का विदेशियो से राजनैतिक और व्यापारिक दोनो सबध था और इस युग मे भारतीय अपने देश की चहारदीवारी से बाहर निकल कर अपनी सभ्यता और व्यापार का प्रसार कर रहे थे।

समूर और चमडे

कौटिल्य अर्थशास्त्र में तरह तरह के चमडो और समूरो का विशद वर्णन दिया हुआ है। ये समूर और चमडे हिमालय से आते थे और इतने कीमती समझे जाते थे कि राजभडार मे रत्नो तथा और सुगधित द्रव्यो के साथ रखे जाते थे। निम्नलिखित समूरो और चमडो की परिभाषाएँ श्री गणपति शास्त्री द्वारा सपादित अर्थशास्त्र से ली गयी है। श्री शामा शास्त्री के अग्रेजी अनुवाद का भी सकते इसलिए कर दिया गया है कि उनके अनुवाद और श्री गणपति शास्त्री की टीका में काफी अतर ह।

(१) कान्तानावक[1] —इस समूर का रग मोर की गरदन की तरह हरा होता था और यह कान्तानावक प्रदेश से आता था। इस देश की स्थिति का पता नही है।

(२) प्रैयक[2] —यह समूर सफेद और नीले रंग का होता था और इस पर बुदकियाँ और धारिया (लेखा विंदुचित्र) पडी होती थी। न० १-२ के चमडो की लबाई आठ अंगुल होती थी।

इन समूरो के नाप से पता चलता है कि शायद वे छोटे जानवरो के समूर रहे हो अथवा एक बडे चमडे के आठ अगुल के बराबर टुकडे रहे हो।

द्वादशग्राम में तैयार किये हुए चमडे

(३) बिसी[3] —इसका कोई खास रग नही होता था और यह बालदार और चित्तीदार होता था। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इस समूर में बहुत से रगो के मेल होते थे और इसलिए यह कहना कठिन है कि उसका खास रग क्या होता था। इस पर रोए (दुहिलिका या दुहिलितिका) और चित्तिया होती थी।

(४) महाविसी[4] —यह समूर खुरखुरा और प्राय सफेद होता था ३-४ न० के चमडे १२ अगुल लबे होते थे और हिमालय पर्वत पर बसे म्लेच्छो के द्वादशग्राम से आते थे।

निम्नलिखि समूर आरोह से आते थे जो टीका के अनुसार हिमालय प्रदेश में स्थित था[5]।

१—गणपति शास्त्री, अर्थशास्त्र, १, पृ० १६१, शामा शास्त्री, अ० शा० पृ० ९८

आगे हम गणपति शास्त्री द्वारा संपादित अर्थशास्त्र के लए ग० शा० और शामा शास्त्री के अर्थशास्त्र के अनुवाद के लिए शा० शा० का लघुप्रयोग करेंगे।

२—वही

३—वही

४—वही, शा० शा०, पृ० ८८, फु० नो० ५

५—शा० शा०, पृ० ८८, फु० नो० ६

(५) श्यामिका[६] —यह भूरे रग का वृंदीदार विदुचित्रा समूर था।

(६) कालिका[७] —यह भूरे और फाख्तई रग का समूर था।

न० ५-६ के चमडे ८ अगूल लबे होते थे।

(७) कदली[८] —यह खुराखुरा समूर दो हाथ चौडा और २४ अगुल लबा होता था। महाभारत के अनुसार[९] कदली मृग के समूर, काले, भूरे और लाल रग के होते थे। कम्बोज (आधुनिक ताजिकिस्तान) के निवासी राजसूय यज्ञ के अवसर पर कदली मृगचर्म युधिष्ठिर को भेंट देने लाये थे।

(८) चन्द्रोत्तरा[१०]—इस समूर पर गोल चित्तियाँ पडती थी और इसका नाप कदली जैसा ही होता था।

(९) शाकुला[११]—इस पर गोल चित्तियाँ (कोठमडल-चित्रा) पडती थी और इसमें कर्णिकाए (कृतकर्णिकाजिनचित्रा) भी रहती थी। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसकी चौडाई तीन हाथ अथवा आठ अगुल होती थीं।

वाल्हीक देश (आधुनिक बलख) के समूर

(१०) सामूर[१२]—इसका रग काला (अञ्जनवर्ण) होता था और यह ३६ अगुल चौडा होता था। लगता है यह कोई रोएदार समूर रहा होगा, क्योकि आजदिन भी ऐसे चमडे को हिंदी मे समूर कहते है।

(११) चीनासि[१३]—चीन देश से आया हुआ समूर, यह लाली लिये हुए काले अथवा सफेदी मायल काले रग का होता था।

६—ग० शा० १, पृ० १६१; शा० शा०, पृ० ८८

७—वही

८—ग० शा०, १, पृ० १६१-६२

९—महाभारत, २, ४५, १९

१०—ग० शा०, १, पृ० १६२

११—वही

१२—वही

१३—वही, प्रोफेसर नीलकठ शास्त्री ने चीन और भारत के प्राचीनतम सबध के उद्धरणो को इसलिए भली भाति जाचा है क्योकि इस जाच पडताल से अर्थशास्त्र के, जिसमें चीन का उल्लेख है, समय

(१२) सामूली[१४]—इसका समूर गेंहू के रंग का होता था और इसकी लबाई ३६ अगुल होती थी ।

ऊदबिलाव के चमड़े

(१३) सातीना[१५]—यह काले रग का होता था।

(१४) नलतूला[१६]—इसका रग नल नाम की घास के रेशो की तरह होता था।

(१५) वृत्रपुच्छ[१७]—चमडा भूरे रग का होता था और उसमे ऊदबिलाव की गोल पूंछ भी रहती थी।

समूरों के चुनाव मे कौटिल्य की राय है कि मुलायम चिकने और गज्झिन समूर ही सब से अच्छे होते है[१८]।

वनो के प्रकरण मं[१९] और तरह के साधारण चमडो का उल्लेख अर्थशास्त्र में आया ह। इनम गोह, सेरक (एक विशेष प्रकार की गोह), चीता, सूस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा, सुरा गाय और गयाल के चमडे मुख्य थे। इन चमड़ो का बहुत से कामो में उपयोग होता था।

कंबल और शाल

इस प्रकरण के आरभ मे भेड के ऊन से बने कबल और शालो का वर्णन दिया गया है। भेंड के ऊन से बने शाल (आविक) सफेद, गहरे लाल (शुद्धरक्त) या मिश्रित लाल (पक्षरक्त) रग के होते थे[२०]।

अलकार और कारीगरी के हिसाब से अर्थशास्त्र में शालो का अच्छा वर्णन आया है। शालो पर सुईकारी और अमलकारी रीति से अलकार बनाने के निम्न लिखित तरीके दिये गये है—

(१) खचित[२१]—टीका मे इस कारीगरी का अर्थ दिया हुआ है—

पर काफी प्रकाश पड़ता है, नीलकठ शास्त्री, आई० एच० क्यू (१४), १९३८ (पृ० ३८० इत्यादि)। प्रो पलियो प्राचीन चीनी सबूतो के आधार पर (बी० ई० एफ० ई० ओ०, ४, पृ० १४६) इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि चीन नाम प्रथम त्सिन राजवश से (ई० पू० २४९-२०७) निकला। अर्थशास्त्र के छपने पर विद्वानों में काफी वहस चली और जो विद्वान अर्थशास्त्र को मौर्य काल के वाद रखने के पक्ष में थे उन्होने अपने मत के पक्ष में चीनपट्ट का उल्लेख किया है। याकोबी और लाउफर इस सिद्धान्त को नही मानते। प्रो० शास्त्री ने कुछ चीनी प्रमाण दे कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कम से कम ई० पू० दूसरी शताब्दी में चीन और भारत में सबध था।

१४—१८—ग० शा० १, पृ० १९२

१९—ग० शा० १, पृ० २४८, शा० शा० पृ० ११९

२०—ग० शा० १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८९

२१—वही

सूचिवान कर्म निष्पादितम्—सुइकारी और बुनाई से बना हुआ। इस संबंध मे मैं पाठको का ध्यान, कश्मीर की पुरानी शाल वीनने की पद्धति की ओर आकर्षित करना चाहता हू क्योकि अर्थशास्त्र में शाल बिनने की पद्धति और आधुनिक कश्मीर मे शाल बिनने की पद्धति प्राय एक सी है। कश्मीर मे शाल बुनने के दो तरीके है तीली या कनीकार और अम्लीकार। तीलीकार में नक्काशिया करघे पर बुन ली जाती है। सुईकारी में बेल बूटियां सूई से काढी जाती हैं। तात्पर्य यह है कि एक में बेल बूटिया बुनी जाती है और दूसरी में काढ़ी जाती है। लेकिन वास्तव में करघे पर फूल पत्तिया केवल बहुत ही महगे जामेवारो पर बनती है, और उनमे भी थोड़ी बहुत कढाई सूई की करनी ही पडती है। सत्य तो यह है कि कश्मीरी शाल कनीकार और अम्लीकार के सयोग से बनते है, केवल एक ही पद्धति से बने शाल बहुत कम मिलते है[२२]। अर्थशास्त्र में वर्णित खचित शाल में फूल पत्तियां या और अलकार बुने अथवा काढ़े भी जाते थे। इसलिए प्राचीन खचित पद्धति आधुनिक कनीकार और अम्लीकार के मेल की द्योतक थी।

(२) वानचित्र[२३]—टीका में इसका अर्थ दिया हुआ है, 'वान कर्मणाकृत वैचित्र्यम्' 'करघे पर ही अलकार बुनना'। इसमें कोई सदेह नही कि वानचित्र आधुनिक तिली या कनीकार पद्धति का ही प्राचीन सस्कृत नाम है।

(३) खडसघात्य[२४]—जुडे हुए टुकडो पर बना शाल। टीका में दूसरी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—खचितानां उतानां वा बहूनां खडानां सघातेन निष्पादितम्—'बिने हुए अथवा काढे हुए टुकडो को जोड कर बना हुआ शाल, खंडसंघात्य का यह वर्णन कश्मीरी पट्टीदार रूमालो के वर्णन से बहुत मिलता है। इस पद्धति में जब अलकार करघे पर बिनने होते है तब कई १२ से १८ इंच चौडे टुकडे ले लिए जाते है और उन पर फूल पत्तियो की नक्काशिया बुन दी जाती हैं। इन पट्टियो को मनचाहे नाप में काट लेते है और फिर जोड कर एक पूरी नक्काशी का रूप दे देते है और रूमाल के बीच मे इसे साट देते है। किनारे की पट्टिया रेशमी होती है जिनमें बहुधा एक ताना पश्मीने का होता है। ये पट्टिया भारी और मजबूत होती है। शाल की रफल बहुत बढ़िया पश्मीने की होती है। ये शाल अम्लीकार भी होते है। इसके लिए बढिया पश्मीने के टुकड़े नक्शे के मुताबिक काट लिये जाते है और फिर इन पर बेल बूटे काढ दिये जाते है। अम्लीकार और तीलीकार शालो मे इतनी समानता होती है कि इनमें से एक दूसरे को अलग करना कठिन होता है[२५]।

(४) ततुविच्छिन्न[२६]—टीकाकार ने इसकी परिभाषा दी है—अनुतविसृष्टैः ततुभिः

२२—जार्ज वाट, इडियन आर्ट एट देहली, १९०३, पृ० ३८४, कलकत्ता, १९०२
२३-२४—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८९
२५—जार्ज वाट, वही, पृ० ३४४-४५

(१२) सामूली[१४]—इसका समूर गेहू के रग का होता था और इसकी लबाई ३६ अंगुल होती थी ।

ऊदबिलाव के चमड़े

(१३) सातीना[१५]—यह काले रग का होता था।

(१४) नलतूला[१६]—इसका रग नल नाम की घास के रेशो की तरह होता था।

(१५) वृत्रपुच्छ[१७]—चमडा भूरे रग का होता था और उसमे ऊदबिलाव की गोल पूंछ भी रहती थी।

समूरों के चुनाव में कौटिल्य की राय है कि मुलायम चिकने और गज्झिन समूर ही सब से अच्छे होते है[१८] ।

वनो के प्रकरण मे[१९] और तरह के साधारण चमडो का उल्लेख अर्थशास्त्र मे आया ह। इनम गोह, सेरक (एक विशेष प्रकार की गोह), चीता, सूस, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैसा, सुरा गाय और गयाल के चमडे मुख्य थे। इन चमडो का बहुत से कामो मे उपयोग होता था।

कंबल और शाल

इस प्रकरण के आरभ मे भेड के ऊन से बने कबल और शालो का वर्णन दिया गया हं। भेंड के ऊन से बने शाल (आविक) सफेद, गहरे लाल (शुद्धरक्त) या मिश्रित लाल (पक्षरक्त) रग के होते थे[२०] ।

अलकार और कारीगरी के हिसाब से अर्थशास्त्र में शालो का अच्छा वर्णन आया हैं। शालो पर सुईकारी और अमलकारी रीति से अलकार बनाने के निम्न लिखित तरीके दिये गये है—

(१) खचित[२१]—टीका में इस कारीगरी का अर्थ दिया हुआ है—

पर काफी प्रकाश पड़ता है, नीलकठ शास्त्री, आई० एच० क्यू(१४), १९३८ (पृ० ३८० इत्यादि)। प्रो पलियो प्राचीन चीनी सबूतो के आधार पर (वी० ई० एफ० ई० ओ०, ४, पृ० १४६) इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि चीन नाम प्रथम त्सिन राजवश से (ई० पू० २४९-२०७) निकला। अर्थशास्त्र के छपने पर विद्वानों में काफी वहस चली और जो विद्वान अर्थशास्त्र को मौर्य काल के वाद रखने के पक्ष में थे उन्होने अपने मत के पक्ष में चीनपट्ट का उल्लेख किया है। याकोवी और लाउफर इस सिद्धान्त को नही मानते। प्रो० शास्त्री ने कुछ चीनी प्रमाण दे कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कम से कम ई० पू० दूसरी शताव्दी में चीन और भारत में सवध था ।

१४—१८—ग० शा० १, पृ० १९२
१९—ग० शा० १, पृ० २४८, शा० शा० पृ० ११९
२०—ग० शा० १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८९
२१—वही

सूचिवान कर्म निष्पादितम्—सुइकारी और बुनाई से बना हुआ। इस संबंध मे मैं पाठको का ध्यान, कश्मीर की पुरानी शाल बीनने की पद्धति की ओर आकर्षित करना चाहता हूं क्योकि अर्थशास्त्र में शाल विनने की पद्धति और आधुनिक कश्मीर मे शाल विनने की पद्धति प्राय. एक सी है। कश्मीर मे शाल बुनने के दो तरीके है तीली या कनीकार और अम्लीकार। तीलीकार में नक्काशिया करघे पर बुन ली जाती है। सुईकारी में बेल बूटियां सूई से काढी जाती है। तात्पर्य यह है कि एक में बेल बूटिया बुनी जाती है और दूसरी में काढ़ी जाती है। लेकिन वास्तव में करघे पर फूल पत्तिया केवल बहुत ही महगे जामेवारो पर बनती है, और उनमे भी थोड़ी बहुत कढ़ाई सूई की करनी ही पडती है। सत्य तो यह है कि कश्मीरी शाल कनीकार और अम्लीकार के सयोग से बनते है, केवल एक ही पद्धति से बने शाल बहुत कम मिलते है[२२]। अर्थशास्त्र में वर्णित खचित शाल में फूल पत्तिया या और अलकार बुने अथवा काढे भी जाते थे। इसलिए प्राचीन खचित पद्धति आधुनिक कनीकार और अम्लीकार के मेल की द्योतक थी।

(२) वानचित्र[२३]—टीका में इसका अर्थ दिया हुआ है, 'वान कर्मणाकृत वैचित्र्यम्' 'करघे पर ही अलंकार बुनना'। इसमे कोई सदेह नही कि वानचित्र आधुनिक तिली या कनीकार पद्धति का ही प्राचीन संस्कृत नाम है।

(३) खडसघात्य[२४]—जुडे हुए टुकड़ो पर बना शाल। टीका में दूसरी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—खचितानां उतानां वा बहूनां खडाना संघातेन निष्पादितम्—'बिने हुए अथवा काढे हुए टुकडो को जोड कर बना हुआ शाल, खडसघात्य का यह वर्णन कश्मीरी पट्टीदार रूमालो के वर्णन से बहुत मिलता है। इस पद्धति में जब अलकार करघे पर बिनने होते है तब कई १२ से १८ इच चौडे टुकडे ले लिए जाते है और उन पर फूल पत्तियो की नक्काशिया बुन दी जाती है। इन पट्टियो को मनचाहे नाप में काट लेते है और फिर जोड कर एक पूरी नक्काशी का रूप दे देते है और रूमाल के बीच में इसे साट देते है। किनारे की पट्टिया रेशमी होती है जिनमें बहुधा एक ताना पश्मीने का होता है। ये पट्टिया भारी और मजबूत होती है। शाल की रफल बहुत बढ़िया पश्मीने की होती है। ये शाल अम्लीकार भी होते है। इसके लिए बढिया पश्मीने के टुकडे नक्शे के मुताबिक काट लिये जाते है और फिर इन पर बेल बूटे काढ़ दिये जाते है। अम्लीकार और तीलीकार शालो में इतनी समानता होती है कि इनमें से एक दूसरे को अलग करना कठिन होता है[२५]।

(४) ततुविच्छिन्न[२६]—टीकाकार ने इसकी परिभाषा दी है—अनुतविसृष्टै ततुभि.

२२—जार्ज वाट्, इडियन आर्ट एट देहली, १९०३, पृ० ३४४, कलकत्ता, १९०२
२३-२४—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८९
२५—जार्ज वाट्, वही, पृ० ३४४-४५

मध्ये कृतविच्छेद्य जालकोपयोगि च'—'बिना बुने किनारे को बाध कर जाली बनाना।' लगता है वहा शाल के जालीदार झालर की ओर सकेत है । जाली अनबुने किनारे को बाध कर बनायी जाती है ।

दस तरह के ऊनी कपडे

इनमें विशेषकर पशुओ के बिछाने के आस्तरणो का उल्लेख है । कबल, केचलक, वारबाण भी ऊनी होते थे ।

१—कबल[२७]—कबल अथवा और तरह के ऊनी कपडो के लिए एक साधारण शब्द।

२—केचलक[२८]—अर्थशास्त्र की टीका में इसे कुचेलक भी पढा गया है। श्री शामा शास्त्री ने कौचपक पाठ ठीक माना है। उनके अनुसार यह वस्त्र ग्वालो का कबल था। शायद इसकी घोघी बना कर वे पहनते थे । गणपति शास्त्री की टीका में इसका अर्थ वन्य शिरस्त्राण अर्थात् जगलियो के सिर ढाकने का वस्त्र किया है ।

३—कलमितिका[२९]—इस शब्द के पाठभेद कुलमितिका और कथमितिका भी है। गणपति शास्त्री इसका अर्थ गजास्तरण करते है । पर इस अर्थ तक वे कैसे पहुचे यह कहना कठिन है । शायद कुथ और कुल या कल में समानता मान लेने से यह भ्रम हुआ हो । अगर यह अर्थ ठीक है तो क(कु)लमितिका का शुद्ध पाठ कुथ होना चाहिए। इस दृष्टि से शामा शास्त्री का दिया हुआ कथमितिका शुद्ध पाठ के बहुत पास है । शायद ठीक पाठ कुथमितिका था जिसके अर्थ होते है ठीक नाप वाला गजास्तरण। लेकिन अगर कल-कुल पाठ हो ठीक मान लिया जाय तो इस शब्द की समानता फारसी कुलाह से की जा सकती है जिसके अर्थ टोपी होते है और इसी अर्थ में शामा शास्त्री द्वारा उल्लिखित टीकाकार ने इस शब्द के अर्थ किये है।

४—सौमितिका[३०]—शामा शास्त्री वाली टीका ने इसे बैल की पीठ पर बिछाने वाला एक आस्तरण माना है, लेकिन गणपति शास्त्री की टीका मे इसका अर्थ दिया है 'कृष्णवर्णा गजपर्याणोपर्यास्तरणम्' अर्थात हाथी के हौदे पर बिछाने वाला आस्तरण ।

५—तुरगास्तरण[३१]—घोडे की जीन पर बिछाने वाला आस्तरण।

६—वर्णक[३२]—शामा शास्त्री की टीका मे इस शब्द का अर्थ रगीन कबल दिया हुआ है।

२६-२८—गणपति शास्त्री, वही, १, पृ० १९३

२९—ग० शा०, १, पृ० १९३, शा० शा० पृ० ८५, फु० नो० ५

३०—शा० शा०, पृ० ८६, फु० नो० ६, ग० शा०, १, पृ० १९३

३१—वही, फु० नो० ७

३२—वही, फु० नो० ८

७—तलिच्छक[33]—शामा शास्त्री की टीका में इसका अर्थ कवल या पलगपोश दिया हुआ है ।

८—वारवाण[34]—शामा शास्त्री की टीका मे इसका अर्थ कोट दिया हुआ है ।

९—परिस्तोम[35]—शामा शास्त्री की टीका मे इसका अर्थ एक वडा कवल है । गणपति शास्त्री की टीका मे इस शब्द का विस्तारपूर्वक अर्थ दिया हुआ है। 'कवलभेदो विस्तारचित्र यो विस्तृतवदवभासस्ते निर्माणवैचित्र्याद् स इति व्याचक्षते, कुथ इति त्वेके' 'नक्काशीदार वडा कवल, निर्माण वैचित्र्य से वडा लगने वाला कवल, कोई इसे कुथ भी कहता है।' लगता है कि परिस्तोम का व्यवहार भूल के लिए होता था ।

(१०) समतभद्रक[36]—शामा शास्त्री की टीका के अनुसार यह हाथी के पीठ पर डाले जाने वाला कोई आस्तरण विशेष था । गणपति शास्त्री अपनी टीका में इस शब्द का अर्थ करते है समतभद्रक सन्नाहपट्ट, गजादिघनत्राण इत्यपरे—'समतभद्र रुईदार वख्तर है, दूसरो के अनुसार हाथी की जांघो की रक्षा के लिए एक विशेप वस्त्र' ।

उपरोक्त दस तरह के आस्तरणो को आविक कहा गया है जिससे पता चलता है कि वे भेड के ऊन मे वनते थे । कौटिल्य के अनुसार अच्छे कवल चिकने सूक्ष्म और मुलायम होते थे[37] ।

नैपाल देश में बने ऊनी कपड़े[38] (नैपालकम्)

(१) भिङ्गिसी—यह कवल आठ टुकडो को मिलाकर वनता था (अप्टप्लोति सघात्या)। इसका रग काला होता था और यह बरसाती (वर्षवारण) की तरह काम देता था ।

(२) अपसारक—गणपति शास्त्री की टीका मे इसे काण्डपट कहा गया है जिससे पता चलता है कि आधुनिक पट्टी की तरह यह कोई ऊनी कपड़ा रहा हो ।

जगली जानवरो के वालो से वने हुए कपड़े[39]—यहां पर मृग शब्द से ठीक ठीक क्या तात्पर्य है यह नही कहा जा सकता । क्या इसका तात्पर्य हरिन के वालो अथवा ऐसे ही

३३—वही, फु० नो० ९

३४—वही, फु० नो० १०

३५—वही, फु० नो० ११

३६—वही, फु० नो० १२

३७—ग० शा०, १, पृ० १९३

३८—शा० शा० पृ० ९०, ग० शा० १, पृ० १९३

३९—शा० शा० पृ० ९०, ग० शा० १, पृ० १९४

और किसी जगली जानवरो के बालों से है? जो भी हो इतना तो निश्चित सा है कि जगली पशुओ के वाल से अब ऊनी कपडे नही बनते।

पाजामा, चादर, गद्दे इत्यादि

(१) सपुटिका[४०]—गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसके अर्थ होते है —सपुटिका जघात्राणा सुक्थणाभिधानमिति क्वचिट्टीकादर्शे लिखित, सन्थनमित्यन्यत्र लिखित दृष्यते—'सपुटक जघो की रक्षा के लिए एक वस्त्र विशेष होता था, कोई कोई टीकाकार इसे सुथना या सथन मानते हैं।' यह ध्यान देने योग्य बात है कि पाजामे के लिए आज दिन भी सुथना (सस्कृत, सूत्रनद्ध) शव्द का प्रयोग होता है।

(२) चतुरश्रिका[४१]—गणपति शास्त्री की टीका इसका अर्थ देती है—चतुरश्रिका दशारहिता नवागुलचिन्हित कोणा—बिना किनारे वाली चादर जिसमें नौ अगुल नाप के कोनों पर काम किया होता था।

(३) लबरा[४२]—एक विशेष प्रकार की चादर (प्रच्छदपट विशेष.)।

(४) कटवानक[४३]—गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार इसकी व्याख्या है—कटवा.क स एवं स्थूलसूत्रो भाष्यक तद्देशीयानां प्रसिद्ध इति स्वामी—'कटवानक मोटे सूत से वनी एक चादर है जिसे देशी भाषा में भाष्यक कहते है, ऐसा स्वामी नाम के टीकाकार का कथन है'।

(५) प्रावरक[४४]—गणपति शास्त्री की टीका मे इस शव्द की व्याख्या है—पूर्वोक्त एवान्यतरतो दशो रोमा र्तकइति तद्देश प्रसिद्ध इति स्वामी, 'पूर्वोक्त तरह की शायद किनारे वाली चादर, 'स्वामी का कथन है कि देशी में इसे रोमावर्तक कहते थे।'

(६) सत्तलिका[४५]—शामा शास्त्री इसका अर्थ कालीन करते है। गणपति शास्त्री के अनुसार इसका अर्थ—तूलिकाख्य आस्तरण विशेपश्च—अर्थात् रुईदार गद्दा है।

दुकूल, क्षौम, पत्रोर्ण, कौशेय तथा सूती कपडे

दुकूल वस्त्र—दुकूल एकजगह वग देश में पैदा हुई रुई के लिए व्यवहार मे आया है[४६] गो कि और जगह इसका अर्थ दुकूल वृक्ष की छालो के रेशे से वना वस्त्र है। अर्थशास्त्र से हमे दुकूल के वारे मे निम्नलिखित वातो का पता चलता है[४७]।

४०—ग० शा०, १, पृ० १९४

४१-४५—ग० शा०, १, पृ० १९४

४६—आचाराग सूत्र, १, ७, ५, १—टीकाकार कहता है गौडविपय विशिष्टकार्पासिक

४७—ग० शा०, १, पृ० १९४

दुकूल से कपड़ा बंगाल मे बनता था (वाङ्गक)। यह वस्त्र सफेद और मुलायम होता था। पौंड्रदेश[४८] मे बने दुकूल वस्त्र नीले और चिकने होते थे और सुवर्णकुडया[४९] मे बने दुकूल ललाई लिए होते थे। निम्नलिखित तरीको से दुकूल बिना जाता था—

१. मणिस्निग्धोदकवान—पहले सूत में (साधनद्रव्यं) नर्मी देकर फिर उसपर घोटे (?) से पालिश करते थे और इसके बाद बुनते थे।

२. चतुरस्रकवान—इसकी बुनावट बराबर होती और कपड़ा बिना किसी रग के होता था।

३. व्यामिश्रवान—सूत और रेशम मिलाकर बुना दुकूल। इस शब्द की दूसरी व्याख्या के अनुसार यह कपड़ा रग बिरंगे सूत से बुना जाता था (वर्णान्तरासंसृष्ट)।

बुनावट के अनुसार कपड़ों के निम्नलिखित भेद होते थे—

(१) एकांशुक—गणपति शास्त्री के अनुसार इसके ताने बाने में एक तार लगता था।

(२) अध्यर्धांशुक—इसमे ताना एक तार का होता था और बाना दो तारो का। बिनावट उलटी भी जा सकती थी।

(३) द्वयंशुक—इसमे ताना बाना दो तार के होते थे (द्विगुणतन्यते द्विगुणमूयते)।

(४) त्र्यंशुक—ताने बाने में तीन तार लगते थे।

क्षौम[५०]—काशी और पुड्र क्षौम के लिए प्रसिद्ध थे। गणपति शास्त्री की टीका के अनुसार दुकूल की तरह क्षौम की किस्में होती थी पर टीकाकार की यह बात ठीक नही है कि क्षौम दुकूल का ही एक बहुत घटिया रूप था।

पत्रोर्ण[५१]—पत्रोर्ण से बने वस्त्रो के नाम भिन्न भिन्न देशो के नाम पर जहा वे बनते थे अवलंबित है। मगध में बना कपड़ा मागधिका पुड्र मे बना पौंड्रक और सुवर्णकुड्या में बना सौवर्णकुड्यका कहलाता था। पत्रोर्ण नाग, लिकुच, बकुल और वट वृक्षो की छालो से निकले रेशे से बनता था। नाग वृक्ष से बने पत्रोर्ण का कपड़ा पीला होता था, लकुच का गेहूए रग का, बकुल का सफेद रग का तथा दूसरे वृक्षो के रेशो से बना कपडा मक्खन के रग का होता था। इन सब मे सुवर्णकुड्या में बना पत्रोर्ण सब से अधिक अच्छा होता था।

रेशमी कपड़े[५२]—अर्थशास्त्र मे दो तरह के रेशमी कपड़ो का वर्णन है यथा—

४८—आधुनिक महास्थान से प्राचीन पौंड्रवर्धन की समानता मानी जाती है एपि० इंडि० २१, पृ० ८८

४९—सुवर्णकुड्या की पहचान सिल्वा लेवो चीनी किन-लिन से करते है जो फ़ुनान में दो हजार ली दूरी पर एक खाड़ी पर स्थित था। इस तरह यह देश मलयद्वीप पुंज में पड़ता है, एतूद आशियातीक, भा० २, पृ० ३६।

५०-५२—ना० सा०, १, पृ० १९५

१—कौशेय—टीका के अनुसार कोशकार देश मे पैदा हुए रेशम से बना वस्त्र।

२—चीनपट्ट—चीन देश मे बना रेशमी कपडा। टीका के अनुसार रेशमी कपडो के रग पत्रोर्ण से बने कपडो के रग जैसे होते थे।

सूती वस्त्र[५६]—अर्थशास्त्र मे निम्नलिखित प्रकार के सूती वस्त्रो का उल्लेख है। इन सूती कपडो के नाम भिन्न भिन्न देशो के नाम पर जहा वे बुने जाते थे पडे।

(१) माधुर—टीका का कहना है कि यह कपडा पाड्यो की राजधानी मधुरा (आधुनिक मदुरा) मे बनता था।

(२) आपरातक—आधुनिक कोकण का बना कपडा।

(३) कलिगक—कलिग देश मे बना कपडा। तामिल साहित्य से भी पता चलता है कि कलिग के नाग बुनकर बहुत अच्छा कपडा बनाते थे ।

(४) काशिक—काशि जनपद मे बना सूती कपडा। जातको और बौद्ध साहित्य में काशिकवस्त्र के बहुत से उल्लेख आये है लेकिन प्राय सब अनुवादको ने इसे रेशमी वस्त्र माना है । अर्थशास्त्र से यह बात निश्चित हो जाती है कि काशी अपने क्षौम और सूती वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध थी न कि रेशमी वस्त्रो के लिए ।

(५) वागक—पूर्वी बगाल मे बना सूती कपडा। अर्थशास्त्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूर्वी बगाल मे दुकूल और कपास दोनो से कपडे बनते थे ।

(६) वात्सक—वत्सदेश (इलाहाबाद के आसपास) का बना सूती कपडा ।

(७) माहिषक[५४]—महिषदेश का बना सूती कपडा। टीकाकार के अनुसार माहिषक कुतल देश की राजधानी थी ।

वस्त्रो के सबध मे कोषाध्यक्ष के कर्तव्य तथा राजकीय कारखाने

सब तरह के चमडो, समूरो, ऊनी, सूती, रेशमी और रेशो से बने कपडो के वर्णन के बाद कौटिल्य कोषाध्यक्ष के, जिसके अधिकार मे कपडे रहते थे, कर्तव्यो पर प्रकाश डालता है। कौटिल्य के अनुसार कोषाध्यक्ष को भिन्न भिन्न ऋतुओ और अवसरो पर पहने जाने वाले (देशकालपरिभोग) कपडो का तथा कीडे मकोडो और चूहो से उनकी रक्षा का ज्ञान होना आवश्यक था।[५५]

५३—वही

५४—वही, नर्मदा के किनारे महेसर से माहिषक की पहचान की जाती है।

५५—ग० शा०, १, पृ० १६६

हम ऊपर देख आये है कि इस देश के भिन्न भिन्न भागो में कौन कौन से कपड़े मौर्य काल में वनते थे । इन कपडो के सिवाय राज्य का निज का बुनने का कारखाना सूत्राध्यक्ष के जिम्मे होता था । वह कारखाने में अच्छे सूत कातने वाले, वर्म वनाने वाले, कपडे और रस्सिया वनाने वाले कारीगर रखता था । विधवाएँ, अपाहिज, लडकियाँ, भिखमगिने, वृद्धा वेश्याए, जुर्माना अदा करने के लिए काम करती हुई स्त्रिया, वृद्धा राजपरिचारिकाएँ, तया देवदासियां ऊन, वल्क, कपास, तूल, सन और क्षौम कातने के लिए रक्खी जाती थी[५६]।

कातने वालो का पारिश्रमिक उनके सूत की अच्छाई पर निर्भर होता था। जो कारीगर महीन सूत अच्छी तायदाद मे कात सकते थे उन्हे तेल, हर्रे की टिक्किया और अजन आख और दिमाग को तर रखने के लिए तया दूसरो मे काम करने के उत्साह को वढाने के लिए दी जाती थी । छुट्टी के दिनो में काम करने वाले कतको को विशेप पारिश्रमिक मिलता था साथ ही साथ अच्छे साधन होते हुए भी उपयुक्त परिमाण मे सूत न कातने वाले को पारिश्रमिक काट कर दड भी दिया जाता था[५७]।

राज्य के कारखाने बुनकरो के अलावा कपडा बुनने का काम और दूसरे बुनकरो को भी ठीके पर (कृतकर्मप्रमाण) नियत पारिश्रमिक (कालवेतन) और कारीगरी के अनुसार (फलनिष्पत्तिभि) दिया जाता था । कारीगरो के हस्तलाघव से अवगत होने के लिए अर्थ शास्त्र मे उनसे मित्रता बढ़ाने का भी आदेश है[५८] ।

सुगधित द्रव्य, मालाए तथा और वहुत से उपहार उत्साह वढाने के लिए क्षौम, दुकूल, रेशम (कृमितान) पशमीना (रांकव.) और सूती कपडे विनने वालो को दे दिये जाते थे[५९] ।

वुनाई के कारखाने मे कपडे, आस्तरण तथा परदे (प्रावरण) भी वनते थे[६०] ।

सूती जिरह वस्तर (ककट) वनाने का काम चतुर कारीगरो के सुपुर्द किया जाता था[६१]। जो जन घर से वाहर निकलने मे असमर्थ होते थे यथा प्रोपित विधवा (जिस स्त्री का

५६—ग० शा०, १, पृ० २७६, शा० शा० पृ० १३६

५७—ग० शा०, १, पृ० २७९, शा० शा० पृ० १३६

५८—वही

५९—ग० शा०, १, पृ० २८०, शा० शा०, पृ० १३७

६०—वही

६१—वही

पति विदेश गया हो), अपाहिज तथा वे लडकिया जिन्हें स्वय अपनी जीविका उपार्जित करनी पडती थी उन्हे कताई का काम उनके घर पर ही देने का प्रबध था[६२]।

जो स्त्रिया प्रात काल सूत्रशाला में सूत लेकर हाजिर होतो थी उन्हे कताई की मजदूरी मिल जाती थी। इस आदान-प्रदान को भाडवेतनविनिमय कहते थे। सूत्रशाला मे, उस समय केवल इतनी ही रोशनी होती थी जिससे सूत्राध्यक्ष सूत देख सके। स्त्रियो के देखने या बात करने पर सूत्राध्यक्ष दड का अधिकारी होता था। काम की मजदूरी न देने पर अथवा अधबने काम की मजदूरी देने पर भी सूत्राध्यक्ष दड का भागी होता था।[६३] कारखाने म काम न करने वालो को गहरा दड दिया जाता था। जो स्त्रियाँ मजदूरी लेकर भी काम नही करती थी उनके अँगूठे काट दिये जाते थे। माल-मसाला लेकर भाग जाने वालो को भी यही दड मिलता था[६४]। अपराध के छुटाई बडाई के अनुपात मे बुनकरो की मजदूरी जुरमाने के रूप मे काट ली जाती थी[६५]।

शुल्काध्यक्ष के कर्त्तव्यो के वर्णन के प्रसग में हमे उन वस्त्रो का उल्लेख मिलता है जिन पर मौर्ययुग मे चुगी लगती थी। ये वस्त्र क्षौम, दुकूल और रेशम के बने होते थे। इनके सिवाय दुकूल, क्षौम, आस्तरण, प्रावरण, रेशम (कृमिजात), ऊनी कबल और पश्मीना बनाने के साधनो पर भी उनके मूल्य की १/१० से लेकर १/१५ तक चुगी लगती थी[६६]।

वस्त्र, सूत, बल्कल, चमडा और कपास पर चुगी उनके मूल्य की १/२० से १/२५ तक होती थी[६७]।

कपडे रगने के लिए रग किशुक, कुसुभ और कुकुम से बनते थे। गणपति शास्त्री की टीका मे इन पुष्पो को वस्त्रादिरजनसाधन कहा है।[६८]

विदेशो से आने वाले कपडे

हम ऊपर कह आए है कि मौर्य काल मे भारतवर्ष मे वस्त्रो के नाम उनके प्राप्ति स्थान पर भी पड जाते थे। पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे इस बात का कम उल्लेख है कि भारतवर्ष की आधुनिक सीमा के बाहर से यहाँ कौन से कपडे आते थे। महाभारत के सभा पर्व से इस प्रश्न पर काफी प्रकाश पडता है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर

६२—वही

६३—शा० शा० १, पृ० २८०-८१

६४-६५—ग० शा० १, पृ० २८१, शा० शा०, पृ० १३६

६६-६७—ग० शा० १, पृ० २७६-२७७, शा० शा० पृ० १३५

६८—ग० शा० १, पृ० २४७

भारतवर्ष के अनेक गणतंत्र और राजे तथा उसके सीमा पर वसने वाली जातियां उपहार लेकर आयी। इन उपायनो मे उन प्रदेशो के बने वस्त्र भी थे जिनसे पता चलता है कि ई० पू० भारत मे विदेशो से अच्छे से अच्छे कपडे आते थे और भारत, चीन और अफगानिस्तान का व्यापारिक सबंध वहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। अब हमे देखना चाहिए कि किन किन देशो से यहा वस्त्र आते थे।

कंबोज देश के कपड़े

प्राचीन कबोज की पहचान सोवियट रूस मे स्थित ताजिकिस्तान से की जाती है। यहा से भेड के ऊन और लोमडी के रोए से वने और सुनहले काम किये हुए वस्त्र (ऐडाश्चैलान् वार्षदशान्जातारूपपरिष्कृतान्)[६९], ऊनी चादरे और चमडे (प्रावाराजिनमुख्याश्च)[७०] वेशकीमती दुशाले (पराध्यांनपिकवलान्)[७१] और कदलीमृग की खाले[७२] (कदली मृगमोकानि), राजसूय यज्ञ में आयी। कदलीमृग का उल्लेख कौटिल्य ने किया है।

परिसिंधु देश के कपड़े—वलूचिस्तान के वाशिंदे राजसूय में अपने देश से कवल और वकरे और भेडो की खाले लाये[७३]।

वाह्लीक और चीन के बने वस्त्र[७४]

ये वस्त्र ठीक नाप के, खुशनुमा रग वाले और स्पर्श करने मे मुलायम होते थे (प्रमाण रागस्पर्शाढ्य)। उपरोक्त देशो से भेड के ऊन, पश्म (राकव), रेशम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के वने कपडे भी आये। यहा राकव शब्द की व्याख्या आवश्यक है। कोशो में[७५] रकु का अर्थ एक पशु विशेष मिलता है। लेकिन यह पशु कहा होता था इस संबध की जानकारी कोशकारो को नही थी। खोज करने से पता चलता है 'रकु' पामीर पर रहने वाले रग नामके वकरे का संस्कृत रूप है। इसके पश्म से वहुत ही अच्छी चादरे वनती है[७६]। महाभारत[७७] के एक और उल्लेख से पता चलता है रकु के पश्म से नमदे भी (राकवंकट) वनते थे।

चीन के वने रेशमी कपडे

इस काल मे भारतीय चीनी रेशम के वस्त्र मे भी अवगत हो चुके थे। इनने प्राचीन

६९-७०—सभापर्व, ४७, ३

७१-७२—सभापर्व, ४५, १९

७३—सभापर्व, ४७, ११

७४—सभापर्व, ४७, २२

७५—अमरकोश, २, ६, १११

७६—वुड, ए जर्नी टुदी सोर्स ऑफ आक्सस, इन्ट्रोडक्शन, पृ० ५७, न्यू एडिशन १८७२

७७—महाभारत, ३, २२५, ६

काल में चीन के रेशमी कपडे भारत मे आने से हमे आश्चर्य न होना चाहिए । मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह से मिला हुआ एक रेशमी थान जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी मे एक पुरजा लगा हुआ था इस बात का द्योतक है कि चीनी रेशमी कपडे की खोज मे भारतीय व्यापारी चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल में पहुच चुके थे[७८] ।

मध्य एशिया और अफगानिस्तान के दूसरे कपडे

उपरोक्त देशो से उपायनरूप मे नमदे (कुट्टीकृत)[७९],कमल के रग के हजारो ऊनी कपडे, मुलायम रेशमी कपडे तथा मेमनो की खालें भी आयी। आज दिन भी पूर्वी अफगानिस्तान की मेमनो की खालें मशहूर है। चीनी चमडे और समूरो की ख्याति ईसा की पहिली शताब्दी तक थी। पेरिप्लस[८०] के अनुसार सिंध नदीपर बार्बिकन नाम के बदरगाह से चीनी चमडे और समूर बाहर भेजे जाते थे। प्लिनी[८१] के अनुसार चीन के रगीन चमडे काफी कीमती होते थे और आराइश के काम में इनका काफी उपयोग होता था । कबलो का रग कमल जैसा कहने से प्रतीत होता है कि लेखक का सकेत शायद ऊपरी स्वात के बने कबलो से है । महावणिज-जातक मे[८२] उड्डीयान के बने कबल काफी कीमती माने गये है। आज दिन भी तोरवाल में ठोक कर बिने चटक रग कबल सीमाप्रान्त और पजाब में स्वाती कबल नाम मे मशहूर है ।[८३]

वंग (पूर्वी बङ्गाल), कलिग (आधुनिक ओडीसा मे वैतरणी नदी के दक्षिण विजगापतन तक फैला हुआ प्रदेश), ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) और पुड्र (मालदह, पुर्निया, दिनाजपुर और राजशाही के कुछ भाग) के बने कपड़े ।

दुकूल[८४]—शायद रोमन लेखको का वाइसास ही दुकूल था[८५] ।

कौशिक[८६]—ऐसा पता चलता है कि बहुत प्राचीन काल में भी बगाल मे रेशम पैदा होने लग गया था। रामायण[८७] (कश्मीरी पाठ) में कोशकार देश का उल्लेख है। टीकाकार

७८—सर ऑरल स्टाइन, एशिया मेजर, हर्थ एनिवर्सरी वॉलुम १९२३, पृ० ३६७-३७२

७९—सभापर्व, ४७, २३

८०—शोफ, दि पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी, ३९, ६

८१—प्लिनी, नेचुरल हिस्ट्री, १२, ३१, ३४, १४५

८२—जातक (४९३), ४, पृ० ३५२

८३—स्टाइन, ऑन अलक्जेंडर्स ट्रैक टु इंडस, पृ० ८९

८४—महाभारत, २।४८।१७

८५—वार्मिंगटन, कामर्स बिटवीन इंडिया एंड रोमन एपायर, पृ० २१२

८६—महाभारत, २।४८।१७

८७—सिल्वं लेवी, जून लि असिमातीक, जनवरी-फरवरी, १९१८, पृ० २१२

राम के मत से इस देश का नाम इसलिए पडा कि वहा रेशम के कोश काफी तादाद में पैदा होते थे। किष्किधाकाड के बगाली पाठ के अनुसार कोशकार देश लौहित्य नदी (ब्रह्मपुत्र) के बाद पडता है और इसलिए इस बात की पूरी सभावना है कि कोशकार देश कही पूर्वी बगाल या आसाम में था।

पत्रोर्ण[८८]—कोश मे इस शब्द का अर्थ रेशमी या सूती कपड़ा दिया हुआ है। अगर पत्रोर्ण का अर्थ सूती कपड़ा ठीक है तो पेरिप्लस का यह कथन ठीक है कि पहली सदी में गेंजेटिक नाम की सब से अच्छी मलमल ढाका के आसपास बनती थी[८९]। पर इसमे शक है कि पत्रोर्ण सूती कपडा था।

कलिग देश के नाग बुनकर अपने बढिया कपड़ो के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी ख्याति इतनी बढी हुई थी कि तामिल में कलिग शब्द कपड़े का पर्यायवाची बन गया[९०]।

प्रावर[९१]—इस शब्द का प्रयोग दुपट्टे अथवा चादर के अर्थ मे होता था। साची के एक लेख[९२] से ऐसा पता चलता है कि दुपट्टे बेचने वालो का (पारिवारिक) अपना स्वतन्त्र व्यवसाय होता था।

यूनानी लेखको के अनुसार भारतीय वेश-भूषा

हम अनेक प्रकार के वस्त्रो का वर्णन अर्थशास्त्र के आधार पर कर आये है, पर उस समय की वेश-भूषा क्या थी इसका उल्लेख हमे यूनानी ऐतिहासिको से मिलता है। एरियन[९३] का कहना है कि भारतवासी सूती कपडे पहनते थे और उनकी धोती आधे पैर तक पहुचती थी। उनके सिर पर पडी चादर उनके कधो को ढकती थी। स्त्रावो[९४] के अनुसार भारतीय क्षौम और कपास के बने सफेद कपडे पहनते थे। भारतीयो के वस्त्र हमेशा सादे नही होते थे इसका पता स्त्रावो के एक दूसरे उल्लेख से, जिसमें कहा गया है कि भारतीयो के वस्त्र सुनहरे काम वाले और रत्नजटित भी होते थे, लगता है।

८८—वही,
८९—शोफ, वही, पृ० ४६
९०—कनकसभाई, दि तामिलस् एट्टीन हड्रड इयर्स एगो, पृ० ४५
९१—महाभारत, २।४८।१७
९२—मार्शल, साची, १, पृ० ३१३
९३—इडिका, १६
९४—जिगोग्राफी, १५।१।७१

पाँचवाँ अध्याय

शुगयुग की वेश-भूषा

(ई० पू० दूसरी सदी)

मौर्ययुग के अत और शुगयुग के आरभिक वेश-विन्यास पर परखम और बरोदा (मथुरा म्यूजियम) से मिली यक्षमूर्तियो और दीदरगज की यक्षिणी मूर्ति से काफी प्रकाश पडता है । इन मूर्तियो का समय विवादास्पद है पर ऐसा माना जाता है कि शायद ये मूर्तिया मौर्य युग के अतिम चरण अथवा शुग युग के आरभ में बनी हो। ई० पू० पहली दूसरी शताब्दियो की वेश-भूषा पर पूरा प्रकाश भरहुत और साची के अर्धचित्रो से पडता है।

परखम की यक्षमूर्ति (आ० १३)[१] एक धोती पहने है जो आगे चुन्नटदार है। धोती कमरबद से बधी है जिसके दोनो छोर घुटनो पर लटकते दिखलाये गये है। एक दुपट्टा छाती पर बधा है जिसका फदेदार छोर पेट पर लटक रहा है । बडोदे की यक्ष मूर्ति भी ऐसा ही दुपट्टा पहने दिखलायी गयी है[२] ।

इडियन म्यूजियम की यक्षमूर्तिया जिन्हे श्री मजूमदार ने[३] मौर्यकाल की ठहराया है परखम यक्ष जैसा ही कपडा पहने है। धोती फदेदार कमरबद से बधी है जिसके दो फूदनेदार छोर सामने लटक रहे है। पिछली ओर धोती जमीन तक पहुचती है लेकिन अगली ओर नगे पैर दिखलाने के लिए वह जरा उठी हुई दिखलायी गयी है । एक चौडा दुपट्टा (वैकक्ष्य) बाए कधे से हो कर दाहिने चूतर तक पहुचता है। ककण के पास यह फदेदार है और पीछे लहराता हुआ है (आ० १४)।

उपरोक्त यक्ष मूर्तिया पगडी नही पहने है लेकिन इसी काल का सारनाथ से मिला एक शिर मुगलो जैसी अटपटी पगडी पहने है (आ० १५)[४] ।

मौर्य युग के अतिम युग मे स्त्रियो की वेश-भूषा का पता बेसनगर और दीदारगज से मिली यक्षिणियो की मूर्तियो से लगता है। दीदारगज की यक्षी एडियो तक पहुचती एक

१-२—कुमारस्वामी, हिस्ट्री ऑफ इडियन एड इडोनेशियन आर्ट, प्ले० ५, १५

३—मजूमदार, ए गाइड टु दि स्कल्पचर्स इन इडियन म्यूजियम, पृ० ६

४—कुमारस्वामी, वही, प्ले० ६, चि० १८

साडी, जिस पर एक पंचलडी करधनी है पहने है। साडी मे खोसे हुए पटके का जिसे बौद्ध साहित्य मे फासुका कहा गया है, एक छोर फदेदार है। एक वटा हुआ दुपट्टा लटक रहा है (आ० १६)। बेसनगर[५] की यक्षिणीमूर्ति घुटने के जरा नीचे पहुचती हुई साड़ी और उसके ऊपर एक पचलडी करधनी और फदेदार कमरवद जिसका एक फदा नीचे लटक रहा है, पहने हुए है। साडी मे खुसे हुए पटके में चूनन पडी हुई है[६] (आ० १७)।

शुगयुग में पुरुषो की वेश-भूषा

भरहुत (ई० पू० १३५-१५०) के अर्ध चित्रो मे हमे तत्कालीन भारतीय वेश-भूषा का एक अच्छा चित्र मिलता है। आदमी धोती पहनते थे जिसका एक छोर कमर मे लपेट लिया जाता था और लाग पीछे खोस ली जाती थी। भरहुत के अर्धचित्रो मे धोती, घुटनो के जरा नीचे और पैरों के मध्य भाग तक पहुचती दिखलायी गयी है। धोती बिना किसी अलकार के सादी होती थी। धोती के साथ लोग दुपट्टे, कमरवद, पटके और पगडिया भी पहनते थे। नीचे के विवरणो से ई० पू० दूसरी शताब्दी मे भारतीयो की वेश-भूषा स्पष्ट हो जायगी—

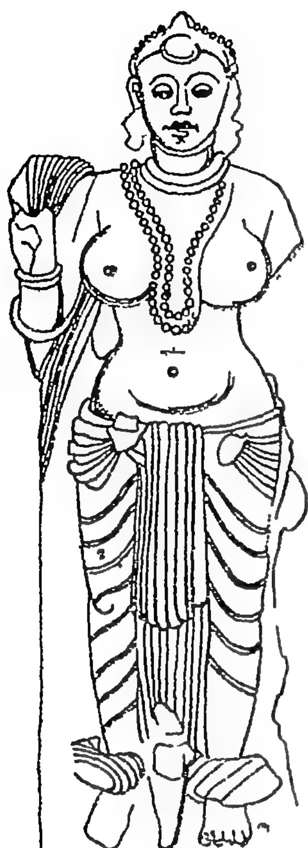
१—कामदार साफा, घुटने के नीचे लटकती हुई चपकी धोती, वटी हुई रस्सियो से बना कमरबद जिसके दोनो छोर लटक रहे है (चुल्लवग मे ऐसे कमरवद को कलावुक कहा गया है), पटका जो पट्टियों पर सिली गुरियो से बना मालूम पडता है, बदन का ऊपरी भाग नगा है, बायें कन्धे पर पडे हुए दुपट्टे का एक छोर पीछे लटक रहा है[७] (आ० १८)।

२—घुटने की नीचे तक लटकती धोती, सकरमुद्धीदार कमरवद जिसके दोनो छोरो में छीरे है, चूननदार एडियो तक लटकता हुआ पटका, दुपट्टा खिसक कर कमर पर आ गया है[८] (आ० १९)।

३—कामदार पगड़ी, दुपट्टा, पट्टी का बना कमरवद, पटका (आ० २०)[९]।

४—पगड़ी, गले मे ढीला दुपट्टा जिसके लटकते हुए छोर तिकोने कटे है, कमरवद के दोनों छोर एक वकसुए से निकलते दिखाये गये[१०] (आ० २१)।

५—वही, प्ले० ५, १७
६—वही, प्ले० ३, २
७—कनिघम, भरहुत, प्ले० २२
८—वही, प्ले० २१
९—वही, प्ले० १८
१०—वही, प्ले० २२, २



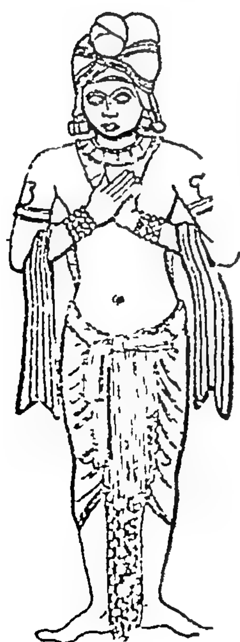
१६



१७



१८

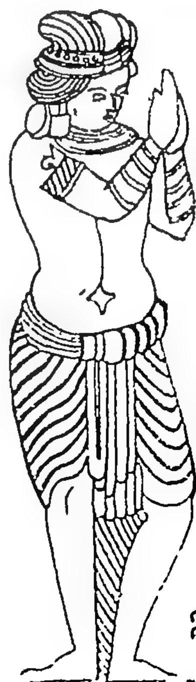




२०



२१



२२

दक्षिण भारत मे पुरुषों की वेश-भूषा

ई० पू० दूसरी सदी में दक्षिण भारत के लोगो की वेश-भूषा मध्यभारत वालो जैसी ही थी केवल उसमे कुछ स्थानिक भिन्नताए अवश्य थी। नीचे लिखे विवरणो मे दक्षिणी पोशाक का पता चल जायगा—

१—अटपटी, पेचीदार पगडी, घुटने तक पहुंचती चुननदार धोती, कमर फेटे मे लिपटा हुआ पटके का कुछ भाग (आ० २२)[११]।

२—यक्ष (अमरावती), धोती, रस्सी का बना कमरबद जिसके दोनो छोरो पर फुदने है कमरपेटी से लिपटा है[१२]।

शुगयुग की पगड़िया

शुग युग में पगडिया दो तरह से बाधी जाती थी। एक मे[१३] (आ० २३) बाल का सिर पर जूडा बाध दिया जाता था और पगडी के दो फेटे मस्तक के ठीक बीच से ले जाकर जूडा ढक दिया जाता था और उसके दोनो छोर खोस दिये जाते थे। भारी पगडी मे पूरा सिर ढक दिया जाता था।

भरहुत के अर्ध चित्रो मे हम निम्न लिखित तरह की पगडिया देख सकते है

१—लट्टूदार साफा, बुदकी और पत्तियो का काम, लट्टू मे बेल बनी है (आ० २४)[१४]।

२—भरभरा साफा जिसमे पेची और झालर है (आ० २५)[१५]।

३—लट्टूदार भारी साफा जिसमे शायद झालर लगी थी (आ० २६)[१६]।

४—लट्टू के ऊपर चुनट, पीछे की ओर उभार (आ० २७)[१७]।

५—अटपटा साफा, ऊपर उठती झालर (आ० २८)[१८]।

६—हलका साफा, बायी ओर की तहे कान तक आ गयी है (आ० २९)[१९]।

७—झालरदार सादा साफा[२०]।

११—बर्जेस, बुद्धिस्ट स्तूप ऑफ अमरावती एड जग्गयपेट, प्ले० ५३

१२—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन मद्रास म्यूजियम, प्ले० १८, १

१३—कनिंघम् भरहुत, प्ले० १५

१४—वही, प्ले० ३३, ३

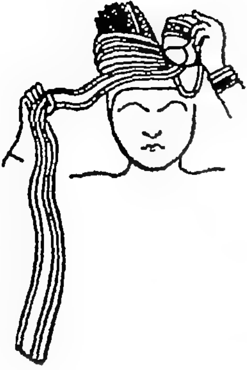
१५—वही, प्ले० ३३, ४

१६—वही, प्ले० २४

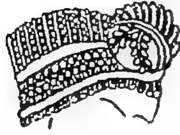
१७—वही, प्ले० २१

१८—वही, प्ले० ५७

१९-२०—वही



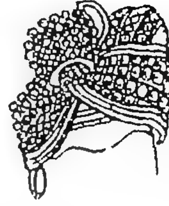
२३



२४



२५



२६



२७



२८



२९



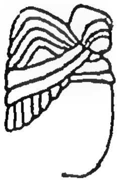
३०



३१



३२



३३



३४



३५



३६



३७



३८



३९



४०



४१



४२

८—अटपटी लट्टूदार पाग जिसपर चौफुलिया वनी है[२१]।

९—छोटा झालरदार साफा, वायी कनपटी के ऊपर तीन पेंच (आ० ३०)[२२]।

१०—अटपटी लट्टूदार पगड़ी (आ० ३१)[२३]।

११—अटपटी पगडी, छोर ऊपर निकला हुआ (आ० ३२)[२४]।

१२—पगडी की झालर कान ढक रही है (आ० ३३)[२५]।

१३—पेंची से सजी चूनरदार पगडी (आ० ३४)[२६]।

१४—कामदार साफा, जिसपर फूल पत्तिया वनी हैं (आ० ३५)[२७]।

१५—कामदार साफे की दूसरी तरह (आ० ३६)[२८]।

१६—आभूषणयुक्त पगड़ी (आ० ३७)[२९]।

१७—झालरदार पगड़ी, एक छोर पंखानुमा है (आ० ३८)[३०]।

१८—लंबोतरा साफा पीछे गरारीदार अलंकार (आ० ३९)[३१]।

१९—सादे साफे पर वृत्ताकार और पुष्पालकार (आ० ४०)[३२]।

२०—पगडी जिसका ऊपरी भाग पान के आकार का है (आ० ४१)[३३]।

२१—साफा जिसके किनारे पर वेल वनी है (आ० ४२)[३४]।

२२—भारी कामदार साफा (आ० ४३)[३५]।

२१—वही, प्ले० ४८
२२-२३—वही, प्ले० ४४
२४—वही, प्ले० ३४
२५—वही, प्ले० २५, ३
२६—वही
२७—वही, २५, १
२८—वही, प्ले० २४, २
२९—वही, प्ले० २१
३०—वही, प्ले० २०
३१—वही, प्ले० १८
३२—वही, प्ले० १७
३३—वही, प्ले० ३०
३४—वही, प्ले० ३२, ८
३५—वही, प्ले० २२

२३—एक तरफ उभरा कामदार साफा (आ० ४४)[३६]।

२४—चौखूटा साफा जिसके दोनो कोर कान पर आ गये है (आ० ४५)[३७]।

शुगयुग के सिले वस्त्र

यह तो निश्चित है कि शुगयुग मे सिले कपडे पहने जाते थे, लेकिन सिले कपडे इस युग के अर्ध चित्रो मे कम दिखलाये गये है। इसका यह कारण भी हो सकता है कि सिले कपडो से अग ढक देने से उसकी गठन खूबी से नही दिखलायी जा सकती थी। भरहुत के अर्ध चित्रो मे कोटनुमा वस्त्र दो जगह दिखलाया गया है। एक जगह वटवृक्ष की पूजा करते हुए राजा का अनुचर कोट पहने दिखाया गया है[३८]। कोट का छोर गुलाई लिये है और उसका गला, बाहे, मोरिया और किनारे किसी फीते से अलकृत है। कोट के साथ अनुचर धोती और साफा भी पहने है। एक द्वारपाल जिसकी तुलना डा० बरुआ उत्तरापथ के देवता पिहिर से करते है[३९] (आ० ४६) आधी जघा तक पहुचता एक पूरी बाह का कोट पहने है। कोट में दो जगह बद लगे है। गले के बद मे एकहरी सकरमुद्धी और पेट के वद पर दोहरी सकरमुद्धी लगी है। इसका बाल ललाट पर एक चौडी पट्टी से वधा है। धोती से पटका नीचे लटक रहा है। पैरो मे पूरे बूट है। बायी ओर परतले से एक कटार लटक रही है। कम से कम पोशाक से तो यह द्वारपाल गधार का निवासी लगता है।

कुछ शुग कालीन मिट्टी के खिलौनो से यह भी पता चलता है कि उस युग में कोट जैसे कपडे पहनने की चलन किसी न किसी रूप मे थी। भीटा से मिली एक मिट्टी की मनुष्य मूर्ति (आ० ४७)[४०] चुगे की तरह पूरे बाह का एक कोट पहरे है जो सामने से खुला है और जिसमे बाधने के लिए सकरमुद्धी लगी है।

शुग युग मे कचुक पहनने की भी प्रथा थी। साची के स्तूप न० २ पर एक सिह से लडते हुए सिपाही की आकृति है। यह सिपाही आधे बाह का घुटनो तक लटकता कचुक पहने है जो कमरबद से बधा है। इसके सिर पर फुलनेदार टोपी और पैरो मे बूट है (आ० ४८)[४१]। इसी स्तूप के आलबनवाह पर एक मनुष्य चूननदार कचुक पहने दिखाया गया है[४२]।

३६—वही, प्ले० २२

३७—वही, प्ले० २०

३८—बरुआ, भरहुत, २, प्ले० २०

३९—वही, प्ले० ६२, ७१

४०—ए० एस० आर०, १९११-१२, पृ० १-७८, प्ले० २३, १९

४१—कुमारस्वामी, वही, प्ले० १८, ५१

४२—मार्शल, साची, भा० ३, प्ले० ७८, १३ वी

स्त्रियों की वेश-भूषा

भरहुत के अर्धचित्रों में स्त्रियाँ पुरुषों की तरह धोती अथवा साड़ी पहरे दिखलायी गयी हैं। आधुनिक साडी तो एडी तक पहुचती है पर भरहुत के अर्धचित्रों मे शायद ही कभी वह घुटनों के नीचे पहुचती है, इसमे चुनन भी होती है। साडी भारी भरकम करधनी और कमरबद से बधी होती है। इस कमरबद के फूदनेदार किनारे एक ओर लटकते हैं। कमरबद से खुसे दोनो पैरो के बीच मे लटकते पटके पहनने की भी प्रथा थी। पटका साधारणतः लहरियादार होता, पर भारी पटका मनके पिरो कर भी बनता था। स्त्रियो के शरीर का ऊपरी भाग खुला हुआ दिखलाया गया है पर यक्षिणी चदा के दाहिने स्तन के नीचे एक मलमली चद्दर की तह के निशान हैं। उनके सिर कामदार ओढनी से ढके होते थे जो कामदार होती थी। स्त्रिया कभी कभी लीलावश पगडी भी पहन लेती थी।

यक्षिणी चदा की वेश-भूषा (आ० ४९)[४३]

चदा की वेश-भूषा से, शुग युग की एक सभ्रात नारी की वेश-भूषा का पता चलता है। उसकी धोती कमर तक पहुचती है। इस पर खरबुजिया मनको और चौखूटी तख्तियो से बनी एक सतलडी करधनी है। कमरबद फुल्लो और पजको से सजा है और इसके किनारो पर दानेदार बेल बनी है। पटका लहरियादार है। उसके शरीर का ऊपरी भाग अनावृत है पर दाहिने स्तन के नीचे की रेखारिया शायद पतले चादर की द्योतक है, बाए कधे से मोती की बद्धी छाती पर जनेऊ की तरह पडी है। गले मे छलडी तौक है जिसकी पहली लड मे पत्र, अकुश और श्रीवत्स के आकार के टिकरे हैं। दूसरी लड गोल मनको की है। और लडे गोल तथा लबोतरे मनको से बनी है। गले मे स्तनो के बीच लटकती हुई टिकरेदार मोहनमाला है। कानो मे वप्रकुडल (घुमावदार) है तथा माग मे सीममाग। सिर एक झीनी ओढनी से, जिसके दोनो पल्ले एक दूसरे को पार करते है, ढका है। इस ओढनी मे चौडे किनारे हैं जिन पर चौफुलिया और सहरेसा की बेले बनी है। हाथो मे कडे और चूडिया है। चोटी बेल्दार फीते से गुथी है।

यक्षी (आ० ५०)[४४]। इस यक्षी के आकार की कल्पना भी शुग कालीन नारी मूर्ति को लेकर हुई है। यक्षी के कमर मे एक पतली साडी है जिसपर मुद्धीदार कमरबद, करधनी और योगपट्ट है। कमरबद फुल्ले और पजको से सजा है और उसके किनारे बुदकीदार है। उसके छोर पर चौडी छोर है। चौलडी करधनी की प्रत्येक लडियाँ भिन्न है। एक चौखूटी तख्तियो से बनी है, दूसरी मौलसरी के फूल के आकार वाले दानो से, तीसरी खरबूजेदार मनको से

४३—कनिघम, वही

४४—कनिघम, भरहुत, प्ले० ५२


४३


४४


४५


४७


४६


४८


४९

और चौथी गोल मनको से। कमर पर कमनीयता के लिए एक वटा हुआ तिरछा दुपट्टा बाध लिया गया है। पैर में चूड़ियाँ पडी है। दाहिने कधे से होती हुई वद्धी की लडे छाती के आर-पार जाती है। वद्धी खडे और पडे मनको से बनी मालूम पडती है। गले मे चौलडा कठा है। एक दूसरे माला की लटकन खारदार मणियो और त्रिरत्न से बनी है। कानो मे तरतीदार दोहरे कुडल है। हाथ मे कगन और अगुलियो मे अगूठियाँ है। ललाट पर फुल्ले के आकार की टिकुली है। गालो पर पत्रभग बना है। चोटी सहरेमा और मौलसरी के फूलो के अलकारों से सुसज्जित पतले फीते से गुथी है।

यक्षी चूलकोका (आ० ५१)[४५]—इसकी साडी घुटने तक की है। कमर पर गोल तख्तियो की बनी करधनी और मुद्धीदार कमरबद है, जिसके दोनो सिरों पर छोरें है। पटका कड़े खानेदार कपड़े का बना मालूम पडता है। सिर ओढनी मे ढका है।

सुदर्शना यक्षी—सिर पर ओढनी, घुटने के नीचे तक पहुचती धोती, फूलदार पेटी, चूननदार पटका (आ० ५२)[४६]।

यक्षी—सिर पर ओढनी, हाथो पर सरकता दुपट्टा, बटा कमरबद, मनको से बना पटका (आ० ५३)[४७]।

सिरिमा देवता—पजक से सजा कमरबद, सतलडी करधनी, चूननदार करीने से पहनी गयी साडी (आ० ५४)[४८]।

नर्तकी की वेश-भूषा

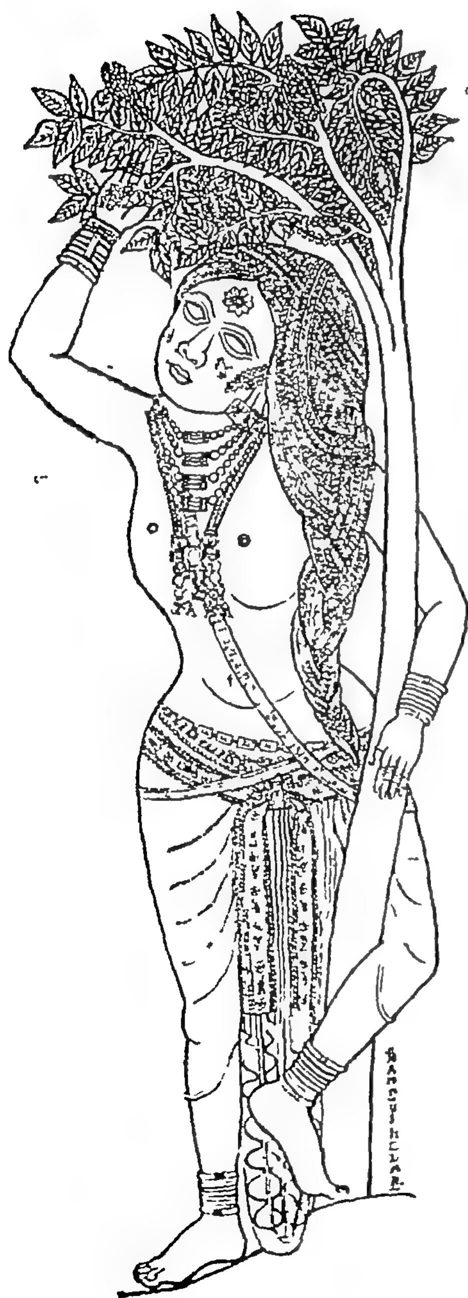
सिर पर साफा, साडी मुर्द्धीदार कमरबद से बधी है (आ० ५५)[४९]।

एक साधारण स्त्री की पोशाक

सादी साड़ी पर कमरबद और करधनी (आ० ५६)[५०]।

क्षुद्रघटिका—कभी कभी स्त्रिया साडी पर घटियो से बनी मेखलाए पहनती थी (आ० ५७)[५१]।

४५—कनिघम, वही, प्ले० २३
४६—वही, प्ले० २३
४७—वही, बटनमारा का खभा
४८—कनिघम, वही, प्ले० ५१, २
४९—वही, प्ले० १५
५०—वही, प्ले० ८
५१—वही, प्ले० ५१



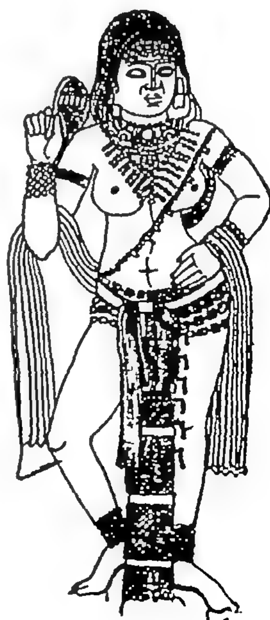
५०



५१



५२



५३

साधुओं की वेश-भूषा

साधु चादर और कोपीन पहनते थे (आ० ५८)[५२]। उनकी स्त्रिया चादर, साडी और एक शिरोवस्त्र पहनती थी (आ० ५९)[५३]।

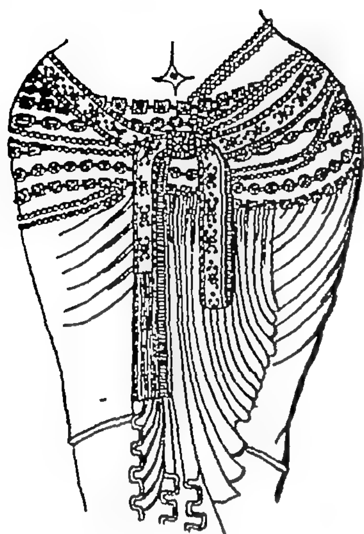
स्त्रियों के शिरोवस्त्र

भरहुत के एक अर्धचित्र में दो स्त्रिया रूमालो से अपने सिर ढके है (आ० ६०-६१) एक तीसरी स्त्री पगड़ी पहरे है (आ० ६२)[५४]।

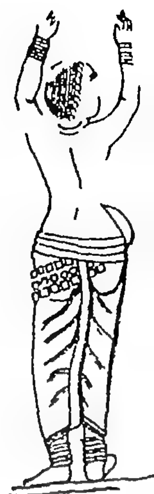
शुंगयुग मे दक्षिणी स्त्रियों की वेश-भूषा

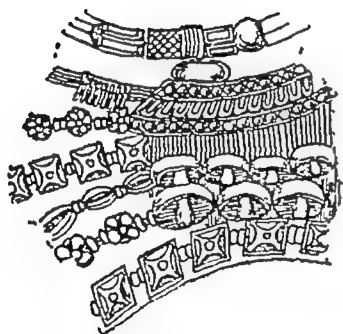
दक्षिण भारत मे एक उच्च कुलीन नारी की ई० पू० दूसरी सदी की वेश-भूषा का पता हमें जगय्यपेट (गुटूर जिला) से मिली एक यक्षी की मूर्ति से मिलता है[५५]। साडी केवल घुटने तक पहुंचती है। पैरो मे भारी पाजेब है। करधनी लंबोतरे और चिपटे मनको के दो लडो से बनी है। कमरबंद दो वक्सुओ के बीच से ऐसे निकाला गया है जिससे एक ओर तो फदेदार छोर लटक रहा है और दूसरी ओर कमरबद के दोनो छट्टे सिरे जिनमें लबी छोरें पडी हुई है। गले मे केवल तौक है और कानो मे कुडल। चारखानेदार ओढनी से सिर ढका है। इसके किनारे पर खानो मे फुल्ले बने है जो एक दूसरे से बेड़ी धारियो से अलग होते है (आ० ६३)।

५२—वही, प्ले० ५१, १
५३—वही, प्ले० ५१, ५
५४—वही, प्ले० १५
५५—बर्जेस, दि बुद्धिस्ट स्तूप्स ऑफ अमरावती एंड जगय्यपेट, प्ले० ५


५४


५५

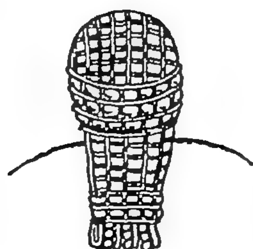

५६


५७


५८


५९


६०


६१


६२

छठाँ अध्याय

सातवाहन युग की वेश-भूषा

(ई० पू० प्रथम शताब्दी)

सातवाहन युग (करीब ई० पू० पहली शताब्दी) की वेश-भूषा शुग युग की वेश-भूषा से बहुत कुछ मिलती है, लेकिन उसमे अतर भी आ जाता है। उदाहरणार्थ पुरुषो की वेश-भूषा ही लेलीजिए। वे घुटने तक की धोती तो पहनते है पर उनके पहरावे मे भारी भरकम कमरबद और पर्यस्तको का अभाव सा है। सातवाहन युग मे पगडियाँ भी सादे कपडे की होती थी और उन्हे लोग अनेक तरह से बाधते थे। दुपट्टे ओढने की भी प्रथा थी। सैनिक, अनुचर और विदेशी सिले कपडे भी कभी कभी पहनते थे। स्त्रिया साडी और ओढनी पहनती थी। ओढनी सजाने के बहुत से तरीके थे। साची के अर्धचित्रो मे भारतीय वेश-भूषा के अध्ययन से यह पता लगता है कि भारी भरकम कपडो की ओर लोगो का सुझाव कम हो गया था पर साथ ही साथ लोग सादे कपड़े बडे चाव से और अनेक ढगो से सजा कर पहनते थे। इस युग में दक्षिणी वेश-भूषा कुछ टीमटामदार होती थी। साफे भारी भरकम और आभूषणो से सजे होते थे और धोतिया भी भारी फेटे वाली होती थी। सातवाहन युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए हमें प्रचुर सामग्री साची भाजा के अर्धचित्रो और अजता के ९-१० नबर की गुफाओ के भित्ति चित्रो से मिलती है। मथुरा और कौशाबी से मिली मट्टी की मूर्तियो से भी तत्कालीन वेश-भूषा पर प्रकाश पडता है। मथुरा, कौशाबी, बसाढ और भीटा में इस युग की मट्टी की स्त्री मूर्तिया लबे कचुक और गहने पहने हुए मिलती है। इनकी वेश-भूषा मे एक विदेशीपन झलकता है और यह सभव है कि उस पर शको का प्रभाव पडा हो।

साची के अर्धचित्रों में पुरुषो की वेश-भूषा

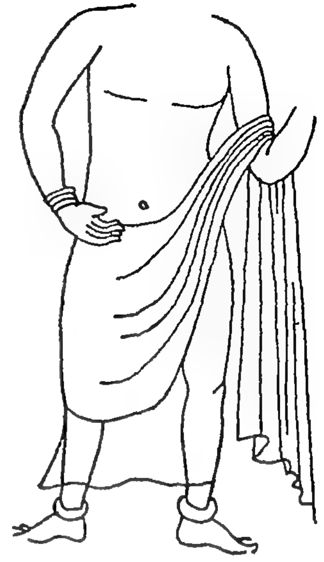
साची के अर्धचित्रो मे आदमी धोती पहने दिखाये गये है जो घुटनो के कुछ नीचे पहुचती है और जिसमें लाग और पटका होते है (आ० ६४)[1]। कभी कभी धोती का एक हिस्सा कमर से लपेट लिया जाता था और दूसरा हिस्सा बायी कुहनी पर होता हुआ नीचे लटका रहता था (आ० ६५)[2]। धोती कमरबद मे बधी रहती थी। शरीर का ऊपरी भाग दुपट्टे के सिवा अनावृत होता था। दुपट्टा निम्नलिखित तरीको से पहना जाता था. (१) कधो से होता हुआ यह काखो के तले से निकाल दिया जाता था (आ० ६४)[3]। (२) दुपट्टा

१—फर्गुसन, ट्री एड सर्पेंट वर्शिप, प्ले० २५२

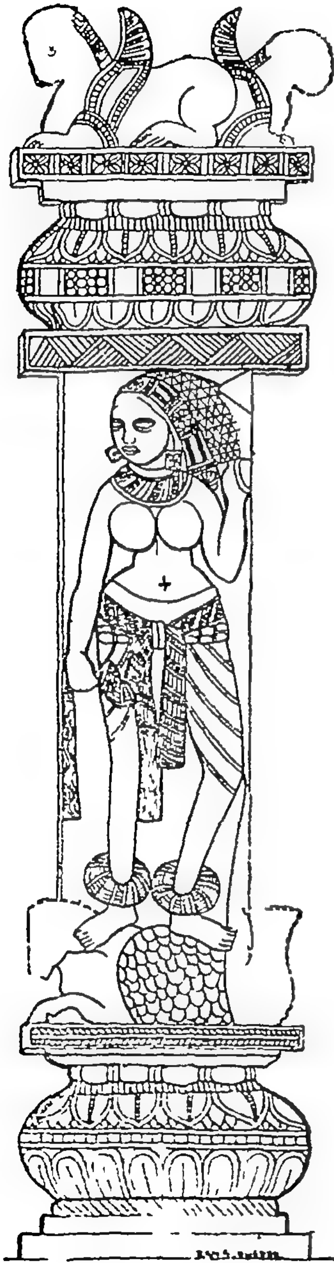
२—मोतीचन्द्र, भारतीय विद्या, नवम्बर, १९३९, आ० १२



६४



६५



६३



६६



६७



६८



६९



७०



७१

पीछे ओढकर उसके सिरे बगल से निकाल कर पीछे फेंक दिये जाते थे[४]। (३) वदन को ढकता हुआ दुपट्टा वायें कधे पर रख लिया जाता था[५]।

साफे और पगड़ियाँ

प्राय सभी पुरुष पगडी पहनते थे। ऐसा लगता है कि पगडी के फेंटे लवे केशो से लपेटे जाते थे। पगड़ी बाधने की अनेक विधिया थी जिनसे पगडियो की अनेक आकृतियाँ वन जाती थी। साधारणत भरहुत की तरह पगडी के आगे एक लट्टू होता था। पगडी के एक छोर से वह ढक जाता था और तीन चार लपेटो के वाद पगडी वध कर तैयार हो जाती थी (आ० ६६)[६]। इस पगडी मे निम्नलिखित भेद पाये जाते है।

१—पगडी की दो फेंटे कुछ नीची वधी है (आ० ६७)[७]।

२—पगडी पतले कपडे की है जिसके अदर से वाल झलक रहे है। दाहिनी तरफ की निचली फेंट का कुछ हिस्सा चुननदार है (आ० ६८)[८]।

३—पगड़ी मोती की लड़ो से सुशोभित है (आ० ६९)[९]।

४—पगडी का लट्टू लवोतरा है और कपडा धारीदार है (आ० ७०)[१०]।

एक दूसरी तरह की पगड़ी में कपड़े की तह गोल लपेट कर लट्टू के सीध में रख दी जाती थी। इसके वाद कई फेंटे वाध कर पगड़ी का छोर फेंटो के नीचे से निकालकर दूसरी तरफ खोस दिया जाता था (आ० ७१)[११]। इसी पगडी के एक भेद मे पगड़ी का कुछ गोलुवाँ हिस्सा सिर पर तिरछा पडता था और उसी के चारो ओर पगडी लपेट ली जाती थी (आ० ७२)[१२]। इसी पगडी से एक दूसरे भेद मे आगे का लट्टू ढोल के आकार का होता था (आ० ७३)[१३]।

साची के अर्धचित्रो में हमें एक तरह की पगडी मिलती है जिसे हम 'गगाकार'

४—फर्गुसन, ट्री एड सर्पेंट वर्शिप, प्ले० २७, १

५—वही

६—मोनीचद्र, वही, प्ले० ४, १४

७—वही, प्ले० ५, १५

८—वही, प्ले० ५, १६

९—वही, प्ले० ५, १७

१०—वही, प्ले० ५, १८

११—वही, प्ले० ५, १९

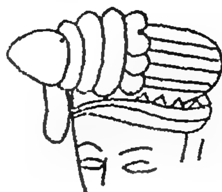
१२—वही, प्ले० ५, २०

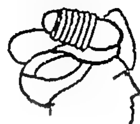
१३—वही, प्ले० ५, २१


७२


७३


७४


७५


७६

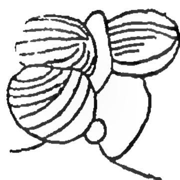

७७


७८


७९


८०


८१


८२


८३


८४

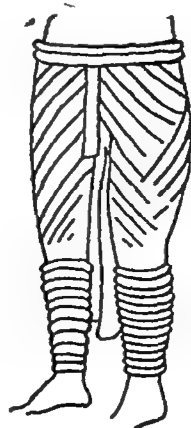

८५


८६


८७


८८


८९


९०


९१

कह सकते है। मूल सर्वास्तिवादियों के विनय में इस तरह की पगडी को कवु कहा गया है (गिलगिट टेक्स्टस्, भा० ३, २, पृ० ९५-९६)। एक मे लट्टू शख के आकार का है और उसके पीछे वृत्ताकार अलकार है (आ० ७४)[१४]। दूसरे मे शखाकार लट्टू पर पगडी का एक छोर कई कई फेर लपटा है (आ० ७५)[१५]। एक तीसरी भाति मे शंख का अग्रिम भाग पेचक के आकार का है (आ० ७६)[१६]। साची के अर्धचित्रो मे निम्नलिखित प्रकार की और भी पगडिया देख पडती है।

१—इस पगड़ी मे लट्टू चक्करदार है (आ० ७७)[१७] और एक फेटा कान ढकता हुआ जाता है।

२—इसमे लट्टू का आकार फिरहरी जैसा है (आ० ७८)[१८]।

३—इसमें फेंटे ढीले है और लट्टू लवोतरा है (आ० ७९)[१९]।

४—इसमे लट्टू पखे के आकार का है, दाहिनी ओर पगडी में एक खूटी सी वस्तु खुसी देख पडती है (आ० ८०)[२०]।

५—इसमें लट्टू वेलन के आकार का है (आ० ८१)[२१]।

६—इसमे तीन लट्टुओ के योग से पगडी वधी देख पडती है (आ० ८२)[२२]।

साची के अर्धचित्रो में टोपिया भी आयी है। लगता है शको द्वारा ऐसी टोपिया इस देश में आयी। निम्नलिखित प्रकार की टोपिया देख पडती है—

१—शको द्वारा स्तूप पूजा के दृश्य मे कुलाहनुमा टोपी देख पडती है (आ० ८३)[२३]।

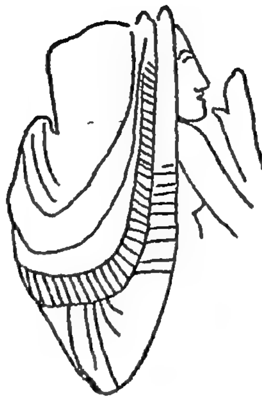
२—चौकस गोल किनारे वाली टोपी, आगे एक वडा फूदना लगा है (आ० ८४)[२४]।

३—पेशानी के ठीक वीचोवीच कटी हुई टोपी, ऊपर पान के आकार का फूदना जिसके चारो ओर सकरमुद्धी के आकार का मडल है (आ० ८५)[२५]।

१४—वही, प्ले० ५, २२
१५—वही, प्ले० ५, २३
१६—वही, प्ले० ६, २४
१७—वही, प्ले० ६, २५
१८—वही, प्ले० ६, २६
१९—वही, प्ले० ६, २७
२०—वही, प्ले० ६, २८
२१—वही, प्ले० ६, २९
२२—वही, प्ले० ६, ३०
२३—वही, प्ले० ६, ३१
२४—वही, प्ले० ७, ३३
२५—वही, प्ले० ७, ३४


९२


९३


९४


९५


९६


९७


९८


९९


१००


१०१


१०२


१०३


१०४


१०५

४—नीचे वार्गो वाली तुर्की टोपीनुमा टोपी, इसके छत पर फूदना है और किनारो पर मनको अथवा फदनो की झालर (आ० ८६)[२६]।

५—कुलाहनुमा टोपी जो सामने और बगल में पजको से सजी है (आ० ८७)[२७]।

साची के अर्धचित्रो मे सारथी चोटीदार टोपी पहनते थे (आ० ८८)[२८]। विदेशी अक्सर अपना सिर पुछल्लेदार फीते से बाधते थे (आ० ८९)[२९]।

स्त्रियों की वेश-भूषा

साची के अर्धचित्रो मे स्त्रिया दो तरह की साड़ियाँ पहने दिखलायी गयी है। एक म साडी घुटनो तक पहुचती थी और चूनन की लाग पीछे खोस ली जाती थी, फीतेदार पर्यस्तक दोलडी करधनी मे खोस दिया जाता था (आ० ९०)[३०]। दूसरी तरह की साड़ी मे एक भाग तो कमर मे लपेट लिया जाता था और चूनन की लाग पीछे खोस ली जाती थी (आ० ९१)[३१]। साडी पहनने की यह रीति आधुनिक सकच्छ साडी पहनने की रीति से मिलती है और इसकी चलन मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र मे है। एक तीसरी जगह चूनन बगल मे खोसी दिखलायी गयी है (आ० ९२)[३२]।

स्त्रियो के सिर किनारदार ओढनियो से ढके रहते थे। ओढनियो मे निम्नलिखित प्रकार देख पडते है —

(१) सिर को ढकती दोहरे किनारे वाली ओढनी (आ० ९३)[३३]।

(२) सिर और चोटी को ढकती हुई पोपी के आकार की ओढनी (आ० ९४)[३४]।

(३) बालो की सजावट को ढकती हुई दो तहो वाली ओढनी (आ० ९५)[३५]।

(४) सिर पर ओढनी दोलडी पेची मे बधी है (आ० ९६)[३६]।

२६—वही, प्लेट ७, ३५
२७—वही, प्लेट ७, ३६
२८—वही, प्लेट ८, ३८
२९—वही, प्लेट ८, ३९
३०—वही, प्लेट ८, ४०
३१—वही, प्लेट ८, ४२
३२—वही, प्लेट ९, ४३
३३—वही, प्लेट ९, ४४
३४—वही, प्लेट ९, ४५
३५—वही, प्लेट ९, ४६
३६—वही, प्लेट १०, ४७

(५) सिर पर पड़ी नुकीली ओढ़नी चौलड़ी पेंची से बंधी है (आ० ९७)[३७]।

(६) कभी कभी ओढ़नी की चोटी पंखे के आकार की होती थी (आ० ९८)[३८]।

(७) ओढ़नी में पंखे का आकार चोटी के पीछे दिखाया गया है (आ० ९९)[३९]।

(८) पेशानी के चारो ओर टिकरेदार बद्धी है, बद्धी को ढकती हुई किनारेदार ओढ़नी है। ओढ़नी के ऊपर एक बोर अथवा चूडामणि है जिसमें पखे के आकार में पर लगे हुए हैं (आ० १००)[४०]।

स्त्रियां विशेषकर साधुनियां कभी कभी पगड़ी भी पहनती थी। एक जगह यह पगड़ी अटपटी पगडी का रूप ग्रहण करती है (आ० १०१)[४१] और दूसरी जगह साफे का (आ० १०२)[४२]।

स्त्रिया कभी सिर से सटी गोल टोपी पहनती थीं (आ० १०३)[४३]। एक जगह इस टोपी में *लटकनदार झालर लगी हुई है (आ० १०४)*[४४]। एक जगह जुलूस में घोडे पर सवार राजा के पीछे एक स्त्री शिरस्त्राण पहने हुए है (आ० १०५)[४५]। क्या यह यवनी है जो प्राचीन भारत में राजा के अंगरक्षक का काम करती थी?

हम ऊपर कह आये है कि ई० पू० पहली शताब्दी में कुछ ऐसी मट्टी की स्त्री मूर्तिया कौशांबी, मथुरा इत्यादि से मिली है जिनकी वेश-भूषा में कंचुक, भारी भरकम शिरोवस्त्र और भारी गहने है। स्त्रियो की यह पोशाक भरहुत और सांची के अर्धचित्रो में नही मिलती। ये मट्टी की मूर्तिया शुगकाल की कही जाती है पर ध्यान देने से पता चलता है कि यह ई० पू० पहली शताब्दी की है। लगता है इनके वेश पर शक प्रभाव पड़ा है पर गहने भारतीय है। कौशावी से मिली हुई एक ऐसी ही अखडित मूर्ति का जो अब इडियन इस्टिटयूट म्यूजियम आक्सफर्ड[४६] में है वर्णन नीचे दिया जाता है। श्री जास्टन की राय में इस मूर्ति का

३७—वही, प्ले० १०, ४८
३८—वही, प्ले० १०, ५०
३९—वही, प्ले० १०, ५१
४०—वही, प्ले० १०, ५२
४१—वही, प्ले० ११, ५३
४२—वही, प्ले० ११, ५४
४३—वही, प्ले० ११, ५५
४४—वही, प्ले० ११, ५६
४५—वही, प्ले० ११, ५७
४६—ई० एच० जांस्टन, ए टेराकोटा फिगर एट आक्सफोर्ड, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४२, ला० ६, पृ० ९४-१०२

समय ई० पू० २०० का है[४७] और शायद मूर्ति मायादेवी की है[४८]। लेकिन डा० गॉर्डन का मत है कि ऐसी मूर्तियाँ ई० पू० दूसरी शताब्दी के अंत की और अधिकतर ई० पू० पहली शताब्दी की है[४९]।

मूर्ति की (आ० १०६) पृष्ठिका जो खाली बच गयी है फुल्लो से सजी है। मूर्ति का शिरोवस्त्र खूब सजा हुआ है । बाल दो लट्टूदार जूडो में सिर के अगल बगल में है। बालो को हटने बढने न देने के लिए ललाट पर चौलड़ी मोती की बद्धी है, जिसके दोनो अंत के फूदने साफ दिखलायी देते है। ललाट के दोनो कोनो में समानान्तर रेखाओं में पत्र भंग है और ललाट के बीचोबीच तिलक, दाहिनी ओर लट्टूदार जूड़े पर कामदार पतली पट्टी बँधी हुई है। बायी ओर का जूडा एक चार टिकरो वाले शिखाजाल से बँधा है। और जूडा एक सिरे से दूसरे सिरे तक, निम्नलिखित आकार के टीकरो से सजा है यथा—सब से निचला अंकुश है, उसके बाद वाला त्रिरत्न, जिस पर कोई आवरण है, उसके बाद परशु है, उसके बाद फिर त्रिरत्न है जिसपर कुलाहनुमा कोई आवरण है और फिर है गंडासा। इन सब के सिरो से मोती की लड़ें लगी हुई है। जूडो के बीच फुल्लो से सुसज्जित ढालनुमा गोल टिकरा है जिसका मतलब शायद चूडामणि से हो । कानो में गोल तकियां है जिन पर सितारो और फुल्लो का काम बना हुआ है, इनके नीचे मनको या मोती की कई लड़ें लटक रही है। शरीर एक बिना बांह वाले और पैर तक लटकते हुए कंचुक से ढका है । यह कंचुक कमर पर पेटी से बंधा हुआ है । गले के नीचे किनारेदार गोल कालर है। कंचुक में एक विशेषता यह है कि दाहिना कंधा तो खुला है और कंचुक का किनारा बायें स्तन के मध्य से होकर जाता है। कंचुक की चूननें समानान्तर रेखाओ द्वारा दिखायी गयी है। कमर से जरा नीचे खिसकी हुई एक तीन लडवाली करधनी है । लड़ें धारदार और गोल मनकों से बनी है। निचली लड़ से दो फुदनेदार झुमके लटक रहे है। इन झुमको के ऊपरी लडो में दोनो ओर दो कुभाडो की बैठी हुई मूर्तियां है। छाती पर दाहिने कंधे से लेकर कटि तक एक पट्टी है जिसमें चार जंतर यथा दो मछलियां, एक चिड़िया जिसका सिर टूट गया है, एक सोती हिरनी और मकर है। इन जंतरों से मनको की लड़ें लटक रही है। मूर्ति एक या उनसे अधिक दुपट्टे पहने है जो दायें और बायें बाहुओ और बायें कन्धे और स्तन पर होते हुए घुटनो पर खतम होते है। उनके ठीक ठीक घुमावो का पता नहीं चलता। हर कलाइयों पर चार चार कंकण है।

४७—वही, पृ० ९९
४८—वही, पृ० १०१
४९—डी० एच० गॉर्डन, अर्ली इंडियन टेराकोटाज़, जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४३, पृ० १५७



१०६



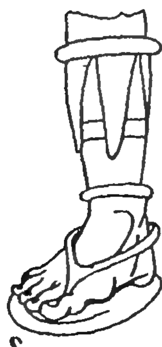
१०७



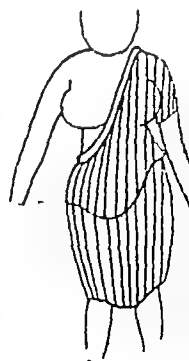
१०८



१०९



११०



१११

सिले वस्त्र

सांची के अर्धचित्रो से तत्कालीन सिले वस्त्रो पर भी प्रकाश पडता है। इनमें सारथि[५०], सिपाही[५१], राजा के अगरक्षक अथवा ध्वजवाहक[५२], तथा स्तूप पूजा करते हुए विदेशी[५३] कचुक पहने दिखलाये गये है। सिपाही दो भागों मे वाटे जा सकते है, धनुर्धारी और पदाति। धनुर्धारी पूरे वांह वाला कचुक पहने दिखलायी पड़ते है (आ० १०७)[५४] वाण छोडते समय केहुनियो तक वहोलियां उलट ली जाती थी[५५]। इसके अलावा वे तहमतनुमा कपडा कमर पर वाधते थे जो कई फेंटो के कमरवद से कमर पर मजबूती से वधा होता था। छाती पर दोहरे परतले और सिर पर पगड़ी होती थी। पैदल सिपाही धनुर्धारियो की तरह ही कपडे पहनते थे लेकिन वे दोहरे परतलो का व्यवहार नही करते थे। कुछ स्थानो मे पैदल सिपाही (आ० १०८)[५६] कमरवद से वधी जाघिया पहने दिखलाये गये हैं। कमरवद से लटकता पटका भी वे पहनते थे। स्तूप की पूजा करते हुए विदेशियो की पोशाक भी ध्यान देने योग्य है (आ० १०९)[५७] वे पूरी वाह का घुटनो के नीचे लटकता कचुक, कमरवद, पीछे फडफडाता हुआ गले मे वधा रूमाल पहने हैं। कुछ अपने सिर फीतो से वाधते थे जो सिर के पीछे वधा हुआ होता था, कुछ कुलाहनुमा टोपिया पहनते थे और कुछ नगे सर रहते थे। सब के पैरो मे पूरा वूट होता था। साची के स्तूप न० ३ मे एक जगह[५८] एक मकर पर चढा हुआ विदेशी आधे वाह का कचुक जाघिया और वूट पहने है।

सांची के अर्धचित्रो मे केवल विदेशी पूरा वूट पहने दिखलाये गये ह, कही कहे यह वूट यूनानी चप्पल का रूप ग्रहण करता है (आ० ११०)[५९]। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि भारतीय जूते पहिनते ही नही थे क्योकि तत्कालीन वौद्ध साहित्य मे तरह तरह के जूतो का वर्णन है। भरहुत और साची के अर्धचित्रो मे जूते न पाये जाने से केवल यही माना जा सकता है कि भारतीय सभ्यता के अनुसार पूजा के स्थानो मे जूते आज दिन की तरह वर्जित

५०—फर्गुसन, वही, प्ले० ३३

५१—वही, प्ले० ३६, १, २; ३८, १

५२—वही, प्ले० ४०

५३—मोतीचद्र, वही, प्ले० ७, ३२

५४—वही, प्ले० १२, ६०

५५—वही, प्ले० १२, ६१

५६—वही, प्ले० १२, ६२

५७—वही, प्ले० १२, ६३

५८—मार्शल, साची, भा० ३, प्ले० ६७

५९—फर्गुसन, ट्री एंड सर्पेंट वर्शिप, प्ले० २८, मोतीचद्र, वही, प्ले० १३, ६४



११२



११३



११४



११५

थे। इन अर्धचित्रों में या तो मनुष्य मूर्तियां पूजा करती दिखलायी गयी है अथवा वे पवित्र जातकों में पात्रों का काम करती हैं और इसीलिए उनके पैरों में जूते नही है

ब्राह्मणों के वस्त्र

ब्राह्मण और साधु कोपीन पहनते है पर जैसा अर्धचित्रो से पता चलता है यह अनसिला वस्त्र तहमतनुमा न होकर घाघरेनुमा होता था[६०]। वे चादरनुमा वैकक्ष्य भी पहनते थे जो बाया कंधा और छाती ढाकता हुआ दाहिनी छाती खुला छोड़ देता था। ऋषि-पत्निया लहंगेनुमा (आ० १११)[६१] एक कपडा और वैकक्ष्य पहनती थी। उनके और ऋषियो के वैकक्ष्यो में अंतर केवल इतना होता था कि ऋषियों का वैकक्ष्य केवल कधा ढकता था लेकिन स्त्रियो का वैकक्ष्य वाहु का भी कुछ भाग ढक लेता था।

दक्षिणी वेश-भूषा

अर्धचित्रों और भित्तिचित्रो क आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर और दक्षिण भारत की वेश-भूषा में अधिक अंतर नही था फिर भी दोनों में कुछ स्थानिक अंतर तो था ही। दक्षिण भारत की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए पर्याप्त साधन हमें अमरावती के प्रथम युग के अर्धचित्रो, कार्ले और भाजा के लेणों के अर्धचित्रों में और अजंटा की न० ९ और १० लेणो के भित्तिचित्रों से मिलते है। अमरावती में एक सद्गृहस्थ की वेश-भूषा करीव करीव वैसी ही है जैसे साची के अर्धचित्रो में एक सद्गृहस्थ की। वे कुछ लंबोतरा साफा बाधते थे, धोती घुटनो तक पहुंचती थी और कई लड़ रस्सियो से बने कमरबंद के अंत में एक झब्बा लटका करता था (आ० ११२)[६२]। कार्ले की लेण के अर्धचित्रो में धोती जरा फटी दिखलायी गयी है और उमेठे कपड़े का बना कमरबंद बगल में लटकता दिखलाया गया है[६३]। कार्ले में पगड़ी छोटी और कसकर बधी दिखलायी गयी है।

भाजा के के अर्धचित्रो से दक्षिण की वेश-भूषा पर काफी प्रकाश पड़ता है और उनमें दक्षिणी झलक भी साफ देख पड़ती है। भाजा की वेश-भूषा के आकार प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में भाजा अर्धचित्रों के प्लास्टर की प्रतिकृतियों से लिये गये है।

हाथी पर बैठे राजा और ध्वजवाहक की वेश-भूषा (आ० ११३)

राजा के शीश पर गुंबददार पगडी बंधी है जो मोती या मनको की लड़ो स सजी है। हाथो में मनको की लडी से भर बांह के कगन और गले में मनको की बनी छल्ठी माला है।

६०—मोतीचंद्र, वही, प्ले० ११, ५८
६१—वही, प्ले० १२, ५६
६२—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, प्ले० १८,१
६३—बर्जेस, रिपोर्ट आन दि बुधिस्ट केव टेंपल्स, प्ले० २५, २



११६



११७



११८



११९



१२०

राजा के कमर मे एक सिला हुआ लहगानुमा वस्त्र है जिसकी चुदने साफ साफ देख पड़ती है। राजा के पीछे बैठे हुए ध्वजवाहक के सिर पर एक अटपटी सी बधी पगडी है जिससे तीन फेरे निकलते दिखलाये गये है। पगडी का एक छोर गालो को घेरता हुआ और ठुड्डी के नीचे से होकर दूसरी तरफ पगडी मे खोस दिया गया है। वह एक पूरे बांह का कचुक भी पहने है जिसका दामन लहरिये के आकार मे कटा हुआ है।

द्वारपाल (आ० ११४)

सिर पर मोती या मनको की लड़ो से सजी हुई गुबददार पगडी है, गले में खारदार और चपटे मनको के कठे है। दाहिने कधे से होता हुआ एक परतला है जिसके छोर से कृपाण लटक रही है। धोती के एडी के कुछ ऊपर पहुचती है और कमरबद कमर मे लपेट लिया गया है। कमरबद से पटका लटक रहा है।

सिपाही (आ० ११५)

हल्की एक लट्टू वाली पगडी जिसके बाहर कुछ बाल की लटे निकली है बाये कधे से होता हुआ दुपट्टा, कछाडेदार धोती और कमरबद।

पगडी

पगडी (आ० ११६) अनेक पेचो वाली घुमावदार पगडी (उष्णीषरत्न) जिसमे तीन पर जैसे निकले है।

स्त्रियो के शिरोवस्त्र

(१) ओढनी के ऊपर सिरपेच जैसा आभरण, सिरपेच की नीचे की लड़ियां फुल्लेदार गोल तख्तियो से बनी है (आ० ११७)।

(२) भारी भरकम ओढनी जिसकी कई तहे सिर पर पडती है, सीनमाग और बढी वेना, सिर के मध्य मे एक पहियानुमा टिकारा, ललाट पर एक गोल टीका (आ० ११८)।

(३) शीश पर पगडी जैसा कोई आच्छादन जिसके बाये ओर कुछ दाने से निकले है। गले मे खारदार, ढोलकनुमा और चपटे मनको के कठे (आ० ११९)।

(४) सिर पर मूगरी के आकार का गोलियाया वस्त्र (आ० १२०) जिसका एक छोर गोले के ऊपर होता हुआ दूसरी ओर खोस दिया गया है।

(५) मस्तक पर जूट बधी वेणी (आ० १२१) जिसमे शायद फीते लगे है।

(६) पगडी नीने के फेटे कान तक आ जाते है (आ० १२२)।

अजंटा लेण ९-१० के भित्तिचित्रो में आर्यो वेश-भूषा की कुछ विशेषताए

सांची अथवा भाजा के अर्धचित्रो मे हम पगडियो के बहुत से भेद देख चुके है।

अंजटा के १० न० की लेण के भित्तिचित्रों मे पगड़ी भारी भरकम नही होती। पहले सिर के ऊपर बालो का जूट बाँध दिया जाता था, फिर एक कटे छोर वाली पतली छीर बालो के ऊपर लपेट ली जाती थी (आ० १२३)[६४]।

दस नंबर की लेण के भित्तिचित्रो मे कुछ सिले वस्त्रो के नमूने आये हैं। षड्दत जातक के चित्र मे शिकारी सोनुत्तर और उसका साथी कंचुक पहने है। अपने कधे पर बहगी लिये सोनुत्तर का साथी एक चौथाई बाहो वाला, त्रिकोणाकार कटे हुए गले वाला धारीदार कचुक पहने है जो कमरबद से बधा है। सोनुत्तर का कचुक बुदकीदार छींट का बना मालूम पड़ता है। इसका गला गोल है और सामने तुकमेक लगाने की पट्टी है (आ० १२३-१२४)

६४—स्टेला क्रामरिश, ए सर्वे आफ पेंटिंग इन दि डकेन, प्ले० १

सातवाँ अध्याय

ईस्वी पहली शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी के आरभ तक के साहित्य में वर्णित वेश-भूषा

भारतीय इतिहास की मुख्य घटनाओ में ईस्वी प्रथम शताब्दी मे इस देश मे कुषाणों का आगमन है । कुषाण ऋषिक (यू० शी०) कवीले के एक अग थे और उनका आदिम निवासस्थान चीन के उत्तर पश्चिमी भाग में था। हूणो द्वारा ई० पू० १६५ मे विजित होकर ऋषिको ने पहले तो शको के देश पर कब्जा किया और वाद में आगे वढते हुए करीव ई० पू० १० वी सदी मे उन्होने वलख जीत लिया। कुषाण वश के सब से प्रसिद्ध राजा कनिष्क ने पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) को अपनी राजधानी वनाया। कनिष्क विद्वानो का आदर करते थे और इनकी सभा में सस्कृत के प्रसिद्ध कवि अश्वघोष और प्रसिद्ध वैद्य चरक थे। कनिष्क वौद्ध थे इसलिए धर्मप्रसार के लिए इन्होने तिब्बत, मगोलिया और खोतान ऐसे सुदूर देशो में भिक्षु भेजे । संस्कृत वौद्ध साहित्य तथा तत्कालीन लेखो से पता चलता है कि सर्वहित कामना का इस युग में विशेष प्रचार था ।

उत्तर भारत मे कुषाणो के उदय होते ही सातवाहनो की सत्ता को धक्का पहुचा और उनकी राज्य-सीमा घटकर केवल दक्खिन तक ही रह गयी। करीव ११० ई० से० के चष्टन कुषाणो के महाक्षत्रप हुए लेकिन वाद मे सातवाहनो ने उनसे यह सत्ता छीन ली। चष्टन के पोते रुद्रसिंह, जिन्होने अपनी कन्या का विवाह राजा सातवाहन के पुत्र से किया था, अपने सवधी को युद्ध मे दो वार हराकर धीरे धीरे सिंध, मारवाड, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर कब्जा कर लिया । वाद मे सातवाहन अपने विजित राष्ट्र के कुछ भाग ले लेने मे समर्थ हुए ।

ईसा की आरभिक सदियो मे तामिल देश पर चेर, चोल और पाड्यो की सत्ता थी और इनमे वहुधा लडाइयां भी होती रहती थीं । तामिलनाड का सब से प्रतापी राजा करिकाल चोल ने (करीव ई० ७०-१०० तक), जिसने सिंहल के सम्राट् गजवाहु को हराया, उरैयूर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) में अपनी राजधानी कायम की । इस युग में कावेरी के मुहाने पर कावेरीपट्टन प्रसिद्ध वंदरगाह वन गया । चेर सेंगुट्टुवन् (करीव ई० १४०-१९२) दक्षिण देश का एक दूसरा वड़ा राजा था जिसने चोल देश के नौ सम्बन्धित राज्यों को हराया। इसकी यश-गाथा हमे प्रसिद्ध तामिल काव्य सिलप्पदिकारम् मे मिलती है ।

ईस्वी दूसरी शताब्दी के अंत मे सातवाहन साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लगा। आभीरो ने गुजरात में एक स्वतन्त्र राज्य कायम किया । चुटु सातवाहन करीव सौ साल तक

अपनी राजधानी वैजयन्ती (आधुनिक बनवासी, कनारा) से उत्तर महाराष्ट्र और कर्नाटक पर राज्य करते रहे और इक्ष्वाकुवश अपनी राजधानी शायद नागार्जुनीकोड (धान्यकटक, गुटूर जिला) से आध्र देश पर। उत्तर भारत मे नाग, भारशिव, और मघराजाओ ने कुषाणो को निकाल बाहर किया और यौधेयो और मालवो के गणतत्र प्रवल हो उठे। वाद में भारशिवो की सत्ता के अत होने पर विंध्यशक्ति ने ई० २४८-२८४ मे प्रसिद्ध वाकाटक वश की स्थापना की और उस वश का सबसे प्रतापी राजा प्रवरसेन (ई० स० २८४-३४४) हुआ।

भारतवर्ष के इतिहास के ये तीन सौ बरस न तो केवल लडाई भिडाई में ही बीते और न तो, जैसा कुछ ऐतिहासिको का विश्वास है इसके पिछले युग का इतिहास (ई० स०१५६ से ३५० तक) अन्धकार मय ही है क्योकि इस काल के इतिहास पर डा० जायसवाल प्रभृति विद्वानो ने अच्छा प्रकाश डाला है। प्लिनी और पेरिप्लस के ग्रथो से, तथा वृहत्तर भारत और इस देश के पुरातत्व सबधी अन्वेपणो से यह पता चलता है कि इस युग में कला और साहित्य समुन्नत थे। भारत और रोम के साथ हमारा गहरा व्यापारिक संबध था और हम अपनी ब्रह्मविजय से मध्य एशिया से लेकर हिंदचीन तक अपनी सास्कृतिक धाक जमा चुके थे। ई० सन् की पहिली शताब्दी मे हिन्द-चीन, अनाम कबुज तथा यवद्वीप इत्यादि में भारतीय राज्य बन चुके थे। भारतीयो का पूर्व की ओर प्रसार उन्हें चीनियो के सयोग मे लाया और इन दोनों देशो मे व्यापारिक सवध वढा। इसी युग में रोम साम्राज्य के उत्कर्षावस्था मे भूमध्य सागर और भारत का मूल्यवान व्यापारिक संवध और भी दृढ हुआ। भारतीय रत्न, मसाले, गधद्रव्य और कीमती 'मिरहिना' की घरिया, जिनकी कीमत से घबराकर प्लिनी को रोमनो के भाग्य पर रोना पडा, तथा वढिया मलमल इस देश से रोम को जाते थे। सज्जा की इन वस्तुओ के व्यापार से देश की आमदनी इतनी वढी कि व्यापार का पलडा हमारी ओर झुक गया और इसके फलस्वरूप वहुत वडे पैमाने में रोमन दीनारें इस देश मे आने लगी।

भारतीय वेश-भूषा की प्रचुर सामग्री हमे इस युग की मूर्तियो और अर्धचित्रो मे मिलती है। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त की गधार-मूर्तिया, मथुरा की कुषाण मूर्तिया तथा अमरावती, नागार्जुनीकुड और गोल्ली से मिले अर्धचित्र हमे यह वतलाते है कि धोती, साड़ी तथा पगडी पहनने में कौन कौन सी स्थानिक विशेषताए थी। उत्तर पश्चिमी भारत मे शुद्ध भारतीय वेश-भूषा के सिवाय कचुक, शलवार, टोपिया इत्यादि विदेशी वस्त्र भी काम में लाये जाते थे। ये वस्त्र प्राचीनभारत और मध्य एशिया तथा ईरान के सास्कृतिक और व्यापारिक संवध के प्रतीक है। गधार की कला यूनानी कला से प्रभावित थी जिसके फलस्वरूप हम गधार की कला मे स्त्री-पुरुषो को कभी कभी यूनानी कपडे पहने देखते है। कुषाण सिक्को पर अकित कुषाण राजाओ की आकृतियो से हमें शको की वेश-भूषा का अच्छा पता लगता है। दक्षिण भारत मे स्त्रियो और पुरुषो की वेश-भूषा वहुत सादी होती थी।

वे केवल मलमली धोती और कमरबंद पहनते थे कचुक तो केवल योद्धागण, शिकारी और द्वारपाल ही पहनते थे । इस युग के अर्धचित्रो मे पंजाबियो की प्रिय कुलाह भी कभी कभी दिखलायी पडती है ।

कुषाण युग के साहित्य से उस युग की वेश-भूषा पर विशेष प्रकाश नही पडता। महावग्ग और चुल्लवग्ग ऐसे ग्रंथो का जिनमे ईसा के पूर्व चौथी या पाचवी शताब्दी के नर-नारियो की वेश-भूषा, पहनने के ढग और कपड़ो का विशद वर्णन है, इस युग मे अभाव ही सा है। इस युग के साहित्य मे वेश-भूषा का छिटपुट वर्णन है, और वस्त्रो और कपडो का नाम बिना किसी भाष्य के आते है। इन शब्दो के अर्थ आधुनिक कोशो मे भी नही मिलते और अगर मिलते भी है तो यह पता नही चलता कि वे वस्त्र सूती, रेशमी अथवा और किसी दूसरे रेशो से बनते थे । इस युग के कपडो का ज्ञान हमे "पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी" नामक एक पुस्तक से, जिसे एक यूनानी नाविक ने ईसा की पहली शताब्दी मे भूमध्य और हिंद-सागर के व्यापारिक संबंध पर लिखा था, मिलता है ।

कपास धुनने, कातने और बुनने की क्रिया

इस युग में सूती कपडे का बहुत चलन हो गया था। अच्छी कपास पैदा की जाती थी और कपास के खेत (कर्पासवाट) का उल्लेख मिलता है[१] । कपास की मृदुता (कर्पास-पिचु) के लोग कायल थे। दिव्यावदान मे एक जगह[२] उपगुप्त के शरीर की कोमलता की उपमा कर्पास से दी गयी है। कपास बाजार से खरीद कर धुन ली जाती थी (त परिकर्मयित्वा, और उससे पतला एकसा सूत कात लिया जाता था[३] । बुनकर (कुविंद), कपडे बीनते समय चीर छोडकर (अविचीरविचीरकं) तथा अपने सिर उठाकर और अपने हाथ पैरो का सचालन करते हुए बुनना आरंभ करते थे । पास मे बैठी बुनकर की स्त्री माडी (दिव्यसुधा) देकर ताना तानने का काम आरंभ कर देती थी (तसरिका कर्तुमारब्धा)[४] । दो हजार वर्षों के बाद भी आज हम एक बुनकर के घर यही दृश्य देख सकते है। कार्पासिको और बुनकरो (तन्नवायक) का अपनी श्रेणियां होती थी (महावस्तु, भा० ३, पृ० ११३)

कलिंग देश के नाग बुनकर

दक्षिण भारत में इस युग मे नाग जाति बहुत सी कलाओ मे और विशेषकर बुनाई में पारगत थी। कलिंग देश के नाग बुनाई मे इतने कुशल होते थे कि तामिल भाषा में कलिंग शब्द अच्छे कपडे का बोधक हो गया । ईसा की प्रारंभिक शताब्दियो मे पूर्व समुद्र के किनारे पाड्यों की राज्य-सीमा में भी बहुत अच्छे बुनकर थे और उनकी बनायी हुई मलमल सारी

१—दिव्यावदान, पृष्ठ २१२, सतर २१
२—वही, पृ० ३८८, सतरें १४-१५ तथा पृ० ३१०, १४
३—वही, पृ० २७६, स० ९, ११
४—वही, पृ० ८३, स० २१-२५

परिमाण मे निर्यात होती थी । बढिया मलमल की तामिल काफी कदर करते थे और बाहरी देशो मे भी इसका बडा गहरा दाम मिलता था।[५] एक प्राचीन तामिल काव्य मे अय नाम के एक प्रसिद्ध राजा के नील नाग द्वारा भेट किया हुआ एक अमूल्य मलमल का थान शिव की मूर्ति पर चढाने का उल्लेख है[६] । मूल सर्वास्तिवादियो के विनय में एक जगह स्त्रीरत्न के शरीर के मृदुता की उपमा कलिंग प्रावार से दी गयी है (गिलगिट टेक्टस्, भा० ३, २, पृ० ३६)

रोम मे भारतीय मलमल

भारतीय मलमल की रोम साम्राज्य में बडी कीमत होती थी पेरिप्लस के अनुसार सबसे अच्छी मलमल को 'मोनाचे' और कुछ घटिया रुई के बने कपडे को जिसका व्यवहार खोल बनाने के लिए होता था 'सगमतोगेने' कहा जाता था । ये कपडे गुजरात में बनते थे और भड़ोच से एक घटिया बैंगनी रग के 'मोलोचीन' नामक कपडे के साथ पूर्वी अफ्रिका के बदरो में भेजे जाते थे[७] । इसी तरह के कपडे भडोच होकर अरब, मिस्र और सोकोतरा भी भेजे जाते थे । भडोच की बदरगाह में ये कपडे उज्जैन और तगर (आधुनिक तेर) से आते थे[८] । त्रिचनापल्ली और तजोर मे आर्गरितिक'[९] नाम की मलमल बनती थी जिसका यूनानी नाम चोलो की राजधानी उरैयूर (आधुनिक त्रिचनापली का एक भाग) मे बनने से पडा। मसालिया (आधुनिक मसुलीपतन) मे भी काफी मलमल बनती थी[१०]। पर सब से अच्छी मलमल का नाम 'गेजेटिक' था और वह शॉफ के अनुसार ढाका के आस-पास बनती थी[११]। काशी भी उस युग मे कीमती मलमल बनाने का एक बडा केन्द्र था और हो सकता है कि गेजेटिक से यहा काशी की मलमल का उद्देश्य रहा हो । रोम मे भारत के सादे और रगीन वस्त्रो की इतनी अधिक माग थी कि दूसरे देशो के कपडो की माग काफी गिर गयी। इस देश की सब से अच्छी मलमल का नाम रोमनो ने 'वेटस टेक्सटाइलिस' (हवा की तरह कपडे) और 'नेबुला' रक्खा। एरियन के अनुसार भारत मे बने सूती कपडे दूसरे देशो मे बने कपडो से अधिक सफेद और चमकीले होते थे तथा लूशियन के अनुसार भारतीय कपडे यूनानी कपडो से भी हलके और मुलायम होते थे[१२]। सस्कृत बौद्ध साहित्य मे मलमल के लिए विरली शब्द आया है। बिदुसार द्वारा एक कीमती विरली अबपाली को भेट दी गयी (वही, ३, २, पृ० २०) जामदानी के काम को चित्रा विरली कहते थे (वही, पृ० २३)

५—कनकसभै, दि तामिल्स-एट्टीन हड्रेड इयर्स एगो, पृ० ४५
७—शॉफ, दि पेरिप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी, पृ० ७२-७३, १७९-१८०
८—वही, पृ० ४२
९—वही, पृ० ४६
१०—वही, पृ० ४१
११—वही, पृ० ४७
१२—वार्मिगटन, कामर्स बिटवीन दी रोमन एम्पायर एड इडिया, पृ० २१२

रेशमी वस्त्र

रेशमी कपडो की काफी चलन थी और इस देश में काफी रेशमी कपडे बनते भी थे। दिव्यावदान[13] मे रेशमी वस्त्र के लिए पट्टांशुक, चीन, कौशेय और धौतपट्ट शब्दो का व्यवहार हुआ है। लेकिन इन रेशमी वस्त्रो मे बनावट और नक्काशियो की दृष्टिकोण से क्या फरक था इसका पता हमे नही लगता। लगता है पट्टांशुक सफेद और सादा रेशमी वस्त्र था, चीन चीन देश मे बने रेशमी कपडे को कहते थे, कौशेय शहतूत की पत्ती खाकर कोश बनाने वाले कीडो के रेशम से बने वस्त्र का नाम था और धौतपट्ट धारे हुए रेशम के बने वस्त्र को कहते थे। नकाशीदार रेशमी वस्त्र को कोशिकारक भी कहते थे (महावस्तु, १, पृ० २३५-२३६)। विचित्रपटोलक[14] अथवा नक्काशीदार रेशमी वस्त्र का भी उल्लेख है। इस वस्त्र का नाम गुजरात की पटोला साडी मे जिसे विवाह के अवसर पर लड़की का मामा उसे भेट मे देता है बच गया है। यह साडी बाधणी रगने की विधि से रगे हुए तानेबाने से बनती है। इसकी बिनावट मे सकरपारे पडते है जिनके बीच मे तिपतिये फूल होते है। कभी कभी अलकारो मे हाथियो की पक्ति, पेड, पौधे, मनुष्य-आकृतिया और चिडिया भी होती है[15]। लेकिन ये अलकार नये है पुराने अलंकारो का हमे पता नही है। पटोलक के साथ विचित्र विशेषण से पता लगता है कि वह रग-विरगा कपडा होता था।

तामिलनाड मे धनिक वर्ग रेशमी कपडे पहनता था। सिलप्पदिकार मे एक जगह कहा गया है कि मदुरा की स्त्रिया पुण्णालकृत लाल रंग की रेशमी साडिया पहनती थी[16]।

पेरिप्लस में इस बात का उल्लेख है कि सिंध नदी पर बारबरिकोन बंदरगाह से रेशम का निर्यात होता था, और बलख के रास्ते सिंध होते हुए भड़ोच को, रेशम और कीमती रेशमी कपड़े भेजे जाते थें। रेशमी कपडे मुजिरिस, नेलकिंडा तथा मालाबार के और दूसरे बाजारो में गंगा के मुहाने और पूर्वी समुद्र के किनारे से होकर पहुंचते थे[17]। ईसा की आरंभिक सदियो मे चीन से रेशमी वस्त्र ब्रह्मपुत्र की घाटी, असम और पूर्वी बंगाल भी हो कर आते थे[18]। रेशमी कपडो के व्यापारी चोलों की राजधानी कावेरीपट्टन मे भी पहुंचा करते थे[19]। 'पेरिप्लस' के अनुसार रोमन व्यापारियों को रेशमी वस्त्र गंगा के मुहाने, खंभात की खाड़ी और ट्रावनकोर के बंदरों मे मिलते थे जहां इनका आयात पश्चिमी चीन के व्यापा-

१३—दिव्यावदान, पृ० ३१६
१४—ललितविस्तर, पृ० १२३, सतर १, डा० राजेन्द्र लाल मित्र संपादित, कलकत्ता १८७७
१५—वाट, इंडियन आर्ट एट दी देहली एग्जिबिशन, पृ० २५८-२५९
१६—सिलप्पदिकार, १८, पृ० २०३
१७—वार्मिंगटन, वही, पृ० १७६; मोर, वही, पृ० २२३-२२४
१८—वाट, डिक्शनरी आफ इकोनॉमिक प्राडक्ट्स आफ इंडिया, पृ० ९९८-१०२९
१९—वार्मिंगटन, वही, पृ० १७६

रियो द्वारा होता था[२०]। चीनपट्ट के सिवाय भारतवर्ष के बने रेशमी कपड़े भी शायद ईसा की आरभिक शताब्दियो मे रोम पहुच चुके थे।

ऊनी कपड़े और पश्मीना

ऊनी कपडे का साधारण बोधक शब्द कबल था[२१]। इस युग मे ऊनी कपडो के लिए शायद दूश्य (आधुनिक घुस्सा) शब्द का भी व्यवहार होता था[२२]। दिव्यावदान मे कहा गया है कि उत्तर कुरु देश मे कल्पदूश्य नामक वृक्ष से तुडिचेल नाम के कपडो के थान पैदा होते थे, जिनसे नीले, पीले, लाल और सफेद रग के कल्पदूश्य के छोटे बडे टुकडे बनते थे[२३]। यह भी कहा गया है कि मातग स्त्रिया बिना कुदी किया हुआ दूश्य (अनाहृत दूश्य) पहनती थी[२४]। कभी कभी ऊन और दुकूल के रेशो को मिलाकर बहुत अच्छे कपडे बिने जाते थे (ऊर्णा दुकूलमयशोभनवस्त्राणि)[२५]। एशिया के ऊनो मे कश्मीर, भूटान, तिब्बत और उत्तरी हिमालय मे बकरो के रोयें का ऊन जिसे पश्म कहते है अपने चिकने पोत के लिए प्रसिद्ध है। रोम के बादशाह ऑरेलियन को ईरान के बादशाह द्वारा एक लाल रग के पश्मीने के रूमाल के भेजने का उल्लेख है। वार्मिंगटन का कहना है कि यह रूमाल भारतवर्ष का बना था[२६]। रोमन कानून के सग्रह (३९।५।७) मे मारोकोकोरम लाना भारत के उत्तरी-पश्चिमी बदरगाहो से लाया गया पश्म था जो मिश्र देश में बुना जाता था। वार्मिंगटन का अनुमान है[२७] कि मारोकोकोरम शब्द शायद काराकोरम का अपभ्र श है । इसमे सदेह नही कि आज दिन भी सब से अच्छा पश्म पामीर से आता है । रगीन पश्म भारत से बाहर नही जाता था और इसलिए अरॉलियन और उसके परवर्ती राजाओ को लाल पश्मीना देखकर विस्मय होता था[२८]। प्राचीन काल मे पश्म का बहुत दाम होता था । इस बात का उल्लेख है कि ससानी बादशाह हुरमुज द्वितीय (ई० ३०२-३१०) ने काबुल के राजा की कन्या से जब विवाह किया तब उसके दहेज मे काश्मीर के अच्छे से अच्छे पश्मीने के बने शाल दुशाले आये, जिनकी कारीगरी देखकर सब लोग चकित हो गये[२९]।

२०—शॉफ, वही, पृ० १७२

२१—दिव्यावदान, पृ० ३१६, सतरें—२३-२७

२२—वही, पृ० २१५, स ० २७-२६

२३—वही, पृ० २२१, स० १७-२०

२४—वही, पृ० ६१४, स० १७

२५—वही, पृ० ३१६, स० २३-२७

२६—वार्मिगटन, वही, पृ० १६०

२७—वही, पृ० १६०

२८—वही, पृ० १६१

२९—वही, पृ० १६१

संस्कृत बौद्ध साहित्य में भी ऊनी वस्त्रों के कई जगह उल्लेख हैं। ऊनी वस्त्र कभी कभी बहुत पतला होता था। कम्बल सूक्ष्माणि (महावस्तु, २, पृ० ११६) तथा ऊन बिनने वालों (ऊर्णवायक) की अपनी श्रेणि होती थी (वही, ३, पृ० ११३)। साधारण और ऊंट के बाल के बने कम्बलों का (कुतुप, उष्ट्रकम्बल) का भी व्यापार होता था (गिलगिट टेक्स्ट, ३, २, पृ० ९५-९६)

क्षौम, शाण, पाडुदुकूल, हर्यणी, अपरातक, फलक, फुट्टक और पुष्पपट्ट

क्षौम—क्षौम अथवा तीसी के छाल के रेशों से बने कपड़ों का काफी व्यवहार होता था।[30]

शण—अट्ठारह गज लंबे और बारह गज चार अंगुल चौड़े सन के बने कपड़े का उल्लेख है।[31] एक दूसरी जगह सन की साड़ी (शण शाटिका) बिने जाने का उल्लेख है।[32] ऐसा पता चलता है सन की बनी धोती (शण शाटिका) गरीब किसान पहनते थे।[33]

हिरि वस्त्र—सुनहले कपड़े को हर्यणी[34] अथवा हिरि वस्त्र[35] कहते थे। लगता है कि इन शब्दों से आधुनिक किमखाब की तरह किसी वस्त्र की ओर संकेत है। पर इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता कि आया यह कपड़ा सादा होता था या नक्काशीदार। सुनहले कलाबत्तू से बिनी गई और रत्नों से जटित (रत्न-सुवर्ण-प्रावरक) कीमती चादरें भी होती थीं।[36]

पाडुदुकूल—दुकूल के रेशों से बना सफेद कपड़ा[37]। इस युग के साहित्य में दुकूल का ठीक ठीक परिचय नहीं मिलता। जैन अंगों की टीकाओं में गौड़ अथवा बंगाल की रुई को दुकूल कहा गया है पर यह व्याख्या बारहवीं शताब्दी की होने से अविश्वसनीय है। दुकूल शायद दुकूल वृक्ष की छाल के रेशों से बना कपड़ा था।

काशिक वस्त्र—बनारस में बने कपड़ों के लिए काशिक वस्त्र[38], काशी[39] तथा काशिकांशु[40] इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। बहुधा काशिक वस्त्र से लोग रेशमी कपड़े

३०—दिव्यावदान पृ० ३१६, प० २३-२७, पृ० ५७७, प० २१-२२

३१—वही, पृ० ३८९, प० ३-५

३२—वही, पृ० ८३, प० २१-२५

३३—वही, पृ० १९४, प० ३

३४—वही, पृ० ३१६

३५—ललितविस्तर, पृ० १५८, प० १८

३६—दिव्यावदान, पृ० ३१६

३७—ललितविस्तर, पृ० ३३२

३८—दिव्यावदान, पृ० ३९१, प० ६

३९—वही, पृ० २८८, प० १७

४०—वही, पृ० ३१६, प० २३-२७


१२१


१२२


१२३


१२४


१२५


१२६


१२७

का अनुमान करते है क्योकि आज दिन भी बनारस रेशमी कपडे बिनने का मुख्य केन्द्र है। लेकिन इस युग के साहित्य मे काशी के बने वस्त्रो का रेशमी होने का कही उल्लेख नहीं है। बहुत सभव है कि ये वस्त्र सूती रहे हो क्योकि प्राचीन काल मे बनारस के आसपास बहुत अच्छी कपास पैदा होती थी और यहा की कत्तिने बहुत महीन सूत कातती थी। भैषज्यगुरु-सूत्र[४१] मे कहा गया है कि काशिक वस्त्र बहुत महीन होते थे (सूक्ष्माणि जालानि च नहितानि)। काशिक वस्त्र से बहुत अच्छे पहनने के कपडे बनने का भी उल्लेख है[४२]।

फलक—लगता है यह कपडा किसी फल के रेशे से बनता था[४३]।

अपरातक—शायद कोकण मे बना कपडा। यह पता नही चलता कि कपडा सूती होता था या रेशमी[४४]।

फुट्टक—ठीक ठीक तो नही कहा जा सकता पर ऐसा अनुमान होता है कि शायद यह शब्द छीट अथवा चूदरी के लिए आया है। इस कपडे की काफी माग थी। शोपारा मे ऐसी दूकाने (फुट्टक वस्त्रावारि) थी जहा केवल यही कपडा बिकता था[४५]।

पुष्पपट्ट—फूलदार कपडा। यह ठीक पता नहीं चलता कि फूल बिने हुए, छपे हुए अथवा कसीदा किए होते थे[४६]। सम्भव है जामदानी से तात्पर्य हो।

साधुओ के वस्त्र

भिक्षुक, तथा ऋषि मुनि फलक, वल्कल, मूज, दर्भ तथा बल्वज के बने कपडे तथा ऊट, बकरे तथा मनुष्य के बालो के बने कबल पहनते थे[४७]।

चीनी और भारतीय कपडे और समूर

इस युग मे साधुओ को छोड कर और कोई चमडे के बने वस्त्र नही पहनता था। लेकिन इस युग में भारतवर्ष और रोम मे चमडे और समूरो का काफी व्यापार होता था। पेरिप्लस का कहना है कि चीनी चमडे और समूरो का निर्यात सिंध नदी पर स्थित बार्बरिकोन[४८] बदरगाह से होता था। प्लिनी के अनुसार रोम में बराबर[४९] चीनी लोहा, सूत और चमडे आते थे।

४१—गिल्गिट टेक्स्ट्स, भा० १, पृ० १२५-१२६

४२—ललितविस्तर, पृ० २६२, प० ६

४३—वही, पृ० १५८, प० १८

४४—दिव्यावदान, पृ० ३१६, पं० २३-२७

४५—वही, पृ० २६, प० ७

४६—मूलसर्वास्तिवाद विनय (?) —अग्गितविन्तर, पृ० १४१, प० २०, पृ० ३६८, प० १४

४७—वही, पृ० ३१२, पक्ति १-१३

४८—शॉफ, वही, पृ० ३८

४९—प्लिनी, ३४, ४१



१२८



१२९



१३०



१३१

बालदार खुरदरे चमडे अथवा भारी ऊनी कोट उत्तर पश्चिमी भारत से पूर्वी अफ्रिका को भेजे जाते थे। कावेरी पट्टन में भी ऊनी कपडे बिकते थे। लातीनी मे इस तरह की वस्तुओ को सामूहिक रूप से 'केपिली इडिकी'[50] कहते थे। जाच पडताल से पता लगता है कि प्लिनी कथित चीनी लोहा, सूत और चमडे वास्तव मे चीन की पैदावार नही थे ये सब वस्तुए भारतवर्ष की थीं जो पेरिप्लस के अनुसार खभात की खाडी से हो कर सुमात्री समुद्र तट के बदरगाहो को जाती थी[51]। वार्मिगटन के अनुसार सिंध नदी के बार्बरिकन बदरगाह से जिन समूरो का निर्यात होता था उसमे कुछ तो मध्य एशिया के कौशेय पथ के सार्थवाहो द्वारा चीनी रेशम के साथ बल्ख होते हुए सिंध की ओर आते थे और कुछ तिब्बती समूर होते थे[52]।

चीनी कपडे मौर्य युग मे चीनसि[53] नाम से विख्यात थे पर इस बात का अभी ऐतिहासिक प्रमाण नही मिला है कि इतने प्राचीन काल मे भी भारतवर्ष और चीन मे भी व्यापारिक सबध था। हो सकता है कि ईसवी पूर्व के भारतीय साहित्य मे शायद चीन से काफिरिस्तान, कोहिस्तान और दरद प्रदेशो से मतलब है जहा "शिना" बोली जाती है। भारत मे समूर के आयात का पता हमे महाभारत[54] मे भी लगता है।

कपडे की दूकाने

उस युग मे तरह तरह के कपडो की दूकाने होती थी। लेकिन उनमे कुछ ऐसी भी दूकाने होती थी जिनमे केवल एक ही प्रकार का कपडा मिल सकता था। प्राचीन शूर्पारक (आधुनिक सुपारा) मे कुछ ऐसी दूकानो का उल्लेख है जिनमे केवल काशी के वस्त्र (काशिक वस्त्रावारि[55]) अथवा छपे हुए कपडे (फट्टक वस्त्रावारि) मिलते थे[56]। मदुरा मे बजाजा होने का भी उल्लेख है। यहा दूकानो मे तरह तरह के कपडे तथा ऊन और सूत की पेटिया जिनमे हर पेटी मे सौ लच्छे होते थे[57] मिल सकती थी। कावेरी पट्टन मे ऐसे बुनकर (कारुक) होते थे जो अपने काम के साथ ही साथ रेशमी तथा सूती कपडो और समूरो की दलाली भी किया करते थे[58]।

५०—वार्मिगटन, वही, पृ० १५७
५१—शॉफ, वही, पृ० १७३
५२—वार्मिगटन, वही, पृ० १५८
५३—अर्थशास्त्र, पृ० ८१
५४—महाभारत, २, ५१, ८
५५—दिव्यावदान, पृ० ३१, पक्ति ४-५
५६—वही, पृ० २६, पक्ति १, ३
५७—सिलप्पदिगार, १४, पृ० २०८
५८—वही, ५, पृ० ११०

साहित्य में भारतीय वेश-भूषा के उल्लेख

उत्तर भारत की वेश-भूषा—इस युग के साहित्य मे भारतीय पहरावे का कम उल्लेख हुआ है। साधारणत लोग धोती और दुपट्टा पहनते थे। काशी के बने धोती, दुपट्टे सारे भारत मे प्रसिद्ध थे[५९]। धोती दुपट्टे की जोडी (यमली) की कीमत कभी कभी एक लाख कार्षापण[६०] तक पहुच जाती थी। राजे महाराजे कुदी किए हुए चौडे किनारे वाले नये वस्त्र पहनते थे। (आहतानि वासासि नवानि दीर्घ दशादि) ये वस्त्र उनके शरीर को पूर्ण रूप से ढँक लेते थे[६१]। यहा चौडे किनारे वाले कपडो से शायद धोती और दुपट्टे से मतलब हो। पूरे शरीर ढँकने वाले वस्त्रो से शायद कचुक से मतलब हो। बुनकर[६२] और किसान[६३] सन्नी धोती (शण शाटी) पहनते थे। छोटी धोती को प्रावरण पोत्री (गुजराती, पोत्यु[६४]) कहते थे। राजे पगडी भी (प्रवर मौलि पट्ट) पहनते थे[६५]। राजा के सिवाय मत्री कचुकी सेठ और पुरोहित भी पगडिया पहनते थे[६६]।

राजे कभी कभी सिले कपडे जो शायद कचुक रहे हो (चोडक-सघात-प्रत्यवरेण-वासस) पहनते थे[६७]। राजमहल के अगरक्षक और पहरुवे काषाय कचुक पहनते थे[६८]। योद्धा भी कचुक पहनते थे[६९] और उनकी छाती और बाह जिरह बख्तर से ढके रहते थे। (मणिवर्म पचागोपेतम्[७०])। सुदर रगो से कपडे रगने की कला (वस्त्रराग[७१]) और सिलाई की कला[७२] सीखना इस युग में शिक्षा का एक आवश्यक अग माना जाता था।

दक्षिण भारत की वेष-भूषा

प्राचीन तामिल साहित्य मे ऐसे बहुत से उल्लेख है जिनसे इस युग मे दक्षिण भारत

५९—दिव्यावदान, पृ० २९, पक्ति ६
६०—वही, पृ० २३६, पक्ति ९-११
६१—वही, पृ० ३९८, पक्ति २७-२८
६२—वही, पृ० ८३, प० २१-२५
६३—वही, पृ० ४६३, प० ८
६४—वही, पृ० २५६, प० २६
६५—वही, पृ० ४२०, प० ५-७
६६—भारतीय नाट्यशास्त्र, २३।१२९
६७—दिव्यावदान, पृ० ४१५, प० ५-७
६८—भारतीय नाट्यशास्त्र, २३।१२६
६९—ललितविस्तर, पृ० ४७, प० ७
७०—दिव्यावदान, पृ० ५४६, प० १४
७१—ललित विस्तर, पृ० १७०, पं० १
७२—वही, पृ० १८६, प० ७

की वेश-भूषा का पता चलता है। दक्षिणी राजे धोती और जडाऊदार टोपी पहनते थे[७३]। तामिल लोगो की वेश-भूषा उनके सामाजिक स्थान और जातियो को लेकर भिन्न भिन्न तरह की होती थी। शुद्ध तामिल समाज मे मध्यवर्ग के लोगो की पोशाक दो टुकडे कपडो की होती थी। एक टुकडा वे धोती की तरह पहनते थे और दूसरा सिर पर बाधते थे[७४]। अपने सिर के लबे बालो के वे सिर के ऊपर अथवा बगल मे जूडे बाधते थे। बाल बाधने के फीते चमकीली फूदनेदार डोरियो और मनको के बने होते थे[७५]। नाग जाति का एक सरदार धोती पहने बतलाया गया है[७६]। अगरक्षक सिपाही कोट पहनते थे। यवन सिपाही जो राजमहल अथवा राजशिविर पर पहरा देते थे कचुक पहनते थे[७७]। युद्धक्षेत्र मे एक तामिल राजा के शिविर पर पहरा देते हुए यवन सिपाहियो का निम्नलिखित वर्णन तामिल साहित्य में एक जगह आया है

"लोहे की सिकडियो मे नधी हुई दोहरे कपडे की कनातो से युक्त एक खेमे पर कमर पेटी से बधे ढीले और लबे कोट पहने और अपने गभीर चेहरो से दर्शको के मन मे भय उत्पन्न करने वाले यवन सिपाही पहरा दे रहे थे। जिरह बख्तर पहने इशारे से बात करनेवाला एक प्रहरी सुदर दीप से आलोकित अतर गृह पर धीरे धीरे घूमते हुए रात भर पहरा दे रहा था[७८]।"

तामिल स्त्रिया एडी तक पहुचती साडी पहनती थीं। कमर के ऊपर शरीर का नगा भाग चदन और सुगधित चूर्णो से सज्जित होता था[७९]। बार वनिताए केवल जाघो के मध्य तक पहुचती साडी पहनती थी जिसका पोत इतना महीन होता था कि शरीर नगा देख पडता था[८०]। जगली स्त्रिया हरी पत्तियो से बनी घघरिया पहनती थीं[८१]।

७३—कनक सभाई, तामिल एट्टीन हड्रेड इयर्स एगो, पृ० ११०
७४-७७—वही, पृ० ११७
७८—वही, पृ० ३७-३८
७९—वही, पृ० ११७
८०—वही,
८१—वही, पृ० ११८

आठवाँ अध्याय

गधार, मथुरा और दक्षिण की कला मे भारतीय वेश-भूषा

गधार कला मे आयी उत्तर पश्चिम भारत की वेश-भूषा मिश्रित है । धोती, दुपट्टा, चादर और पगडी जैसे शुद्ध भारतीय पहरावे के साथ साथ हम गधार कला मे पायजामा, अगरखा, कचुक और कुलाह भी देखते है जो उत्तरापथ के निवासियो के पहरावे के खास अग है । गधार के पहरावे मे यूनानी पहरावे का भी स्पष्ट प्रभाव है जो यूनानियो के साथ साथ इस देश मे पश्चिमी एशिया से आया मालूम पडता है ।

राज पुरुषो का पहनावा

गधार की मूर्तिकला मे राजे और सामत एडियो तक लटकती सिलवटदार धोती तथा कधो को ढकती तथा वायी बाहु पर होती पीछे फिकी हुई चादर पहनते थे । चादर की सिलवटो को कडा बनाये रखने के लिए एक भारी वजन चादर मे पीछे बधा रहता था (आ० १२५)[१] । चादर पहनने के इस तरीके मे कलात्मक रेखाए और सिलवटे पडती थी (आ० १२६)[२] । कभी कभी चादर छाती नही ढकती थी (आ० १२७-१२८)[३] । और कभी कभी वह पूरी छाती ढकती हुई केवल दाहिना कधा खुला छोड देती थी (आ० १२९)[४] । बैठने मे चादर दाहिने कधे और छाती को नही ढकती पर गोद मे उसकी सुदर सिलवटे देख पडती है (आ० १३०)[५] । डोरी या गोट के बने कमरबद के दोनो झब्बेदार सिरे कमर से धोती को खिसकने से रोकने के लिए आगे लटकते रहते थे[६] । गधार मे उच्चवर्ण के लोग चट्टिया अथवा खडाऊ पहनते थे ।। राजाओ के जूते रत्नजटित होते थे । कर्टियस के अनुसार राजा सुभूति ऐसे ही जूते पहनते थे[७]

पगडिया

कभी कभी खुले सिर पर जूडे मोती की लडो और रत्नो से सजे होते थे[८], लेकिन बहुधा लोग जूडे के ऊपर पगडी पहनते थे (आ० १३१-१३३)[९] । पगडियो के सबध मे एक उल्लेख-

---

१—फूशे, ल' आर्त ग्रेकोवुधीक दु गधार, भा० २, आ० ३९३, ४१७

२—फूशे, वही, आ० ४१६

३—फूशे, वही, आ० ४१५-१७

४—फूशे, वही, आ० ३९२

५—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१९१२, प्ले० ४०, ११

६—फूशे, वही, आ० ४१५

७—हिस्टो० अले०, ९।१।५

८—फूशे, वही, आ० ३९२, ३९५, ४१८ इत्यादि

९—फूशे, वही, आ० ३९४, ३९६, ३९७

नीय बात यह है कि वे सिर पर टोपी की तरह पहनी जाती थी[१०]। एक दृश्य में जहां सिद्धार्थ महाभिनिष्क्रमण के लिए उद्यत हैं सारथि छंदक उनकी बंधी पगड़ी हाथ मे लिए है[११]। यह पगड़ी किसी फूले कपड़ी की बनी है और उसका एक छोर पंखे के आकार में है। पगडी के फेंटो के अस्त व्यस्त न होने देने के लिए उस पर एक शीर्षपट्ट भी लगा हुआ है। आज दिन भी पंजाब और अफगानिस्तान मे इस तरह की पगडी बाधी जाती है।

शीर्षपट्ट बहुधा अलंकृत होते थे। कलकत्ता म्यूजियम मे जलालाबाद के पास से मिले एक शीर्षपट्ट पर चूमते हुए मिथुन का चित्र है (आ० १३४)[१२]। शीर्षपट्ट कभी कभी सुपर्ण द्वारा अपहृत नाग के चित्र से भी अलकृत होता था (आ० १३५)[१३]। कभी कभी उन पर बुद्ध मूर्ति भी खचित होती है (आ० १३६)[१४]। कभी कभी गोल शीर्षपट्ट सिंहमुख से अलकृत होता है[१५]। कभी कभी इसके आकार से मोर के फैली पूछ का बोध होता है। मोर की छाती और पीठ के उतार चढाव का उपयोग सुनार सुंदर अलकार बनाने के लिए करते थे (आ० १३३)[१६]। पखे ऐसे फैले ऊपरी छोर के नीचे पगड़ी की फेंटे सजायी जाती थी। कभी कभी इसके तीन फेंटे होते थे[१७] और इसकी सजावट फेंटो के अंदर से बीचो-बीच जाते हुए एक सिकुडे कपडे से और अधिक बढ जाती थी। शीर्षपट्ट या मिथुन से सुसज्जित आधार पगडी के बीचोबीच लगा हुआ है। रत्नो और गरुड़ मूर्तियो से खचित एक पट्टी ललाट के चारो ओर है। ये पट्टिया और अलकार दो बंधनो से जिनके छोर पीछे हवा में फडफडा रहे है बंधे है (आ० १३१)[१८]।

गंधार की मूर्ति कला मे पगडियाँ

१—चक्करदार लट्टू वाली पगडी (आ० १३७)[१९]।

२—हल्की पगडी जिनके दोनो छोर सिर पर आड़े बन्द होते हुए पीछे लटका दिये गए है (आ० १३८)[२०]।

१०—फूशे, वही, भा० २, पृ० १८६

११—फूशे, वही, भा० १, आ० १७८ ए०, १८० बी, भा० २, आ० ४४७

१२—फूशे, वही, भा० १, पृ० १८१, नो० ३

१३—फूशे, वही, भा० २, आ० ३२०, ३९८, ४१५

१४—फूशे, वही, आ० ३९९, ४२६

१५—फूशे, वही, आ० ३०६, ४६५

१६—फूशे, वही, आ० ३६७

१७—फूशे, वही, भा० १, प्लेट १

१८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३९३-९४

१९—ए० एस० आ० इ०, एनु० रि०, १९१२-१३, प्लेट ६ ए

२०—वही, १९१५-१६, प्लेट २० ई०

आठवाँ अध्याय

गधार, मथुरा और दक्षिण की कला मे भारतीय वेश-भूषा

गधार कला मे आयी उत्तर पश्चिम भारत की वेश-भूषा मिश्रित है । धोती, दुपट्टा, चादर और पगडी जैसे शुद्ध भारतीय पहरावे के साथ साथ हम गधार कला मे पायजामा, अगरखा, कचुक और कुलाह भी देखते है जो उत्तरापथ के निवासियो के पहरावे के खास अग है । गधार के पहरावे मे यूनानी पहरावे का भी स्पष्ट प्रभाव है जो यूनानियो के साथ साथ इस देश मे पश्चिमी एशिया से आया मालूम पडता है ।

राज पुरुषो का पहनावा

गधार की मूर्तिकला मे राजे और सामत एडियो तक लटकती सिलवटदार धोती तथा कधो को ढकती तथा बायी बाहु पर होती पीछे फिकी हुई चादर पहनते थे । चादर की सिलवटो को कडा बनाये रखने के लिए एक भारी वजन चादर मे पीछे बधा रहता था (आ० १२५)[१] । चादर पहनने के इस तरीके मे कलात्मक रेखाए और सिलवटे पडती थी (आ० १२६)[२] । कभी कभी चादर छाती नही ढकती थी (आ० १२७-१२८)[३] । और कभी कभी वह पूरी छाती ढकती हुई केवल दाहिना कधा खुला छोड देती थी (आ० १२९)[४] । बैठने मे चादर दाहिने कधे और छाती को नही ढकती पर गोद मे उसकी सुदर सिलवटे देख पडती है (आ० १३०)[५] । डोरी या गोट के बने कमरबद के दोनो झब्बेदार सिरे कमर से धोती को खिसकने से रोकने के लिए आगे लटकते रहते थे[६] । गधार मे उच्चवर्ण के लोग चट्टिया अथवा खडाऊ पहनते थे । राजाओ के जूते रत्नजटित होते थे । कर्टियस के अनुसार राजा सुभूति ऐसे ही जूते पहनते थे[७]

पगडिया

कभी कभी खुले सिर पर जूडे मोती की लडो और रत्नो से सजे होते थे [८], लेकिन बहुधा लोग जूडे के ऊपर पगडी पहनते थे (आ० १३१-१३३)[९] । पगडियो के सबध मे एक उल्लेख-

१—फूशे, ल' आर्त ग्रेकोबुधीक दु गधार, भा० २, आ० ३९३, ४१७

२—फूशे, वही, आ० ४१६

३—फूशे, वही, आ० ४१५-१७

४—फूशे, वही, आ० ३९२

५—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१९१२, प्लै० ४०, ११

६—फूशे, वही, आ० ४१५

७—हिस्टो० अले०, ९।१।५

८—फूशे, वही, आ० ३९२, ३९५, ४१८ इत्यादि

९—फूशे, वही, आ० ३९४, ३९६, ३९७

३—एक हलकी पगडी जिस पर एक तिकोना अलकार लगा है (आ० १३९)[२१]

४—एक हलकी मोटे फेंटो वाली पगड़ी जिसका सिर के ऊपर वाला सिरा पग्गाकार है (आ० १४०)[२२]

५—शीर्षपट्ट के साथ एक भारी पगड़ी जिसके लट्टू से एक एक मोती की लड़ दोनो ओर बधी है (आ० १४१)[२३]।

गधार की मूर्तिकला मे सेठ दाताओं को धोती, दुपट्टा और चादर पहने दिखाया गया है (आ० १४२)[२४]। यही पोशाक व्यापारियो[२५] और गृहपतियो की भी थी[२६]। सरदी में वे कचुक पहनते थे जिसके दाहिने[२७] या वायें ओर[२८] घुटनो के ऊपर एक कटाव होता था। एक चुस्त बाहो वाले लबे कोट मे गले से ले कर छाती के मध्य तक अथवा नाभि तक एक खडी पट्टी का मतलब शायद तुकमा-घुडी की कतार से है[२९]। सहरी बहलोल से मिली एक दाता की मूर्ति एक चुस्त बाहो वाला कचुक पहने है । चादर का एक कोना दाहिने काख से निकाल कर बाये कधे पर डाल दिया गया है जिससे छाती ढक जाती है। वह एक चपकी टोपी भी पहने है (आ० १४३)[३०]। पुरुष शलवार भी पहनते थे जो इत्सिग के अनुसार ईरान, तिब्बत, काशगर और तमाम तुर्किस्तान के पहरावे का एक अग था। समूरी अस्तर वाला चोगा कभी कभी कंचुक के ऊपर पहन लिया जाता था (आ० १४४)[३१]

सिपाहियो की वेश-भूषा

गधार की मूर्तियो मे दो तरह के सिपाही मिलते है जिनकी पोशाके भिन्न भिन्न होती है (आ० १४५-१५०)[३२]। एक तरह के सिपाही तो लगता है किसी जगली जाति के थे। धोती, पेटी, रस्सी का बना कमरबद और दाहिने कधे से छाती पर होते हुए कामरबद से गुथा दुपट्टा पहनते है (आ० १४५-१५०)। उनके बाल खुले अथवा पगडी से ढके होते है। एक

२१—वही, प्ले० जे

२२—वही, १९११-१२, प्ले० ४२, १७

२३—वही, प्ले० ४०, १२

२४—फूशे, वही, आ० ३५०

२५—फूशे, वही, आ० ४४०

२६—फूशे, वही, आ० ३४५, ३४६

२७—फूशे, वही, आ० ३४६

२८—फूशे, वही, आ० ३५१, ३५३

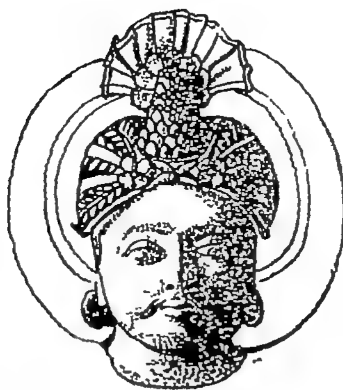
२९—वही, भा० २, आ० ३३०

३०—ए० एस० ई०, एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४१, १८

३१—फूशे, वही, आ० ३५२

३२—फूशे, वही, भा० १, आ० २१, २०१, २०४, २८२

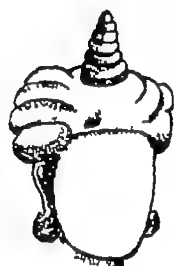

१३२

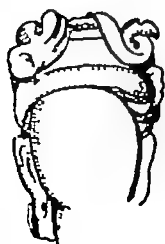

१३३


१३४


१३५


१३६


१३७


१३८


१३९


१४०


१४१


१४२

३—एक हलकी पगडी जिस पर एक तिकोना अलकार लगा है (आ० १३९)[२१]

४—एक हलकी मोटे फेटो वाली पगड़ी जिसका सिर के ऊपर वाला सिरा पंखाकार है (आ० १४०)[२२]

५—शीर्पपट्ट के साथ एक भारी पगडी जिसक लट्टू स एक एक माती की लड़ दोनो ओर वधी है (आ० १४१)[२३]।

गधार की मूर्तिकला मे सेठ दाताओं को धोती, दुपट्टा और चादर पहने दिखाया गया है (आ० १४२)[२४]। यही पोशाक व्यापारियो[२५] और गृहपतियो की भी थी[२६]। सर्दी में वे कचुक पहनते थे जिसके दाहिने[२७] या वायें ओर[२८] घुटनो के ऊपर एक कटाव होता था। एक चुस्त वाहो वाले लवे कोट मे गले से ले कर छाती के मध्य तक अथवा नाभि तक एक खडी पट्टी का मतलव शायद तुकमा-घुडी की कतार से है[२९]। सहरी वहलोल से मिली एक दाता की मूर्ति एक चुस्त वाहो वाला कचुक पहने है । चादर का एक कोना दाहिने काख से निकाल कर वाये कधे पर डाल दिया गया है जिससे छाती ढक जाती है। वह एक चपकी टोपी भी पहने है (आ० १४३)[३०]। पुरुष शलवार भी पहनते थे जो इरिसग के अनुसार ईरान, तिव्वत, काशगर और तमाम तुर्किस्तान के पहरावे का एक अंग था। समूरी अस्तर वाला चोगा कभी कभी कचुक के ऊपर पहन लिया जाता था (आ० १४४)[३१]

सिपाहियो की वेश-भूषा

गंधार की मूर्तियो मे दो तरह के सिपाही मिलते है जिनकी पोशाके भिन्न भिन्न होती है (आ० १४५-१५०)[३२]। एक तरह के सिपाही तो लगता है किसी जगली जाति के थे। धोती, पेटी, रस्सी का वना कमरवद और दाहिने कधे से छाती पर होते हुए कमरवद मे खुसा दुपट्टा पहनते है (आ० १४५-१५०)। उनके वाल खुले अथवा पगडी से ढके होते है। एक

२१—वही, प्ले० जे

२२—वही, १९११-१२, प्ले० ४२, १७

२३—वही, प्ले० ४०, १२

२४—फूशे, वही, आ० ३५०

२५—फूशे, वही, आ० ४४०

२६—फूशे, वही, आ० ३४५, ३४९

२७—फूशे, वही, आ० ३४६

२८—फूशे, वही, आ० ३५१, ३५३

२९—वही, भा० २, आ० ३७०

३०—आ० एस० ई०, एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४१, १८

३१—फूशे, वही, आ० ३५२

३२—फूशे, वही, भा० १, आ० ३१, २०१, २०४, २९२

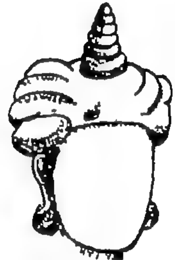

१३२


१३३

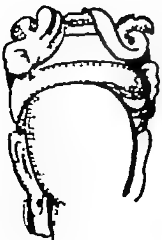

१३४


१३५


१३६

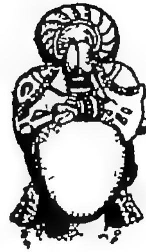

१३७'


१४२


१३८


१३९


१४०


१४१

३—एक हलकी पगड़ी जिस पर एक तिकोना अलकार लगा है (आ० १३९)[२१]

४—एक हलकी मोटे फेंटों वाली पगड़ी जिसका सिर के ऊपर वाला सिरा पंखाकार है (आ० १४०)[२२]

५—शीर्षपट्ट के साथ एक भारी पगड़ी जिसक लट्टू स एक एक मोती की लड़ दोनो ओर बधी है (आ० १४१)[२३]।

गधार की मूर्तिकला मे सेठ दाताओ को धोती, दुपट्टा और चादर पहने दिखाया गया है (आ० १४२)[२४]। यही पोशाक व्यापारियो[२५] और गृहपतियो की भी थी[२६]। सरदी में वे कचुक पहनते थे जिसके दाहिने[२७] या वायें ओर[२८] घुटनों के ऊपर एक कटाव होता था। एक चुस्त बाहो वाले लबे कोट मे गले से ले कर छाती के मध्य तक अथवा नाभि तक एक खडी पट्टी का मतलब शायद तुकमा-घुडी की कतार से है[२९]। सहरी बहलोल से मिली एक दाता की मूर्ति एक चुस्त बाहो वाला कचुक पहने है । चादर का एक कोना दाहिने काख से निकाल कर वायें कधे पर डाल दिया गया है जिससे छाती ढंक जाती है। वह एक चपकी टोपी भी पहने है (आ० १४३)[३०]। पुरुष शलवार भी पहनते थे जो इत्सिग के अनुसार ईरान, तिब्बत, काशगर और तमाम तुर्किस्तान के पहरावे का एक अंग था। समूरी अस्तर वाला चोगा कभी कभी कंचुक के ऊपर पहन लिया जाता था (आ० १४४)[३१]

सिपाहियो की वेश-भूषा

गधार की मूर्तियो में दो तरह के सिपाही मिलते है जिनकी पोशाकें भिन्न भिन्न होती हैं (आ० १४५-१५०)[३२]। एक तरह के सिपाही तो लगता है किसी जंगली जाति के थे। धोती, पेटी, रस्सी का बना कमरबद और दाहिने कधे से छाती पर होते हुए कमरबंद से खुसा दुपट्टा पहनते है (आ० १४५-१५०)। उनके बाल खुले अथवा पगडी से ढके होते है। एक

२१—वही, प्ले० जे

२२—वही, १९११-१२, प्ले० ४२, १७

२३—वही, प्ले० ४०, १२

२४—फूशे, वही, आ० ३५०

२५—फूशे, वही, आ० ४४०

२६—फूशे, वही, आ० ३४५, ३४८

२७—फूशे, वही, आ० ३४६

२८—फूशे, वही, आ० ३५१, ३५३

२९—वही, भा० २, आ० ३७०

३०—ए० एस० ई०, एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४१, १४

३१—फूशे, वही, आ० ३५२

३२—फूशे, वही, भा० १, आ० २१, २०१, २०४, २९२

दूसरी तरह के सिपाही (आ० १४६-१४९)[33] शीर्ष कटाह या खौद और असीरिय ढग का जिरह बख्तर पहने है[34]। फूशे का विचार है ये भाडे के सिपाही पश्चिम से आते थे[35]। यह अधबहिया जिरह बख्तर घुटनो तक पहुचता है। कडीदार जिरह बख्तर छाती पर बाहुओ पर कस कर बैठता था और उसकी कडिया सेहरे के आकार की (आ० १४९)[36] अथवा नग के आकार की (आ० १४८) होती थी[37]। ये कडिया तिब्बती अथवा जापानी जिरह बख्तरो की तरह एक दूसरे से पतली डोरियो से बधी होती थी। बहोलियो (आस्तीनों) के किनारे मजबूती के लिए रस्सियो से बंधे होते थे। घघरियां चौकोर चिप्पियो की समानातर पक्तियो से बनी होती थी और इनके किनारे रस्सियो से मजबूती के लिए बधे होते थे। सिपाही कमरबद और परतले भी पहनते थे। बख्तर का गला समभुज कोण (आ० १४९), अथवा अर्धवृत्ताकार होता था (आ० १४७)। इन बख्तरबद सिपाहियो मे हम दो प्रकार देख सकते है। इनमें एक तो पगडी कचुक और धोती पहनता था (आ० १४९) और दूसरा यूनानी खौद और जूते। सिपाही कभी कभी जाघिया भी पहनते थे[38]। पर जाघिया केवल सिपाहियो के पहरावे तक ही सीमित न था। समय आने पर सामत और राजे भी उसे पहन सकते थे।

शिकारियों इत्यादि की वेश-भूषा

गधार की मूर्तिकला मे हमे शिकारी के दो बार दर्शन होते है (आ० १५१)[39]। वह केवल धोती पहरे दिखाया गया है। खेतिहर (आ० १५२)[40] अथवा मजदूर (आ० १५३)[41] केवल एक छोटी धोती अथवा लगोटी पहनते थे। पहलवान भी लगोट ही पहनते थे[42]। दगल के वक्त शाक्य पुरुष जाधिया पहनते थे (आ० १५४)[43]। ब्राह्मण और ब्रह्मचारी धोती और बाए कधे से लटकती चादर पहनते थे। उनके बाल पीछे लटकते थे पर सिर पर बद्ध शिखा होती थी (आ० १५५)[44]।

३३—वही, आ० २०२
३४—असीरिय जिरह बख्तर से तुलना के लिए देखो स्टाइन, एशंट खोतान, पृ० २५२, प्लेट० १६, रुइस आफ डेसर्ट कथे, भा० १, पृ० ४४३, आ० १३८
३५—फूशे, वही, भा० २, पृ० ४०२
३६—फूशे, वही, भा० १, आ० २०२
३७—वही, भा० १, आ० २०४
३८—वही, भा० १, आ० २७०
३९—वही, भा० १, आ० १३८, १८७ बी
४०—वही, भा० १, आ० १७५-७६
४१—वही, भा० १, आ० २६६; भा० २, आ० ३०२
४२—वही, भा० २, आ० ३०३
४३—वही, भा० १, आ० १७२
४४—वही, भा० २, आ० ४३१

टोपियाँ

विदेशी टोपिया पहनते थे। एक कुलाहनुमा टोपी जिसके पेंदे मे चारो ओर गोट लगी रहती थी कभी कभी सिर पर पुलखे तौर से पड़ी रहती थी (आ० १५६)[४५]। कभी कभी टोपी की चोटी पर फूदने होते थे और वह अर्धचद्र से भूपित होती थी। यह टोपी एक रुमाल से जिसके दोनो सिरे पीठ पर लहराते थे, सिर के साथ वधी होती थी (आ० १५७)[४६]। एक गुवद के आकार की टोपी जिसके सिरे पर सकरमुद्धीनुमा गाठ (सरकने वाली डेढ गाठ) पडी होती थी और जिसका किनारा मोतियो से सजा रहता था, पहनी जाती थी (आ० १५८)[४७]। कटावदार किनारे और गुम्मददार सिरे वाली टोपिया या खोद वहुधा विदेशी सिपाही पहना करते थे (आ० १५९)[४८]।

स्त्रियो की वेश-भूषा

गधार की कला मे स्त्रियो की वेश-भूपा के तीन कपड़े स्पष्ट है—यथा आस्तीन वाले कचुक, साडी जो सारे शरीर को ढक लेती थी, और एक चादर अथवा दुपट्टा जो कधो को ढाँकता हुआ वाहुओ पर गिरता था (आ० १६०-१६१ ए० वी०)[४९]। कभी कभी चादर का एक छोर कमर में खोस लिया जाता था (आ० १६२-१६३)[५०]। भुल्ला प्राय घुटनो तक पहुँचता था (आ० १६४-१६५)[५१] और अपवाद स्वरूप कभी कभी वह आगे खुला भी रहता था (आ० १६६)[५२]। इस पूरी वाहो वाले और कमर के जरा नीचे पहुँचते हुए खुले कोट की काट ऐसी होती थी जिससे नाभि खुली रह जाय। ऐसा लगता है कि यह कोट वीच मे लगे एक वटन से वद होता था । कभी कभी यह कोट एक चौथाई वाँहो वाला होता था और नाभि तक पहुँचता था[५३]। एक दूसरी तरह का पूरी वाहो वाला कोट नाभि को ढक लेता था (आ० १६६)[५४]। कचुक साडी के ऊपर या नीचे पहना जाता था[५५]। कभी कभी साड़ी पहनने के दोनो तरीके साथ साथ देख पड़ते है (आ० १६७-१६८)[५६]। स्त्रियो के कचुक लवे और कसे होते

४५—वही, भा० २, आ० ३५४
४६—वही, भा० २, आ० ३५३
४७—ए० एस० आई० एन० रि०, १९११-१२, प्ले० ४०-५०
४८—ए० एस० आई० एन० रि०, १९१०-११, प्ले० ३२ सी०
४९—फूशे, भा० २, आ० ३३५, ३७८
५०—फूशे, वही, भा० २, आ० ३१८, ३१९
५१—फूशे, वही, भा० १, आ० १०६, भा० २, आ० ३१९, ३३६
५२—फूशे, वही, भा० २, आ० ३३५
५३—ए० एस० आई०, एन० रि०, १९१९-२०, प्ले० ९
५४—वही, १९२५-२६, प्ले० ६६
५५—फूशे, भा० १, आ० १३९-१४०, २४४-४५, भा०, २, आ० ३१८-१९
५६—वही, भा० १, आ० १३३ वी



१४३



१४४



१४५



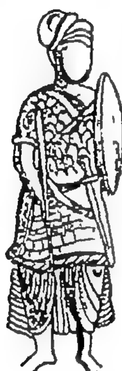
१४६



१४७



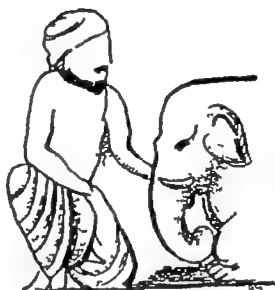
१४८



१४९



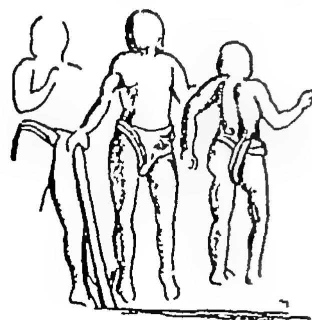
१५०



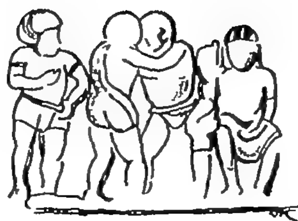
१५१



१५२



१५३



१५४



१५५

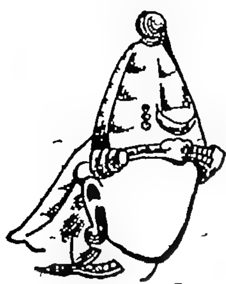


१५५

थे और उन पर सिलवटें पडती है (आ० १६९)[५७]। कभी कभी स्त्रियाँ स्तनपट्ट भी पहनती थी[५८]।

गंधार की मूर्तियो और अर्धचित्रो से पता चलता है कि उस युग की स्त्रियाँ साडियां दो तरह से पहनती थी। प्राय साडी का एक भाग कमर मे लपेट लिया जाता था और दूसरा हिस्सा चुन कर पीछे खोस लिया जाता था (आ० १६३)[५९]। साडी पहनने की दूसरी रीति में साडी का एक सिरा कमर मे लपेट लिया जाता था और दूसरा सिरा वायें कधे पर डाल दिया जाता था (आ० १६२)[६०]। कभी कभी साडी इतनी वडी होती थी कि वह पैरो और शरीर को ढक लेती थी और उसका खाली हिस्सा आगे (आ० १७०)[६१] या पीछे (आ० १७१)[६२] लटका रहता था। साडी पहनने की एक तीसरी रीति मे (आ० १६१ ए० वी०)[६३] साडी का छूट्टा भाग स्तन पर होता हुआ वाये कधे पर काटे से लगा दिया जाता था। साडी का छुट्टा छोर कभी कभी साडी पर तिरछा डाल दिया जाता था जिससे दाहिना स्तन खुला रह जाता था (आ० १७२)[६४]। साडी ढीली तरह से भी पहनी जाती थी। ऐसी साडी का एक छोर जाघो में ऐसे लपेट लिया जाता था कि कमर खुली रह जाती थी। साडी का दूसरा छोर वाये हाथ से लिपटा हुआ उसी ओर लटका रहता था। साडी पहनने की इस रीति में वायी छाती और पीठ खुली रह जाती थी (आ० १६६)। इस वात के भी उदाहरण है जव साडी चादर की तरह वायां कधा ढाकते हुए पहनी जाती थी (आ० १७३)[६५]। दुपट्टा अथवा चादर अक्सर कधो पर डाल दिये जाते थे और उसका एक छोर कमर के पास फेंटे में खोस लिया जाता था। एक विचित्र ध्यान देने योग्य वात यह है कि गधार की स्त्रियाँ आधुनिक दक्षिणी स्त्रियो की तरह सकच्छ साडी पहनती थी। स्त्रियाँ अक्सर अपने वाल शेखरक से सजाती थी, पर यदा कदा वे भारी काम के मुकुट भी पहनती थ (आ० १७४)[६६]।

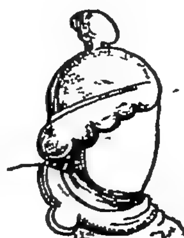
५७—वही, भा० २, आ० ३१८, ३७४
५९—फूशे, वही, भा० २, आ० ३१९
६०—वही, आ० ३१८-३१९
६१—फूशे, वही, भा० १, आ० १५२
६२—फूशे, वही, भा० १, आ० २६१
६३—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७८
६४—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७५
६५—फूशे, वही, भा० २, आ० ३७७
६६—ए० एम० आई०, एन० रि० १९११-१२, प्ले० ४१, १६



१५७



१५८



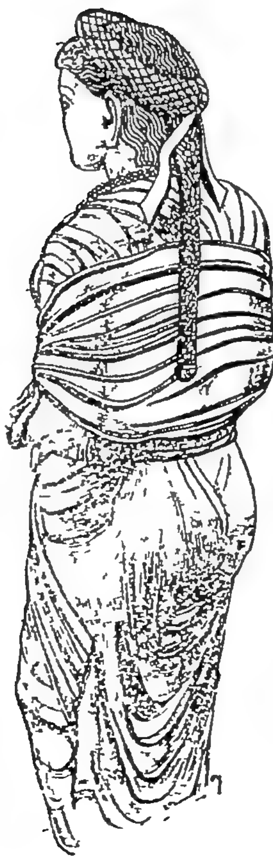
१५९



१६०



१६१ ए



१६१ बी



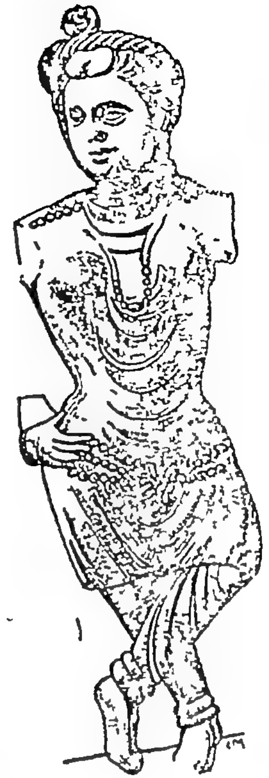
१६२



१६३



१६४



१६५



१६६



१६७



१६८



१६९

यवनी अथवा विदेशी स्त्रियाँ राजा के अगरक्षिका का काम करती थी[६७]। गंधार की कला में उनका चित्रण हुआ है । इनकी वेश-भूषा दो तरह की होती है यथा यूनानी अथवा भारतीय । यूनानी पोशाक मे यवनियाँ घुटनो के कुछ ऊपर तक पहुँचता कचुक तथा कमरबद युक्त चुन्नटदार घाघरा पहनती है । कधो पर पडे दुपट्टे के दोनो सिरे कचुक में लगी कडियो से निकलते है और स्तनो को ढाकते हुए कमरबद में खुस जाते है। वे कुलाहदार टोपिया भी पहनती है (आ० १७५)[६८]। दूसरी तरह की अगरक्षिकाए साडी पहनती है जिसका एक हिस्सा तो कमर से और दूसरा छुट्टा हिस्सा तिरछे बल छाती पर होता हुआ बायें स्तन को ढाकता है । वे शिखाकार बँधा हुआ एक ढीला कमरबद और एक भारी चादर अथवा दुपट्टा भी पहनती है (आ० १७६)[६९]।

कुषाणयुग की मथुरा की मूर्तिकला में प्रदर्शित वेश-भूषा

पुरुषो की वेश-भूषा

मथुरा के कुषाणयुग की मूर्तिकला में तत्कालीन भारतीयो और विदेशियो की वेश-भूषा सबधी प्रचुर सामग्री है। भारतीय प्राय सकच्छ धोती, जिसका अधिक हिस्सा कमर मे लिपटा होता था और बायी ओर फदेदार हो जाता था, पहनते थे[७०]। वे कधो पर होता तथा केहुनियो पर गिरता दुपट्टा और नाभि के पास खुसा और घुटनो के बीच लटकता पटका भी पहनते थे (आ० १७७)। कभी कभी उच्च वर्ण के नागरिक अपनी धोती खिसकने से बचाने के लिए शिखाकार मुद्धीवाला कमरबद जिसका एक झब्बेदार छोर पैरो के बीच मे लटका करता था, पहनते थे । वे एक तरह का दुपट्टा भी पहनते थे जिसका एक सिरा बाये कधे से पीठ पीछे होता हुआ तथा दाहिने घुटने को ढाकता हुआ फदे के आकार का हो कर बायी कलाई पर स्थिर हो जाता है (आ० १७८)[७१]। कभी कभी रस्सी की तरह बटा कमरबद ढीली तरह से पहना जाता था (आ० १७९)[७२]। दुपट्टे और कमरबदो के पहनने के और बहुत से तरीके दिखाये गये है (आ० १८०-१८३)[७३]। कमरबद के कई फेंटो से बंधी लुगी घुडसवार, सईस इत्यादि पहनते थे (आ० १८४)[७४]।

६७—मेगस्थनीज, फ्रे० २३, स्त्रावो, १५।१।५५, सिलवालेवी, ल थियेत्र आदिया, २६, १२६, २४६, अर्थशास्त्र, १, २१, जातकमाला, पृ० १८५

६८—फूशे, वही, भा० २, आ० ३४२

६९—फूशे, वही, भा० २, आ० ३४३

७०—फोगेल, ला स्कल्प्त्यूर द मथुरा, प्ले० ७, सी० डी०

७१—वही, प्ले०, ३५ बी०

७२—वही, प्ले० २१ बी०

७३—ए० एस० आई० एन० रि० १९११-१२, प्ले० ५७, आ० १२-१५

७४—फोगेल, वही, प्ले० ८ बी०



१७०



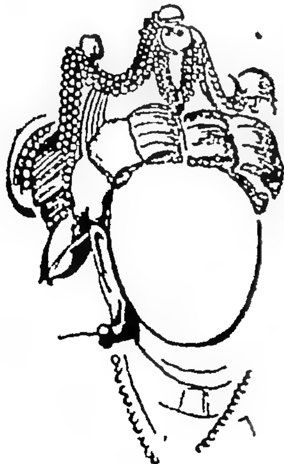
१७१



१७२

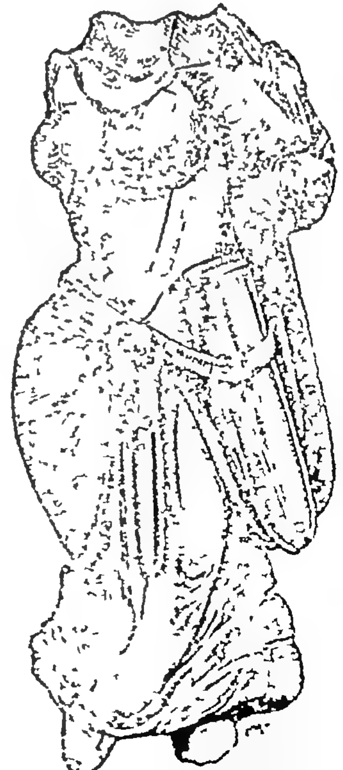


१७३



१७४





१७६



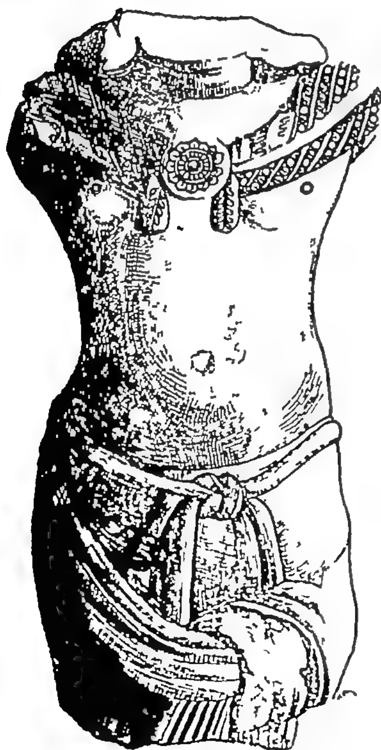
१७७



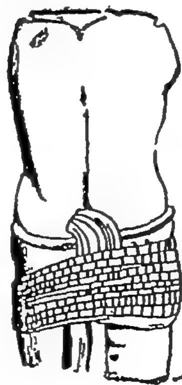
१७८



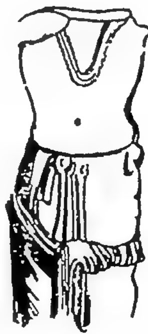
१७९



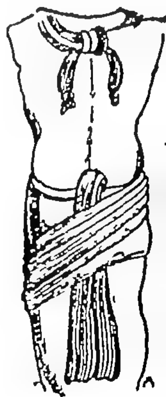
१८०



१८१



१८२



१८३

पगड़ियाँ

पुरुष प्राय पगडी अथवा उष्णीष पहनते थे। यह पगडी प्राय सादे कपडे की लवी छीर या पट्टी से वनी होती थी और मस्तक पर जूडे के चारो ओर लपेट ली जाती थी (आ० १८५)[७५]। पर रईस लोग प्राय कामदार पगडी जिन पर सोने के वृत्ताकार शीर्षपट्ट लगे होते थे पहनते थे (आ० १८६)[७६]। कभी कभी शीर्षपट्ट चपकनदार और वदामा आकार के होते थे (आ० १८७)[७७]। कभी कभी फुल्लो से सजी एक धातु की पट्टी से लगा शीर्षपट्ट पगडी पर पहन लिया जाता था (आ० १८८)[७८]। कभी कभी वदामा शीर्षपट्ट कलगी जैसे आभूषण से सज्जित होता था (आ० १८९)[७९]।

एक दूसरे तरह के पहिरावे मे जो शक राजाओ और सिपाहियो को प्रिय था कंचुक, शलवार, टोपी और पूरे पैर के जूते होते थे। शको की प्रतीक वेश-भूषा का चित्र हमे मथुरा के पास माट से मिली कनिष्क की बे सिर वाली मूर्ति से मिलता है। मूर्ति का दाहिना हाथ गदा पर और वायाँ तलवार की मूठ पर है। घुटने के नीचे तक पहुचता कचुक एक कमरपेटी से जिसके दो चौकोर टिकरे सामने देख पडते है वधा है। कमरपेटी का वाकी हिस्सा एक चोगे से जो कचुक से वडा है और घुटनो के नीचे तक पहुचता है ढका हुआ है। कचुक और चुगा सादे कपडे के वने मालूम पडते है। मूर्ति के तस्मेदार भारी वूट हमारा ध्यान खीचते है (आ० १९०)[८०]। ऐसे जूतो को वृहद् कल्पसूत्रभाष्य मे कफुस्स कहा गया है जो ईरानी कफ्स का अपभ्रंश मात्र है।

मथुरा मे मिली एक दूसरे शक राजा की मूर्ति एक कचुक पहने है जिसमे छाती के नीचे तीन इच चौडी दोहरी कामदार गोट घुटनो से होती हुई नीचे चली गयी है। दाहिनी मोहरी मे भी ऐसी ही गोट लगी है। पूरे कचुक मे जामदानी मलमल की तरह फुल्ले और दाहिनी मोहरी के सिरे पर तीन इच व्यास का एक उभरा वृत्त है। आधुनिक कोट की तरह कचुक के दोनो भाग गले के ठीक नीचे जुट कर कुछ नीचे जुटते है, पर इस कचुक और आधुनिक कोट में यह अतर है कि कचुक मे न तो गला है न लौटन (लेपल्स)। ऐसी अवस्था मे गले के स्थान पर एक त्रिभुजाकार कटाव पड जाता है जिसमे से हम गले के चारो ओर पतली सिलाई वाला नीचे का वस्त्र देख सकते है। वूट आगे ऊपर तक तीन इच चौडी पट्टियो से

७५—स्मिथ, जैन स्तूप ऑफ मथुरा, प्ले० १६, २

७६—वही, प्ले० १०१, १

७७—वही, प्ले० ६४

७८—फोगेल, वही, प्ले० ३६ वी०

७९—अग्रवाल, हैंडवुक ऑफ दि कर्जन म्यूजियम ऑफ आँकियोलोजी, मथुरा, प्ले० १६, ३३

८०—ए० एस० आई०, एन० रि०, १९११-१२, पृ० १२२, प्ले० ५३, ३

८१—वृहद् कल्पसूत्र भाष्य



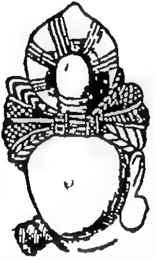
१८४



१८५



१८६



१८७



१८८



१८९



१९०

सजे हैं। एडी से जरा हट कर एक तस्मा है। जूतो के साथ रकाव जैसी वस्तु भी लगी है (आ० १९१)[८२]।

मथुरा की मूर्तिकला मे एक और तरह का कंचुक आया है जो घुटने तक पहुँचता है (आ० १९२ ए० वी०)[८३]। यह कचुक कारचोवी गोट से सजा है। कमरपेटी गोल और चौखूटे टिकरो से बनी है । टिकरे अलकारिक मत्स्य और कुलाह पहने अश्वारोहियो की आकृति से सजे है। ये दोनो अलकार कुषाणयुग मे साधारणत व्यवहार मे आते थे[८४]।

मथुरा से मिली सूर्य की एक बैठी प्रतिमा एक छोटी वहोलियो वाला तथा शरीर और वाहुओ पर चुस्ती से वैठने वाला कचुक पहने है (आ० १९३)[८५]। इसका गला गोल है तथा मोहरियो पर किनारेदार गोट है। कचुक के वीच मे भी ऊपर से नीचे तक गोट लगी है ।दोहरे फेंटे वाले कमरवद मे एक धुरा खुसा है। टोपी पर गया हुआ काम है ।

एक दूसरी मूर्ति जो दाढी और घुघराले वाल से एक शक अथवा ईरानी की मूर्ति प्रतीत होती है एक गहरा काम किया हुआ कचुक पहने है ।कारचोवी के अलकार मेहराव-दार खानो में बने है। बुदकीदार (Beading) अथवा डोरीदार काम एक विचले खाने को जिसके चारो ओर सीधी और खडी रेखाओ और विंदुओ से छोटे खाने भरे हुए है, घेरे हुए हैं। रूमाल पीठ पर गिरता हुआ दिखलाया गया है, और इसके दोनो सिरे छाती पर वायी ओर पहने हुए एक दूसरे छेद से निकाल दिये गए है । कुलाहनुमा टोपी के किनारे पर काम किया हुआ है उसके दाहिनी ओर चंद्रमा और सूर्य की प्रतिकृतिया वनी हुई है (आ० १९४)[८६]।

विदेशी ईरानी अथवा शक प्राय टोपिया पहनते थे । मथुरा से मिला हुआ एक मूर्ति का सिर एक कुलाहनुमा टोपी, जो सिरा जरा आगे झुकने से पीछे की ओर टेढी पड जाती है पहने है।(आ० १९५)[८७]। टोपी के वाये हिस्से पर सकेत नाम (मोनोग्राम) जैसा कसीदा किया हुआ है । टोपी नमदे अथवा कपडे के दो टुकडो को सी कर वनी है । टोपी में यह सिलाई सिरे से लेकर नीचे तक साफ साफ दिखलायी देती है । टोपी का किनारा एक गोट से जिसमे छोटे छोटे टुकड़ो की तीन पक्तिया है सजा है। शायद इन टुकडो से रत्नो का मतलब हो (आ० १९६)[८८]। एक कुलाहनुमा टोपी जिसका सिरा पीछे की ओर झुकने में

८२—ए० एस० इ० रि, १९११-१२, पृ० १२४, प्ले० ५४, ४-६

८३—वही, प्ले० ५५, ७-८

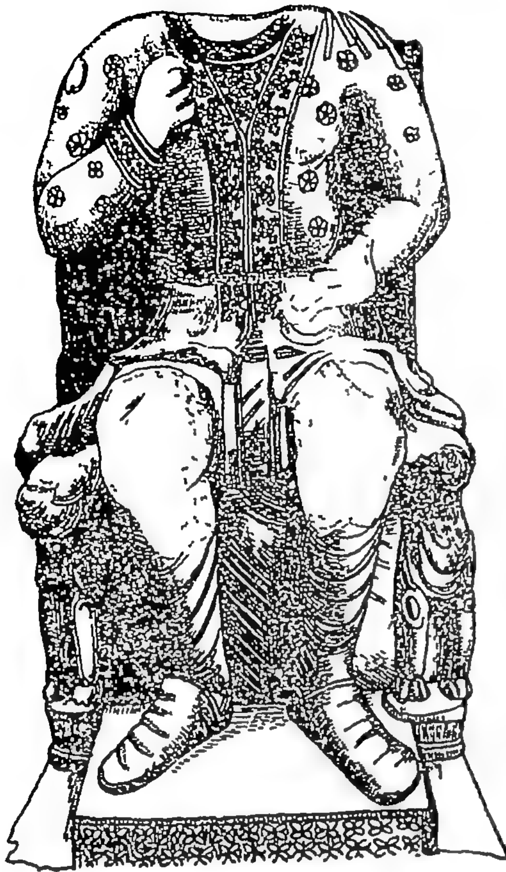
८४—वही, पृ० १२५

८५—वोगेल, वही, प्ले० ३३ वी०

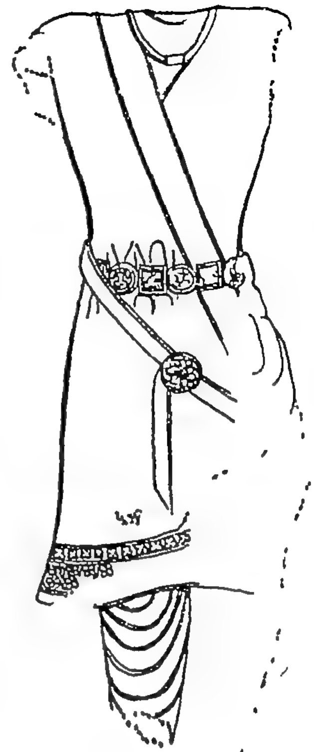
८६—वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, प्ले० २१, आ० ४१

८७—फोगेल, वही, प्ले० ४ ए०

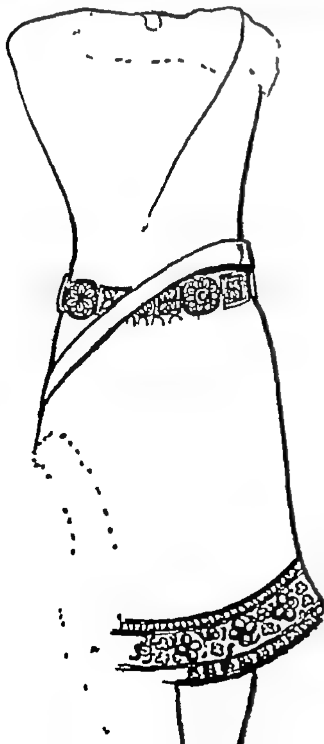
८८—वही, प्ले० ४ वी०



१११



११२ ए०

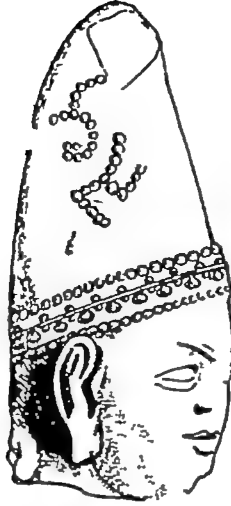




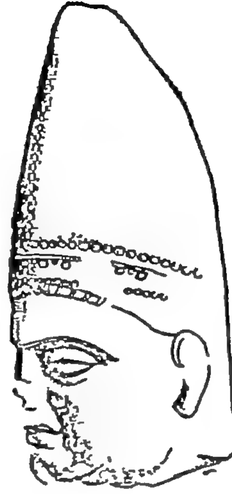
११३



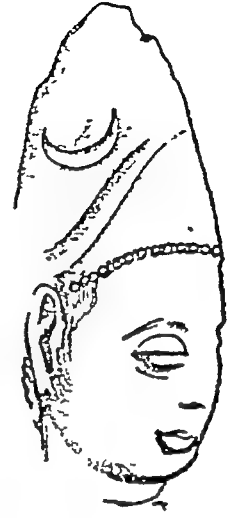
१९४



१९५



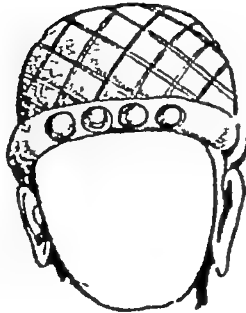
१९६



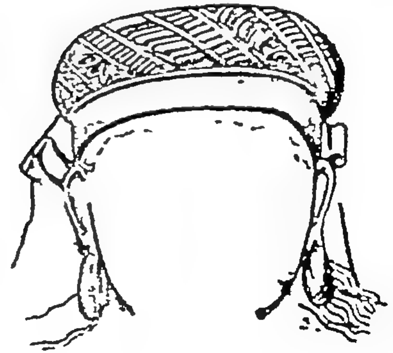
१९७



१९८



१९९



२००

उसमें कुछ बल आ गया है अक्सर पहनी जाती थी (आ० १९७)[८९]। टोपी के दाहिने ओर एक अर्धचन्द्र बना है और बायी ओर एक अलकार है जो मोनोग्राम सा लगता है (आ० १९८)[९०]। इस टोपी का आधुनिक मिस्र और भारत में पहने जाने वाली तुर्की टोपी से काफी साम्य है।

एक दिल्लीवाल पगडीनुमा टोपी भी पहनी जाती थी। इस टोपी की छत तो अर्धवृत्ताकार है और छज्जा उलटा हुआ है (आ० १९९)[९१]। इस टोपी की बनावट अजटा में ईरानियो की टोपी की बनावट से बहुत मिलती है। आज दिन भी भारत का पारसी समाज ऐसी ही टोपी पहनता है। दिल्लीवाल पगडी भी लगता है इसी टोपी से निकली है। सूर्य की मूर्ति एक विचित्र टोपी पहने है (आ० २००)[९२]। टोपी की छत गोल और चपटी है। और पूरी टोपी ज्यामितिक आकृतियो और पुष्पालकारो से सजी है।

मथुरा की मूर्तिकला में स्त्रिया प्राय एड़ी तक पहुचती साड़ियां जिनके ऊपर स्थान-च्युत होने से बचाने के लिए अनेक लडो वाली करधनियां होती है, और तहदार दोनो कधो को ढकते हुए नीचे लटकने वाले दुपट्टे पहिनती थी (आ० २०१-०४)[९३]। लेकिन अक्सर दुपट्टा नही भी पहना जाता था। उसे उमेठे हुए कमरबद से कमर के दोनो ओर फदे पडते हुए बाधा जाता था। साडी की खूबसूरती इससे बढ जाती थी (आ० २०५)[९४]। कभी कभी कमरबद का लबा सिरा कमर से बाध लिया जाता था और झब्बेदार छोटा सिरा सामने लटकता हुआ छोड दिया जाता (आ० २०६)[९५] था। कभी कभी कमरबद दोहरा कर के उसका निचला भाग कमर में नाभि के पास खोस लिया जाता था और उसमें दोनो सिरे खाली छोड दिए जाते थे (आ० २०७)[९६]। दूसरी जगहो मे कमरबद के झब्बेदार सिरे मोड कर दायी ओर खोस लिए जाते थे और तब कमरबद के कुछ भाग को मोड कर नाभि के पास साडी में खोस लिया जाता था। कमरबद का छुट्टा सिरा बाये हाथ में जान बूझ कर पकड लिया जाता था (आ० २०८)[९७]। पटका पहनने की भी बहुत सी रीतिया थी (आ० २०९-२१२)[९८]।

८९—वही, प्ले० ४ सी०
९०—वही, प्ले० ४ डी०
९१—अग्रवाल, वही, प्ले० १३, आ० २६
९२—फोगेल, वही, प्ले० ३३ बी०
९३—फोगेल, वही, प्ले० ७ ए० और बी०
९४—वही, प्ले० १६ बी०
९५—वही, प्ले० ५० ए० बी०
९६—वही, प्ले० १७ ए०
९७—वही, प्ले० १८
९८—वही



२०१



२०२



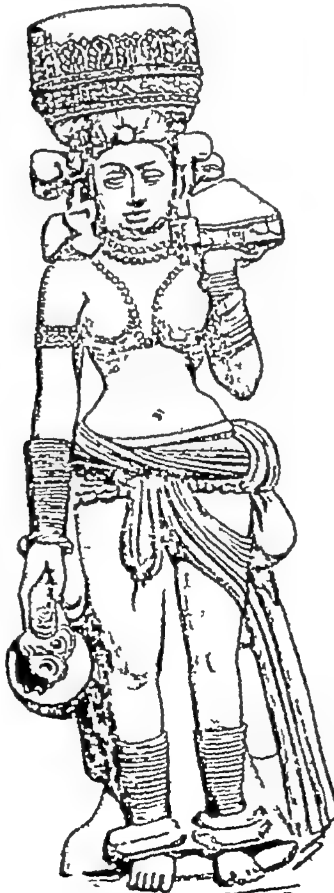
२०३



२०४



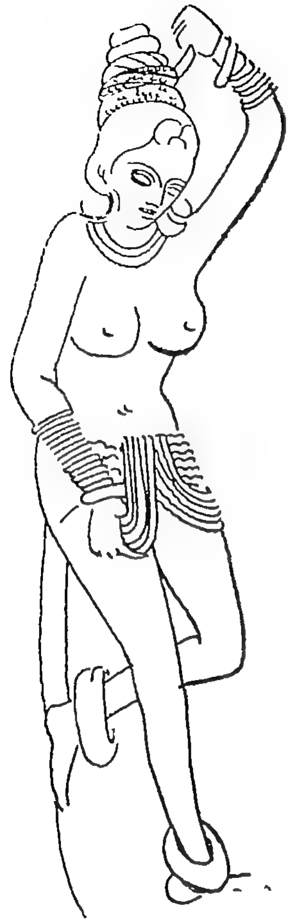
२०५





२०६

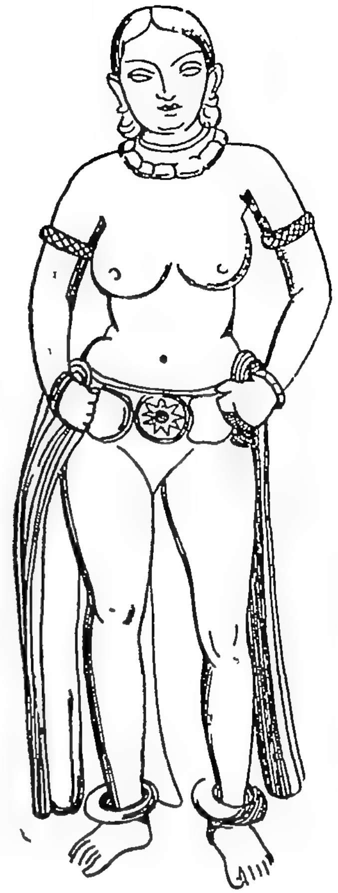
२०६



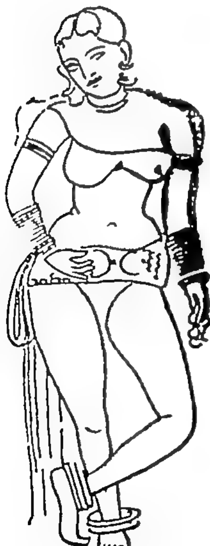
२०७

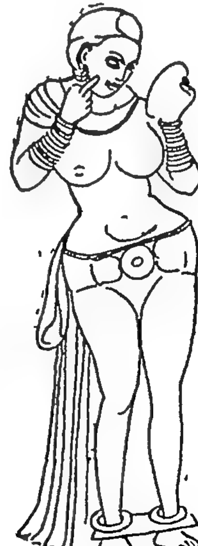


२०८



२०९





२११

मध्यकालीन उत्तर और पश्चिम भारत में स्त्रिया प्राय लहगा पहनती थी और आज दिन भी पश्चिमी युक्त प्रान्त, राजपूताना, मालवा तथा गुजरात मे यह प्रथा जारी है। जहा तक हमे पता चलता है सब से पहले लहगा कुषाणयुग की मूर्तिकला मे दीख पडता है। इस युग की मूर्तियो में आये वेश-विन्यास से यह प्राय निश्चित हो जाता है कि लहगा पहनने की प्रथा साधारण न हो कर अपवाद स्वरूप थी। ऐसा लगता है कि इस युग में ग्वालिने और उन्ही की श्रेणी की स्त्रिया लहगा पहनती थी। मथुरा में जमालपुर के पास से मिली एक स्त्री मूर्ति शायद ग्वालिन की है (आ० २१३)। वह दाहिने हाथ से बेत की बनी गेंडुरी पर स्थिर सिर पर घडा पकडे है। नाभि के जरा नीचे तक उसका शरीर अनावृत है पर उसके बाद लहगा शुरू होता है यह लहगा वैसा भारी भरकम नही है जैसा आज दिन भी मथुरा के आसपास पहना जाता है। इसमे उतनी कलिया भी नही है। लहगा कमर पर सीधा है और निचले भाग मे केवल एक घेर पड़ता है। लहगे का बडा जोड ओर से छोर तक ठीक बीचोबीच हो कर जाता है।

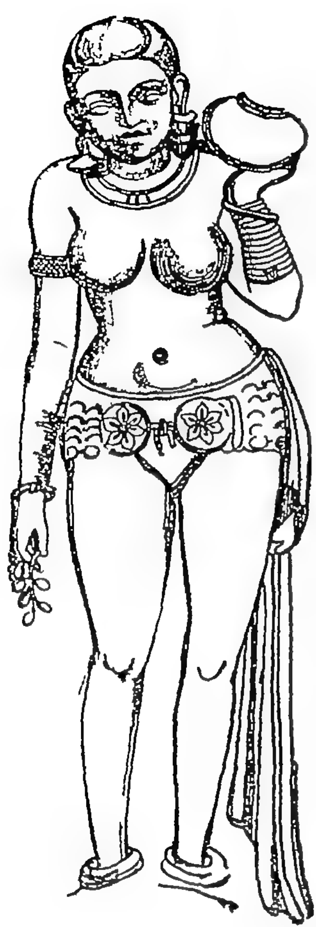
मथुरा की स्त्रिया, कम से कम जैसा उनका मथुरा की मूर्तिकला मे प्रदर्शन हुआ है, कचुक या चोली नही पहनती। लेकिन इसके अपवाद स्वरूप आपानक दृश्यो मे स्त्रिया सिले कपडे पहने दिखलायी गयी है। ये स्त्रिया कमर तक कसा कचुक जिनका घेर चूननदार होता है (आ० २१४-२१५)[९९] पहनती है। मथुरा से मिले एक मूर्ति के पादपीठ पर जिस पर कुषाण सवत् का उन्यासीवा वर्ष है, अकित कुछ स्त्री मूर्तिया कचुक पहनती है। कंचुक के ऊपर वे साडी भी पहनती हैं। इस साडी का एक भाग तो वह कमर में लपेट लेती थी और उसका दूसरा भाग बायें स्तन को ढाकते हुए बाये कधे पर डाल लेती थी (आ० २१६)[१००]। साड़ी पहनने का यह ढग गंधार में साडी पहनने के ढग से मिलता जुलता है। हो सकता है ये स्त्रियां गधार की ही हो।

खूब कामदार कचुक शक अथवा ईरानी स्त्रिया कभी कभी पहनती थी। मथुरा के पास जमालपुर के टीले से मिले हुए एक वेदिकास्तंभ पर, जो अब लखनऊ म्यूजियम में है, धूपदानी लिए हुए दाहिनी ओर जाती हुई एक स्त्री का चित्र है (आ० २१७)[१०१]। वह लौटे हुए छज्जो वाली एक टोपी और पैर तक पहुचता एक कचुक पहने है। कचुक के बीच में गले से लेकर अंत तक एक पट्टी या गोट है। लेकिन इस कंचुक की सब से खास बात तो उस पर कसीदा किये अथवा बुने हुए अलंकार है। पूरा कचुक का कपडा बारह पडी पट्टियो मे बटा हुआ है जिनमे शाखे और फुल्ले बने हुए है। कोई भी प्रतिकृति इस अलकार

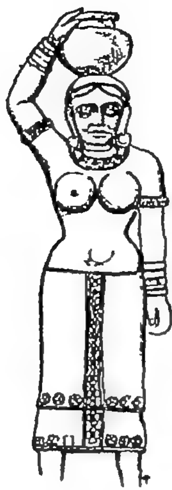
९९—वही, प्ले० ४७, आ० ए०

१००—वही, प्ले० ६० बी०

१०१—स्टेला क्रामरिश, ग्रुंडत्सुगे डर इंडिशेन कुस्ट प्ले० १९



२१२



२१३



२१४



२१७



२१५



२१६

की खूबसूरती नही दिखला सकती। लगता है कंचुक का कपड़ा वही पुष्पपट्ट है जिसका उल्लेख इस काल के साहित्य में आता है।

जैसा कि मथुरा की मूर्ति कला से पता चलता है स्त्रिया अपने सिर इसलिए नही ढाकती थी कि लोग उनकी सुदर केश रचना देख सकें। लेकिन कुछ स्त्रिया पीछे लहराती ओढनी भी ओढती थी[१०२]। एक जगह एक परिचारिका लट्टूदार पगडी[१०३] जिसका सिरा पीछे लटक रहा है पहरे देख पडती है। एक दूसरी स्त्री पाग पहने है (आ० २०७)[१०४]।

दक्षिण भारत की वेश-भूषा

जैसा हम देख आये है इस युग में दक्षिण भारत की वेश-भूषा का आनुशगिक रूप से उल्लेख हम दक्षिण के सगम युग के साहित्य में पाते है। यह हमारा भाग्य है कि अमरावती नागार्जुनी कोडा, और गोल्ली से मिले हुए अर्धचित्र तत्कालीन आचार विचार और वेश-भूषा को अक्षुण्ण बनाये रखते है। इन अर्धचित्रो से हम तत्कालीन वेश-भूषा का जीता जागता चित्र खीच सकते है। अर्धचित्रो मे अकित दक्षिण भारत के लोग उत्तर भारत के लोगो की तरह एडी के जरा ऊपर तक पहुचती धोती पहनते है। एक चुना हुआ अश नाभि के पास कमर में खोस लिया जाता है और लाग पीछे खोस ली जाती है (आ० २१८)[१०५]। धोती पहिरने के दूसरे ढग मे धोती घुटनो तक पहुचती है (आ० २१९)[१०६]। तीसरी रीति मे चुना हुआ धोती का अश जाघो के बीच से होकर पीछे खोस लिया जाता था (आ० २२०-२२१)[१०७]। कमरबद बाधने की अनेक कलात्मक रीतिया थी। एक रीति में कमरबद का एक फेटा दोनो सिरो को छोड कर बाध लिया जाता था, दूसरा फेटा मोड कर कमर पर खोस लिया जाता था (आ० २२०)। एक दूसरी रीति में कमरबद का एक फेटा बाध लिया जाता था और छूटा हिस्सा मोड़ लिया जाता था, दूसरा हिस्सा पहले फेटे से तीन फेरे निकाल कर लटका दिया जाता था (आ० २२२)[१०८]। तीसरी रीति मे कमरबद एक फेटे का होता है और इसके छुट्टे सिरे मोड कर कमर के अगल बगल खोस लिये जाते है (आ० २१८)। चौथी रीति मे कमरबद के एक सिरे की दाहिनी ओर सकरमुद्धी बना ली जाती है इसका एक सिरा तो

१०२—स्मिथ, वही, प्ले० ३४-३५

१०३—वही, प्ले० १४

१०४—फोगेल, वही, प्ले० १७ ए०

१०५—फर्गुसन, वही, प्ले० ६५, आ० ३

१०६—वही

१०७—वही, प्ले० ७४, ६३, २

१०८—वही, प्ले० ६१-२

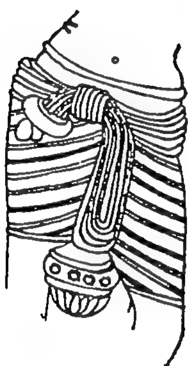

२१८

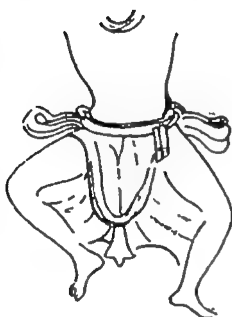

२१९


२२०


२२१


२२२


२२३


२२४


२२५


२२६


२२७


२२८


२२९


२३०


२३१

लटका करता है और दूसरा बाये हाथ मे होता है[१०९]। एक पाचवे तरह का कमरबद रस्सियों का बना होता है जिसके दोनो सिरो पर झब्बे होते है (आ० २२३)[११०]। नाचने की मुद्रा में कमरबद के इन मोडो से नर्तक की सादी वेश-भूषा मे एक गति आ जाती थी (आ० २२४)[१११]।

दुपट्टे या चादर पहनने की रीति कम थी। छाती पर तिरछा जाता हुआ और बायें कधे पर पडा हुआ दुपट्टा कभी कभी देख पडता है (आ० २२५-२६)[११२]। कभी कभी कटा हुआ दुपट्टा परतले की तरह छाती पर पहरा जाता था (आ० २२७)[११३]। दुपट्टा कभी कभी गले और कधो पर भी डाल लिया जाता था (आ० २२८)[११४]।

दक्षिण भारत मे अनेक तरह के शिरोवस्त्र भी पहने जाते थे। पगडिया ढीले तौर मे दो या तीन फेरो में बाध ली जाती थी और उनके बीच मे धातु का बना शीर्षपट्ट लगा होता था (आ० २२९)[११५]। एक दूसरी तरह की अटपटी पगडी मे एक सिरा नीचे झुका हुआ और एक ऊपर उठा हुआ दिखलाया गया है (आ० २३०)[११६]। एक तीसरे तरह की पगडी चक्करदार बधी हुई है और उसके सिरे पर मोरपख जैसा आभूषण है (आ० २३१)[११७]। चौथी तरह की पगडी ढीली बधी है और उसका पखानुमा फैलता हुआ एक सिरा पगडी में खुसा है (आ० २३२)[११८]। पाचवी तरह की पगडी में उसके दोनो छोर शीर्षपट्ट के पेच से निकाल कर जूडे के साथ बाध दिये गये है (आ० २३३)[११९]। छठी तरह की पगडी में इसके दोनो छोर उस पर लगे दो छल्लो से निकाल दिये है (आ० २३४)[१२०]। सिर से चपकी हुई छोटी गोल पगडी सरपेच के साथ पहनी जाती थी (आ० २३५)[१२१]। अमरावती के अर्धचित्रो में निम्नलिखित तरह की पगडिया मिलती है—

१—तीन कुल्ले वाली पगडी जिस पर शायद एक पंख खुसा है (आ० २३६)[१२२]।

१०९—शिवराम मूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम, प्ले० ८, २५
११०—शिवराम मूर्ति, वही, प्ले० ८, ३१
१११—लागहर्स्ट, दी बुधिस्ट एटीक्वीटीज फ्रॉम नागार्जुनीकोंड, प्ले० २२ ए०
११२—वही, २१ ए० और ४६ ए०
११३—वही, प्ले० ४० ए०
११४—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ६
११५—फर्गुसन, वही, प्ले० ७४
११६—वही, प्ले० ८४, २
११७—वही, प्ले० ८४, २
११८—वही, प्ले० ८३, १
११९—लागहर्स्ट, वही, प्ले० २३ बी०
१२०—वही, प्ले० २१ बी०
१२१—फर्गुसन, वही, प्ले० ७४
१२२—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ७, १


२३२


२३३


२३४


२३५


२३६


२३७


२३८


२३९


२४०

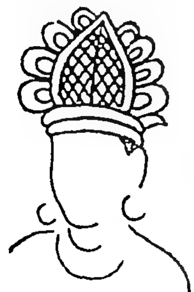

२४१


२४२


२४३


२४४


२४५


२४६


२४७


२४८


२४९


२५०

२—नीची पगडी जिसके चारो ओर एक दोहरी पट्टी का आभूषण है (आ० २३७)[१२३]।

३—साफ सुथरे ढग से तीन फेंरो मे वंधी पगड़ी जिस पर शीर्षपट्ट है (आ० २३८)[१२४]।

४—अटपटी पगडी जिसमें शायद दो चौरिया खुसी हैं (आ० २३९)[१२५]।

५—अटपटी पगडी जो एक सरदल पट्टी में लगे फिरकीनुमा आभूषण से अलंकृत है (आ० २४०)[१२६]।

६—बहुत से लटटू पड़ती हुयी पगड़ी, आगे शिरो भूषण है, पीछे चौकोर कघी जैसी कोई वस्तु (आ० २४१)[१२७]।

७—गोल पेचदार पगडी, इसका एक छोर गोल शीर्षपट्ट से निकलता दिखलाया गया है (आ० २४२)[१२८]।

८—गोल दिल्लीवाल पगड़ी जैसी चपकी पगडी जिसमे पर खुसे हैं (आ० २४३)[१२९]।

९—चक्करदार ऊंची पगडी (आ० २४४)[१३०]।

दक्षिण में धातु निर्मित ऊची ढालदार टोपिया भी इस युग मे पहनी जाती थीं। एंसी टोपी वहुधा रेखाओ और वृत्तो से अलकृत होती थी और उसमे दोनो ओर झब्वे लगे होते थे (आ० २४५)[१३१]। एक दूसरी तरह की टोपी मोरपखो से सजी होती थी और उसमें सामने की ओर एक पान के आकार का अलकार लगा होता था (आ० २४६)[१३२]। एक विचित्र तरह की टोपी की शकल चायदानी के ढक्कन जैसी है, ढक्कन से चारो ओर अर्धवृत्त निकल रहे है (आ० २४७)[१३३]। यह छोटी टोपी सिर पर ठीक बीचोबीच रक्खी है। एक टोपी में उलटा हुआ कटावदार छज्जा है[१३४]। दक्षिण में आए हुए विदेशी चपकी टोपिया

१२३—वही, प्ले० ७, २
१२४—वही, प्ले० ७, ३
१२५—वही, प्ले० ७, ४
१२६—वही, प्ले० ७, ६
१२७—वही, प्ले० ७, ७
१२८—वही, प्ले० ७, ९
१२९—वही, प्ले० ७, ११
१३०—वही, प्ले० ७, १४
१३१—फर्गुसन, वही, प्ले० ८६
१३२—वही, प्ले० ७३, २
१३३—वही, प्ले० ७३, २
१३४—वही, प्ले० ७४


२३२


२३३


२३४


२३५


२३६


२३७


२३८


२३९


२४०


२४१


२४२


२४३


२४४


२४५


२४६


२४७


२४८


२४९


२५०

२—नीची पगड़ी जिसके चारो ओर एक दोहरी पट्टी का आभूषण है (आ० २३७)[१२३]।

३—साफ सुथरे ढग से तीन फेरो में वधी पगड़ी जिस पर शीर्षपट्ट है (आ० २३८)[१२४]।

४—अटपटी पगडी जिसमें शायद दो चौरिया खुसी हैं (आ० २३९)[१२५]।

५—अटपटी पगडी जो एक सरदल पट्टी में लगे फिरकीनुमा आभूषण से अलंकृत है (आ० २४०)[१२६]।

६—वहुत से लटटू पडती हुयी पगडी, आगे शिरो भूषण है, पीछे चौकोर कघी जैसी कोई वस्तु (आ० २४१)[१२७]।

७—गोल पेचदार पगडी, इसका एक छोर गोल शीर्षपट्ट से निकलता दिखलाया गया है (आ० २४२)[१२८]।

८—गोल दिल्लीवाल पगड़ी जैसी चपकी पगडी जिसमे पर खुसे है (आ० २४३)[१२९]।

९—चक्करदार ऊची पगड़ी (आ० २४४)[१३०]।

दक्षिण मे धातु निर्मित ऊची ढालदार टोपिया भी इस युग में पहनी जाती थीं। ऐसी टोपी वहुधा रेखाओ और वृत्तो से अलकृत होती थी और उसमे दोनो ओर झब्बे लगे होते थे (आ० २४५)[१३१]। एक दूसरी तरह की टोपी मोरपंखो से सजी होती थी और उसमें सामने की ओर एक पान के आकार का अलकार लगा होता था (आ० २४६)[१३२]। एक विचित्र तरह की टोपी की शकल चायदानी के ढक्कन जैसी है, ढक्कन से चारों ओर अर्धवृत्त निकल रहे है (आ० २४७)[१३३]। यह छोटी टोपी सिर पर ठीक वीचोवीच रक्खी है। एक टोपी में उलटा हुआ कटावदार छज्जा है[१३४]। दक्षिण में आए हुए विदेशी चपकी टोपिया

१२३—वही, प्ले० ७, २
१२४—वही, प्ले० ७, ३
१२५—वही, प्ले० ७, ४
१२६—वही, प्ले० ७, ६
१२७—वही, प्ले० ७, ७
१२८—वही, प्ले० ७, ९
१२९—वही, प्ले० ७, ११
१३०—वही, प्ले० ७, १४
१३१—फर्गुसन, वही, प्ले० ८६
१३२—वही, प्ले० ७३, २
१३३—वही, प्ले० ७३, २
१३४—वही, प्ले० ७४

पहनते थे। इसमे एक टोपी का छज्जा ऊपर की ओर मुडा हुआ है (आ० २४८)[१३५]। दूसरी कुलाहनुमा टोपी का छज्जा लहरियादार है (आ० २४९)[१३६]। एक कचुकावृत मनुष्य कटोपनुमा टोपी पहने है (आ० २५०)[१३७]। कभी कभी इस टोपी मे गोल शीर्षपट्ट भी लगा होता था (आ० २५१)[१३८]।

कचुक पहने हुए मनुष्य, जो शायद दक्षिण मे सिकदरिया से आये यवन है, अपने सिर रूमाल से ढाकते थे, जिसका एक सिरा ठुड्डी के नीचे से होता हुआ सिर के दूसरी ओर खोस लिया जाता था। इस तरह दोनो कान ढक जाते थे (आ० २५२-२५३)[१३९]।

इस युग मे ठेठ दक्षिण भारत के उच्चवर्णों मे कचुक पहनने की प्रथा नहीं थी। राजे, बडे राज कर्मचारी तथा सामत कचुक नही पहनते थे। सेवक, गायक, वादक तथा विदेशी गोल गले वाला तथा पूरी तथा कसी बाहो वाला कचुक जो कमर तक पहुचता है, पहनते थे। कटोपा, धोती तथा रूमाल के साथ कचुक पहनने की प्रथा थी (आ० २५०)। यह पगडी, दुपट्टा और धोती के साथ भी पहरा जाता था (आ० २३२)। शरीर के साथ यह कमरबद से जकडा होता था (आ० २५०)। कभी कभी ढीले बाहो वाला घुटनो के जरा नीचे तक पहुचता कचुक टोपी और चूडीदार पाजामा पहना जाता था (आ० २५४)[१४०]। पालकी उठाने वाले आधी बाहो वाला कसा कचुक कमरबद के साथ पहनते है (आ० २५२)। एक ऐसा ही बिना बाहो वाला कचुक पहने एक दूसरा वाहक दिखलाया गया है (आ० २५२) एक दूसरा आदमी जो विदेशी मालूम पडता है एक आधी जाघो तक पहुचता पूरी बाहो वाला किसी धारीदार कपडे से बना कंचुक पहने दिखलाया गया है (आ० २५३)। घोडे की रास पकडे हुए एक साईस एक विचित्र तरह का कोट पहने है जिसकी तुलना अग्रेजी टेल कोट से की जा सकती है। कोट अधबहिया है और उसका बाया पख (फ्लैप) दाहिने पख पर चढता हुआ दिखलाया गया है। चार फेंटे वाले कमरबद से यह कोट शरीर से जकडा है (आ० २५५)[१४१]। ग्वाले और इसी तरह के दूसरे व्यवसायी जाघिया पहनते हैं (आ० २५६)[१४२]। यह जाघिया सकरमुद्धीदार कमरबद से बधी रहती है।

१३५—वही, प्ले० ६९

१३६—वही

१३७—वही, प्ले० ७३, २

१३८—लांगहर्स्ट, वही, प्ले० २८, सी०

१३९—फर्गुसन, वही, प्ले० ८४, तथा ८३, १

१४०—वही, प्ले० ८३, २

१४१—आर० एस० आई० एन० रि०, १९०८-१९०९ प्ले० ३०

१४२—फर्गुसन, वही, प्ले० ५७


२५१


२५२

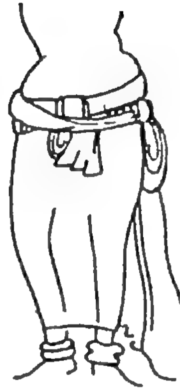

२५२


२५३


२५४


२५५


२५६


२५७


२५८


२५९


२६०


२६१


२६२

दक्षिणी स्त्रियो की वेश-भूषा

इस युग मे दक्षिणी स्त्रिया बहुत हल्के कपडे पहिनती थी कमर के ऊपर शरीर का भाग खुला रहता था, साडी एडी के ऊपर तक पहुचती थी, इस पर करधनी और कमरबद, जिसका एक छुट्टा हिस्सा आगे लटका रहता था और दूसरा मुडा हुआ हिस्सा आगे लहराया करता था, होते थे (आ० २५७)[१४३] । एक दूसरी जगह सकरमुद्धीदार कमरबद करधनी का स्थान ग्रहण कर लेता है। (आ० २५८)[१४४] । कभी कभी स्त्रिया साडी के ऊपर करधनी, पटके और कमरबद तीनो पहनती थी। फेंटे के दोनो सिरे मुडे होते थे और कमरबद की फेरेदार गाठ कमर के बाये ओर लगी रहती थी । सिर पर पगडीके आकार का कोई वस्त्र होता था[१४५] । कभी कभी स्त्रिया लीलावश दुपट्टा हाथ में ले लेती थी[१४६] ।

इस युग में दक्षिणी स्त्रिया बहुधा अपने सिर नही ढाकती थी पर कभी कभी वे सुसज्जित पगडी पहनती थी । इस तरह की एक भारी भरकम पगडी में चक्करदार फेंटे जूडे के ऊपर बधे है । पगडी के आगे एक बदामा शीर्षपट्ट है जिसमे एक झब्बा लटक रहा है (आ० २५९)[१४७] । एक दूसरी तरह की पगडी मे फेंटे एक सीगनुमा केशवेश के चारो ओर बधे है (आ० २६०)[१४८] । बाल बाधने की यह प्रथा आज दिन भी मध्यभारत के बनजारा स्त्रियो में पायी जाती है । कभी कभी पट्टीनुमा मुकुट जिसके दोनो ओर दो कुब्बो से झब्बे अथवा बाल की लटें लटकती थी और जिसके ऊपर दोमुहे मकर की आकृति अर्धचद्र वहन करती थी पहना जाता था[१४९] । एक जगह इस मुकुट मे दोहरे मुख वाले मकर का पूरा शरीर बना दिखाया गया है (आ० २६१)[१५०] । एक जगह चक्करदार मुकुट मे एक कलगी जैसा आभूषण लगा है (आ० २६२)[१५१] । कभी कभी स्त्रियां छ. नोक वाला एक छोटा मुकुट पहनती थी (आ० २६३)[१५२] । कभी कभी लहरियादार कमल की पखुडियो से सजा मुकुट पहना जाता था (आ० २६४)[१५३] ।

१४३—वही, प्ले० ८५
१४४—वही, प्ले० ९१, ३
१४५—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ३३
१४६—वही, प्ले० ८, १०
१४७—लागहर्स्ट, वही, प्ले० २० बी०
१४८—वही, प्ले० ३४, ए०
१४९—फर्गुसन, वही, प्ले० ८५
१५०—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ६, १०
१५१—वही, प्ले० ६, ११
१५२—फर्गुसन, वही, प्ले० ८४, ३
१५३—वही, प्ले० ८३, १

इस युग मे ओढनी ओढने का वहुत कम रिवाज था फिर भी अमरावती के एक अर्ध-चित्र में एक स्त्री सिर पर से पीछे की ओर वाल ढंकते हुए ओढनी ओढे दिखलायी गयी है (आ० २६५)[१५४]।

साधुओ की वेश-भूषा

ब्राह्मण साधु एक कौपीन पटको और दुपट्टे के साथ पहनते थे (आ० २६६)[१५५]। इन पर पडी धारियो से पता लगता है कि ये वल्कल के वने होते थे। वौद्ध साधु कभी कभी पासुदुकूल पहनते थे। (आ० २६७)[१५६] जो चीथडो को सी कर वनाया जाता था।

सिपाहियों की पोशाक

योद्धागण कभी कभी पूरी आस्तीन का कचुक पहनते थे। इस कचुक मे और अधिक कसाव लाने के लिए कई फेंटो मे नाभि के ऊपर एक रूमाल वधा होता था। इनकी धोती पर कमरवंद होता था[१५७]।

वच्चो की वेश-भूषा

इस युग मे वच्चे जाघिया और कमरवद पहनते थे। (आ० २६८-२६९)।[१५८] कभी कभी इनके छाती पर एक रूमाल वधा होता था जिसका सकरमुद्धी लगा छोर हवा में फडका करता था। कभी कभी उनके छाती पर छन्नवीर की तरह दोहरा परतला और कई फेरो मे पेट पर रूमाल भी वधा रहता था (आ० २७०)[१५९]।

१५४—वही, प्ले० ७२, १
१५५—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ६, १
१५६—वही, प्ले० ६, १४
१५७—वही, प्ले० १०, ६
१५८—लागहर्स्ट, वही, ६, सी० डी०
१५९—शिवराममूर्ति, वही, प्ले० ८, ३३


२६३


२६४


२६५


२६६


२६७


२६८


२६९


२७०


२७१


२७२


२७३


२७४

नवाँ अध्याय

तीसरी सदी से सातवी सदी तक के साहित्य मे भारतीय वेश-भूषा

"मनुष्य-जीवन में सब से पहले भोजन और कपडो का स्थान है। मनुष्यो के लिए ये बेड़िया है जो उन्हें पुनर्जन्म से बाधे रहती है।"
इत्सिग

प्राक् गुप्तयुग का इतिहास कुषाण साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने पर आरंभ होता है। इस युग में राजपूताने और पूर्वी पंजाब में यौधेयो की राज्य-सत्ता का आरभ और दृढ़ीकरण तथा पवाय के नागो, कौशांबी के भारशिवो और मघो इत्यादि का उत्कर्ष देखते है। गुप्त वश के उद्भव के पहले तक इन राज्यो का उत्तर भारत के अधिक हिस्से पर प्रभुत्व रहा। आधुनिक ऐतिहासिक अनुसधानो से प्राय यह निश्चित सा हो गया है कि इन राज्यो और गणतत्रो ने कुषाणो की राज्य-सत्ता उखाड़ कर पुन. भारतीय आदर्शो पर स्थित राज्य-सत्ता चलाई।

विशृङ्खलित राज्यतत्र के इस युग मे भारतीय वेश-भूषा के इतिहास की कम सामग्री मिलती है। इस युग में हमें साची और अमरावती के से अर्धचित्र प्राप्त नही है जिनके वल पर हम तत्कालीन वेश-भूषा का सागोपाग चित्र खडा कर सकें। मथुरा की तथाकथित कुषाणयुग की कुछ मूर्तियो का सहारा हम इस युग की वेश-भूषा के इतिहास के लिए ले सकते है। पर इसमे कठिनाई है कुषाण कला से तात्पर्य। कुषाण कला गोल तरह से दो सौ वर्षो तक जारी रही और अभी तक कला के इतिहासकारो ने इस कला में विकासक्रम का पता लगाने का प्रयत्न तक नही किया है। कुषाण कला के माने कुषाण युग के कला के सिद्धातो पर आश्रित कला है चाहे वह पहली शताब्दी की हो या तीसरी। जैसा हमे मालूम है आरभिक कुषाणयुग मे सुदर से सुदर मूर्तिया काफी सख्या में बनी, लेकिन इसका कोई कारण नही मालूम पडता कि कुषाणो के पतन के और गुप्तो के अभ्युत्थान के अन्तर युग में भी यह कला जीवित नही रही। लेकिन इस प्रश्न के हर पहलू को ध्यान में रखते हुए तथा ऐतिहासिकता के कठोर मापदडो को सामने रखते हुए हमने इस युग की अधिकतर मूर्तियो और अर्धचित्रो का उपयोग तीसरी शताब्दी की भारतीय वेश-भूषा के इतिहास के लिए नही किया है।

इस युग की दक्षिणी वेश-भूषा के इतिहास के लिए आध्र देश के गुटूर जिले के पल्नाड तालुक के गोल्ली नाम ग्राम से मिले तीसरी शताब्दी के उत्कीर्ण पट्ट बड़े काम के है। इन अर्धचित्रो से हमें तत्कालीन दक्षिण भारत की वेश-भूषा का काफी पता चलता है, पर इस युग की वेश-भूषा अमरावती और नागार्जुनीकोंड के अर्धचित्रो मे चित्रित दक्षिण

भारत की वेश-भूषा से कोई भिन्न नही है। गोल्ली के अर्धचित्रो की यथार्थवादिता तामिलनाड से मिले पल्लव अर्धचित्रो के आदर्शवाद से बिल्कुल विपरीत है। इसी कारण से हम पल्लव अर्धचित्रो और मूर्तियो का उपयोग वेश-भूषा के इतिहास के लिए नही कर सके। ग्वालियर रियासत के पवाय नामक स्थान से मिली हुई मूर्तिया और अर्धचित्र तीसरी सदी के है और इनसे बुंदेलखंड के वस्त्रो की स्थानिक विशेषताओ का पता चलता है।

गुप्तयुग भारतीय वेश-भूषा के इतिहास में बडा महत्त्व रखता है। इस युग की वेश-भूषा के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री हमें सारनाथ, देवगढ इत्यादि से मिली मूर्तियो और अजंटा की १७ नबर की लेण से मिलती है। वास्तव में अजटा की लेणें वाकाटको की राज्य-सीमा में है और इसलिए शायद अजंटा की चित्रकला को गुप्त शैली की मानना ऐतिहासिक दृष्टि से असगत हो। पर जैसा कि भारतीय कला के इतिहास से पता चलता है उत्तर भारत में परिवर्धित गुप्तकला का भारतवर्ष के कोने कोने में समावेश हुआ और उसकी सौंदर्य भावना और अंकन शैली का प्रभाव देश में सर्वत्र पडा फिर चाहे वह सि ध में मीरपुरखास से मिली मूर्तिया हो अथवा अजटा के भित्तिचित्र । अगर यह दृष्टिकोण हम ध्यान में रक्खें तो इस युग की प्रादेशिक कलाओ को चाहे वह गुप्त साम्राज्य के बाहर ही क्यो न परिवर्धित हुई हो हम गुप्तकला के अन्तर्गत मान सकते है। जो भी हो इस युग की मट्टी की मूर्तियो, सिक्कों और भित्तिचित्रो के आधार पर हम चौथी से सातवी शताब्दी तक के भारतीय कपड़ो और पहरावे का जीता जागता चित्र खडा कर सकते है।

गुप्तवश की नीव चन्द्रगुप्त प्रथम (३२०-३३५ ई० स०) ने डाली पर समुद्रगुप्त (३३५-३८५ ई० स०) ने जो भारतवर्ष के इस काल के शासको मे अपनी दूरदर्शिता, पराक्रम और कला-प्रेम के कारण एक विशेष स्थान रखते है, इस नीव को मजबूत किया। अनेक विजय यात्राओ के अलावा जिनका हमसे सबध नही है, समुद्रगुप्त साहित्य-व्यसनी, कवि और सगीतज्ञ थे । उनके पुत्र और उत्तराधिकारी चद्रगुप्त विक्रमादित्य (३८५-४१३ ई०) ने ३९५ और ४०० ई० के बीच में सौराष्ट्र के क्षत्रपो को जीत लिया । चन्द्रगुप्त अपनी कीर्ति और यश के बल पर आज तक भारत में विख्यात है। इन्ही के राज्यकाल, में महाकवि कालिदास हुए । समुद्रगुप्त और चद्रगुप्त के विजय-पराक्रमो से परिवर्धित गुप्त-साम्राज्य का, जैसा कि बसाढ, भीटा और राजघाट से मिली मुद्राओ से पता चलता है, कार्य संचालन सुव्यवस्थित था। कुमारगुप्त (४१४-४५५ ई०) का राज्यकाल गुप्त-साम्राज्य की क्रमश अवनति का है । स्कंदगुप्त (४५५-४७० ई०) के राज्यकाल में हूणो के भीषण आक्रमण से आक्रात गुप्त-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया, और इस तरह भारत के स्वर्ण-युग के इतिहास पर परदा पड गया । स्कंदगुप्त के पराक्रम का पता हमें भितरी के स्तभो-त्कीर्ण लेख से पता लगता है जिसमें कहा गया है कि जमीन पर अपने सिपाहियो के साथ सोकर मानो उन्होने तप करते हुए अपनी विचलित कुललक्ष्मी की आराधना की । इस

अवसर पर (करीब ४५५ ई०) तो हूण हारे, पर थोड़े ही समय के लिए। उनके आक्रमणो का तांता जारी ही रहा और स्कंदगुप्त की मृत्यु के उपरान्त गुप्त-साम्राज्य का अत हो गया। स्कंदगुप्त के वाद भी कुछ गुप्त वंशज राजाओ का पता हमें सिक्को और लेखो से लगता है पर इनका ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व नही है। युवानच्वाग के कथनानुसार हूणो को जो थोड़े दिनो के लिए गुप्त-साम्राज्य के अधिकारी वन वैठे थे वालादित्य ने हराया। इस महान् पराक्रम का श्रेय यशोधर्मन् नाम का राजा भी ५३३-५३४ ई० के वीच के अपने एक अभिलेख में लेता है।

सास्कृतिक दृष्टिकोण से गुप्तयुग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है इस युग मे सव धर्मों को पूरी स्वतंत्रता थी। गुप्त राजे स्वयं परमभागवत थे पर इस युग में वैदिक धर्म की पुनर्जागृति हुई और यज्ञों को पुनः प्रधानता मिली। इतना होने पर भी बौद्ध-धर्म की ओर लोगो की उतनी ही आस्था रही।

श्री हर्ष के युग को भी हम गुप्तयुग के सास्कृतिक इतिहास के साथ साथ ले सकते हैं। इस युग में वाण, युवानच्वाग और दूसरे लेखक भारत के कुछ ऐसे सास्कृतिक पहलुओ पर भी प्रकाश डालते है, जिनका पता तक इस युग के सवसे वडे कवि कालिदास के ग्रथो में भी नही चलता।

गुप्तयुग केवल राजनीतिक, धार्मिक और कला के क्षेत्रो में ही भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ युग नही था वरन् इस युग में भौतिक संस्कृति का धरातल भी यथेष्ट ऊंचा उठा। इस भौतिक सस्कृति की उन्नति का पता हमें कालिदास के ग्रथों से, अजटा के चित्रो से और दूसरे पुरातात्त्विक अवशेषो से लगता है। अजटा के भित्तिचित्रो में राजमहलो के सजीव चित्रण हमें प्राचीन महलों की सजावट की छोटी से छोटी वस्तुओ का भी पता देते है। साफ, सुथरे और हलके कपड़े पहने हुए राजाओं की प्रशात मूर्तियां, अत पुर के कठोर नियमो का पालन करती हुई चित्ताकर्षक दासिया और प्रसाधिकाए, सिले कपडे पहने हुए नर्तक, नर्तिकाए और समाजी, सुसज्जित सैनिको से युक्त जुलूस, राजा के जीवन के ये सब पहलू गुप्तयुग में भौतिक सस्कृति के विजय-चिन्ह के समान है। केश बन्धन की सुंदर विधिया तथा साफ सुथरे कपडे और गहने गुप्तयुग की पहले की शताब्दियो के भड़कीलेपन से दूर है। इस युग में स्त्रियां अपने वालो की चोटिया नही करती थी पर उन्हें खूब सजाती थीं। उनके केश-बंधन की अनेक विधियो में हम उस युग की कुशल प्रसाधिकाओ का हाथ देख सकते हैं। धोती और साड़ी पहनने मे कलात्मक ढग से चुन्नटों और सिलवटों के प्रदर्शन से हमें पता लगता है कि उस युग के पुरुष और स्त्रिया वेश-विन्यास की कला से पूरी तरह अवगत थे। इस युग में ठीक तौर से कपडे पहनने का इतना महत्त्व था कि संस्कृत साहित्य में इनके लिए पांच शब्द यथा, आकल्प, वेश, नेपथ्य, प्रतिकर्म और प्रसाधन आए हैं[1]।

१—अमरकोश, २, ६, ९९

साहित्यिक उद्धरणो और अजटा के चित्रो से यह साफ साफ पता चलता है कि गुप्तयुग मे कपडे की नक्काशियो मे भी काफी उन्नति हुई।

गुप्तयुग में भारतीय वेश-भूषा के अध्ययन के लिए मूर्तियो और अजटा की १७ न० की लेण के भित्तिचित्रो के सिवाय बहुत से सिक्के भी है जिन पर गुप्त-राजाओ की प्रतिकृतिया अकित है । इनकी वेश-भूषा से इस मार्के की बात का पता चलता है कि गुप्त राजे कुषाण राजाओ की तरह कचुक, कोट और पायजामे पहनते थे तथा शुद्ध भारतीय पहरावा भी । इस सिले वस्त्रो के उपयोग से पता चलता है कि गुप्तो ने देशी और विदेशी दोनो पहरावे उसी तरह ग्रहण कर लिये थे जैसे आज दिन पश्चिमी शिक्षा पाये हुए नवयुवक सहूलियत के लिए आफिस जाने मे अथवा सामाजिक उत्सवो मे शामिल होने पर पश्चिमी पहरावा पहन लेते है लेकिन घर पर अपना जातीय पहरावा ही पहनते है । यह बात भारतीयो के लिए ही नही प्रत्युत युरोपीय ढग से रहने वाले प्रत्येक एशियावासी के लिए लागू है । सिले हुए कपडो मे पहनने की सहूलियत और आकर्षक ढग गुप्तो की रसात्मक पर कार्यात्मक वृत्ति को अवश्य रुची होगी । हमे गुप्तो की विवेचनात्मक बुद्धि का पता पहरावे मे किए गए हेर-फेर से लगता है । उन्होने कुषाणयुग के मोटे, ऊनी अथवा रुई भरे सूती कपडो की जगह पतले और पारदर्शी कपडो का व्यवहार शुरू किया जो जलवायु के दृष्टिकोण से इस देश के लिए सर्वथा उपयुक्त थे । कुषाण वस्त्रो के भारीपन और भद्दी काटो की जगह हम गुप्त-वेश-भूषा में तैयारी और सफाई देखते है जिनसे पहरने वालो की कलात्मक सुरुचि का पता लगता है । गुप्तयुग मे सिले हुए विदेशी कपडो से धीरे धीरे उनका विदेशीपन निकाल कर उन्हे भारतीय ढाचे मे ढाल दिया गया । उदाहरणार्थ मूर्तियो और सिक्को में कुषाण राजे पूरे पैर का भारी बूट पहने दिखाये गए है। ये बूट देखने मे तो अवश्य ही भद्दे मालूम पडते है पर मध्य एशिया के कठोर शीत में पैरो की रक्षा करते है और घुडसवारी में तो इनकी वडी उपयोगिता सिद्ध होती है। लेकिन गुप्तयुग मे इन बूटो का भद्दा और भारीपन निकल जाता है और उनकी शकल आधुनिक घुडसवारी के वूट जैसी वन जाती है।

राजदरबारो मे सिले विदेशी वस्त्रो का प्रभाव

कुपाणयुग में इस देश में सिले वस्त्र काफी सख्या में आए इसके पहले भी बहुत प्राचीन काल से इस देश मे सिले वस्त्रो का ज्ञान था। उन लोगो की वेश-भूषा पर जिनका राज दरवार से निकट सबध था इसका कुछ अशो तक असर पड़ा। उनके सुदर कारखाने कचुक और जाघिये इस वात के द्योतक है कि तत्कालीन राजे अपने सेवको की वरदी का पूरा ध्यान रखते थे । अक्सर लोगो का यह विश्वास है कि सिले कपडे पहने हुए वे नौकर विदेशी थे जिन्होने वाहर से आकर राजा की नौकरी स्वीकार कर ली थी। यह वात कुछ

नौकरों के लिए तो ठीक हो सकती है पर उनमें अधिकतर तो इसी देश के रहने वाले थे। सेवकों और सेविकाओं के जो वर्णन बाण भट्ट में आए हैं और जिन्हें हमने आगे चल कर दिया है, उनसे हमारे मत की पुष्टि होती है।

विदेशी दासियां

विदेश से क्रीत दासियों के लाने की प्रथा इस देश में गुप्तकाल के बहुत पहले से थी। 'पेरिप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी'[2] में (पहली शताब्दी ई०) इस बात का उल्लेख है कि भरोच के बन्दरगाह में उतरने वाली बहुमूल्य वस्तुओं में जो राजा के व्यवहार के लिए होती थी कीमती चांदी के बर्तन, गायक लड़के और अन्तःपुर के लिए सुन्दर दासियां होती थीं। विदेशों से दासियां लाने की प्रथा का जैन साहित्य में भी जो गुप्तकालीन अथवा उसके कुछ पहले का है वर्णन है। 'अंतगडदसाओ'[3] में विदेशी दासियों की एक तालिका दी हुई है। कथा में इस बात का उल्लेख है कि बचपन में राजकुमार गौतम की सेवा अनेक जातियों की विदेशी दासियां करती थीं। बब्बर[4] (बर्बर), पौसय (बौसी)[5] जोनी (जोणिय, यवनी), पल्हविय (पहलवी), इसिणिय (इसिणी),[6] थोरुगिणिणि, लासिय, लौसिय, दामिली (तामिल), सिंहली, आरबी (अरब), पुलिंद, पक्कणी,[7] बहली (बलख देश की), मुरंडी (मुरुडी)[8] शबर और पारसी, (पारसीही) इन दासियों में मुख्य होती थीं। इन विदेशी दासियों के वस्त्र उनके देशों के अनुरूप होते थे (विदेस परिमण्डियाहि) और इनके कपड़ों

२—शाफ, पेरिप्लस आफ दी एरीथ्रियनसी, पृ० ४२

३—एल० डी० बार्नेट द्वारा अनूदित, पृ० २८-२९, लंदन १९०७, नायाधम्म कहाओ, १, २०, में भी दासियों का यही ब्योरा दिया हुआ है।

४—ऊपर की तालिका में सब देशों की पहचान करना आसान नहीं है। बब्बर देश से शायद उत्तरी अफ्रिका का मतलब है। 'पेरिप्लस' में आये बर्बर शायद लाल सागर और नील नदी के बीच में रहने वाले बेजा, ऊपरी नील एबीसीनिया और अदन की खाड़ी के दक्षिण सुमाली और गल्ला लोगों के पूर्वज थे (शाफ, वही, पृ० ५-६)। 'पेरिप्लस' के अनुसार बर्बर देश से बहुधा दासियों का निर्यात होता था (वही, पृ० २५)

५—पौसय या बौसय ऑक्सस नदी के तीर से आयी दासियां हो सकती हैं।

६—ईसिणिय ऋषिक शब्द का जो चीनी यू-ची का संस्कृत रूप है, प्राकृत स्वरूप है। जिस समय का यह अवतरण है शायद उस समय ऋषिक बल्ख में रहते थे।

७—पक्कण और पाणिनी में आये प्रकण्व (६, १, १५३) एक ही हैं। काशिका के अनुसार यह देश था। डा० वासुदेवशरण (जे० यू० पी० एच० एस० १६, भा० १, पृ० २८) प्राचीन परिखान हिरोडोटस के 'परिकानिआइ' से जो स्टेनकोनो के अनुसार (खरोष्ठी इंसक्रिप्शन्स पृ० १८) फरगना के निवासी थे करते हैं।

८—हेमचंद्र के अनुसार 'लंपाकास्तु मुरण्डाः स्युः' अर्थात लंपाक के रहने वाले मुरंड थे अगर ठीक है तो ये दासियां अफगानिस्तानके लमगान प्रदेश से आती थीं।

की काट उनके देश के कपडो जैसी ही होती थी (सदेस नेवथ्थ गहिय वेसाहि)। ये दासिया इस देश की भाषा नही समझ सकती थी और वे केवल इशारो से दूसरों के विचारो और आज्ञाओं को समझ सकती थी (इगिय चिंतिय पत्थिय वियनियाहि)। विदेशी दासियो के उपरोक्त वर्णन से यह पता चलता है कि ईसा की आरभिक शताब्दियो में भारतीय अंत पुरों में उनका प्रवेश हो चुका था। गुप्तयुग में भी अत पुर मे विदेशी दासियो के रखने की काफी प्रथा थी। कालिदास के नाटको में, राजा की अगरक्षिकाओ की तरह यवनियो का काफी उल्लेख आया है। इस युग में यवन शब्द का आरभिक अर्थ जिसके अनुसार वह यूनानियों का द्योतक था लुप्त हो चुका था और यह शब्द शायद अधिकतर विदेशियो के लिए लागू होने लगा था।

इन विदेशी दासियो के वेश-भूषा का प्रभाव तत्कालीन भारतीय वेश-भूषा पर काफी पडा होगा, कम से कम अजटा के भित्तिचित्रो में आयी दास दासियो की आकृतियो से तो यही पता चलता है। लेकिन यह मान लेना भ्रमात्मक होगा कि इस देश मे विदेशी वेश-भूषाओ का प्रवेश केवल दासियो द्वारा ही हुआ। यथार्थ में शको और कुषाणो की चढाइया, विदेशो से व्यापारिक सबंध तथा बाहर के यात्री इन सब कारणो से भी यहा विदेशी वस्त्रो का कुछ कुछ प्रचार बढा होगा। शक इस देश में कुलाह, तिकोने गले वाले कचुक तथा पूरे पैर के बूट लाये। भारतीय वेश-भूषा के क्षेत्र में इस विदेशी धावे की कहानी हम अजटा के भित्तिचित्रो में पढ सकते है और यह भी देख सकते है कि किस तरह से विदेशी पहरावे भारतीयता के रग में ढल रहे थे। समन्वय की भावना गुप्त कला तक ही सीमिति न रह कर वेश-भूषा के क्षेत्र में भी आयी।

गुप्तयुग में विदेशी वस्त्रो की ओर झुकाव की तुलना हम मुगलयुग में भारतीय पहरावे पर तुर्की प्रभाव से कर सकते है। मध्य एशिया के निवासी मुगल अपनी वेश-भूषा इस देश में लाये और यह वेश-भूषा समयातर मे भारतीयता के ढाचे में ढल कर जातीय पोशाक बन गयी और उसे राजकर्मचारियो और व्यापारियो ने अपना लिया। जामा, पगड़ी, पाजामा, कमरबद और पटके जातिभेद और वर्णभेद छोड कर सभी के वस्त्र बन गये। कुषाणयुग में भी भारतीय वेश-भूषा में कुछ ऐसा ही परिवर्तन हुआ था गो कि उसका प्रभाव इतना व्यापक नहीं था जैसा मुगल युग में। भारतीय दृष्टि में शक तुषार बर्बर थे इसलिए उनकी वेश भूषा भी मान्य नही थी। जब गुप्त कुषाणयुग की संस्कृति के उत्तराधिकारी हुए तो उन्होने कुषाणयुग की वेश-भूषा की उपयोगिता देखते हुए उसे थोडे फेर-फार के साथ अपना लिया। लेकिन इस वेश-भूषा को जबर्दस्ती दूसरो पर लादने का प्रश्न ही नही उठता था और इसीलिए विदेशी पोशाक उन्ही तक सीमित रही जिन्हें वह प्रिय थी और जिन्हें अपने दैनिक जीवन में उसकी उपयोगिता का ज्ञान था। हमारी अधिकतर जनता इस युग में भी अपने पुराने कपडे जो इस देश के लिए उपयुक्त थे, पहनती रही।

गुप्तयुग के सिपाहियो की वर्दी की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। अजंटा के भित्तिचित्रों में सैनिको का एक भाग धोती पहनता है, लेकिन दूसरा भाग कंचुक, पायजामा अथवा जांघिया और पूरे बूट पहनता है और अपने बाल फीते अथवा रुमाल से बांधता है। वास्तव में देखा जाय तो उनकी वेश-भूषा पूर्व निश्चित वर्दी के रूप में है। गुप्तयुग के पहिले की शताब्दियो मे, सिवाय कही कही शातवाहन युग को छोड़ कर, सिपाहियो की कोई पूर्व निश्चित वरदी नही थी और अधिकतर सिपाही धोती ही पहनते थे। गुप्तयुग में सिपाहियो की वर्दी सम्भवत कुषाणकाल की वर्दी के आश्रय पर बनी। गुप्तराजे पराक्रमी योद्धा थे और उन्हें अपनी विजय-यात्राओ के लिए हमेशा एक सुशिक्षित, सुवेष्टित और सामानो से लैस सेना की आवश्यकता रहती थी। नयी वर्दी की उपादेयता गुप्तों की व्यापारिक बुद्धि को ठीक जची होगी और उसी के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय सेना का सृजन हुआ होगा। सेना में जिस तरह का हेर-फेर कुषाण सेना के सगठन को ले कर हुआ होगा। यह भी सभव है कि हूणो से लडाई लडते समय इस तरह के सगठन और वर्दी की उपयोगिता का ज्ञान गुप्तो मे हुआ होगा। जो भी हो इस प्रश्न का निराकरण आसानी से नही हो सकता।

वेश-भूषा के इतिहास के साधन

पुन इतिहास की कडी पकडते हुए हमें पता लगता है कि गुप्तो के समसामयिक दक्खिन के शासक वाकाटक थे। पाचवी शताब्दी के पहले भाग में गुप्त-साम्राज्य और सुदूर दक्खिन के राज्यो के बीच मे वाकाटक साम्राज्य दक्खिन मे सब से मजबूत राज्य थे। अपने समय में वाकाटक साम्राज्य दक्खिनी और उत्तरी भारत के सांस्कृतिक आदान-प्रदान का साधन था। इस वश का छठवी शताब्दी के मध्य मे अंत हो गया। अजटा से मिले वाकाटक लेख भारतीय कला के इतिहास के काल क्रम को ठीक करने में अपना एक विशेष स्थान रखते है। दक्षिण मे वेश-भूषा का इतिहास भी हमें अजटा के भित्तिचित्रो से मिलता है। जब हम दक्षिण की वेश-भूषा की तुलना गुप्तयुग की वेश-भूषा से करते है तो हमें पता चलता है कि गुप्तकालीन पहिरावा दक्षिण तक चला गया था और थोडे मे स्थानिक भेदो को छोड कर सारे भारत में एक ही सा था।

उत्तर भारत में हूणो के पतन और गुप्तो के पुन अपनी शक्ति को प्राप्त करने में असफल होने से बहुत से राज्यो का उदय हुआ जिनमें वलभी, चालुक्य, मौखरी, बाद के गुप्त तथा थानेश्वर के वर्धन जिन्होने बाद के इतिहास में काफी स्थान पाया मुख्य थे। सातवी शताब्दी के उत्कर्ष का युग श्री हर्ष का राज्यकाल (६०५-६४० ई०) था। श्री हर्ष एक कुशल शासक, कलाप्रेमी और साहित्यिक थे, उनके दरबार में उनके जीवनी लेखक बाण भट्ट हुए। हर्ष के समसामयिक दक्षिण के चालुक्य राजा पुलिकेशिन् हुए जिनके समय में

शायद अजटा की १ और २ नबर की लेणे बनी । शायद इन्ही के काल में अथवा इनके कुछ पहले बाघ के भित्तिचित्र बने जो तात्कालिक आचार विचार के जानने के साधन है ।

युवानच्वाग और इत्सिग की भारत-यात्राए इसी युग की सस्कृति धर्म और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती है । इन चीनी यात्रियो के विवरणो और बाणभट्ट के ग्रथो में आये सस्कृति अवतरणो के आधार पर हम सातवी सदी की भारतीय वेश-भूषा का सुदर चित्र खड़ा कर सके है । जैन छेदसूत्रो और चूर्णियो में भी, जिनमें बृहद् कल्पसूत्रभाष्य और निशीथ चूर्णी मुख्य है, हम इस युग अथवा इसके पहले के युग का बहुत सा सास्कृतिक मसाला पाते है । वस्त्रो और पहरावो का तो इनमें विशेष रूप से वर्णन है। इनमे दी हुई वस्त्र की तालिकाओ से यह बताना तो मुश्किल है कि कौन कौन से वस्त्र खास कर गुप्तयुग में ही होते थे, क्योकि इनमें कुछ बहुत पुराने वस्त्रो के भी नाम आ गए है, पर साधारणत तो यह कहा ही जा सकता है कि ये सब वस्त्र चाहे कितने ही पुराने क्यो न हो गुप्तकाल तक बनते थे । गुप्तयुग के बाद इनमे से बहुत से वस्त्रो की चलन कम हो गयी थी, इसीलिए दसवी सदी के जैन टीकाकार उनके ठीक ठीक अर्थ नही कर पाये ।

सभ्य समाज का एक नियम सा है कि उसके अंतर्गत रहने वाले अच्छे कपडे पहनें और इसके लिए इस बात की आवश्यकता होती है कि तरह तरह के रगीन और नक्काशीदार कपडे बनें। बढिया कपडो की इस देश में और बाहर काफी माग थी। भारतीय समाज के स्त्री और पुरुष दोनो कपडे के शौकीन थे । इस युग में छपाई की भी काफी उन्नति हुई और तत्कालीन नक्काशिया जैसे चारखाने, डोरिया, हस मिथुन इत्यादि कालातर में छीपियो के रूढिगत अलकार बन गये ।

अभाग्यवश हमें इस युग के सस्कृत साहित्य में इतनी सामग्री नही मिलती जिसके द्वारा हम उस युग के रहन-सहन आमोद-प्रमोद और वेश-भूषा का पूरा पूरा चित्र खीच सके । कालिदास के काव्यो में वस्त्रो के छिटपुट उल्लेख हुए है पर सातवी सदी की वेश-भूषा पर बाणभट्ट की 'कादबरी' और 'हर्षचरित' से काफी प्रकाश पडता है । बाण भट्ट की सजग आखो से उस युग की छोटी से छोटी बात नही छिपी है । जैन छेद सूत्रो के रचयिता कवि या साहित्यिक नही थे और इसीलिए उनके वर्णनो मे रस की मात्रा कम है। फिर भी उनके रूखे वर्णनो और तालिकाओ में ऐसी सामग्री सुरक्षित है जो अन्यत्र नही मिल सकती ।

वस्त्रों के भेद

अमरकोश के अनुसार वस्त्र चार प्रकार के होते थे यथा (१) वल्क, यानी छालो और रेशों से बने कपडे जिनमें क्षौम भी आ जाता था, (२) फाल, अर्थात् फल के रेशो से

बने वस्त्र जिसमें कपास भी आ जाती थी, (३) कौशेय, अर्थात् रेशमी कपड़े, और (४) राकव अर्थात् पश्मीने[९]। इसी तरह अनुयोगद्वार सूत्र[१०] के वस्त्रो को अडज, वोडज और कीडज इन तीन जातियो मे बाटा गया है। अडज की तो टीकाकार ने विचित्र कल्पना की है जिसके अनुसार ऐसे कपडे हंस के अंडे से बनते थे, शायद उनका तात्पर्य यहां हन दुकूल से है। सूती कपडे को वोडज कहते थे और रेशमी को कीडज।

राकव

रकु सज्ञा से बना राकव शब्द टीकाकारो के अनुसार रकु पशु अथवा ऐसे ही किसी दूसरे पशु के रोए से बने ऊनी कपडे का द्योतक था। पर रकु की पहचान उन्हें नही थी। राकव का एक सीधा सादा अर्थ जो हमारे समझ में आता है वह यह है। पामीर के ऊचे पठारो और मैदानों में एक किस्म के बकरे होते है जिन्हे वहा के रहने वाले रग कहते है। शाल दुशाले बनाने के लिए अच्छा से अच्छा पश्म हमे इन बकरों से मिलना है[११]। पामीर का यह रग ही शायद सस्कृत का रकु है। अगर रकु और रग की समानता ठीक है तो राकव के अर्थ होगे पामीर के आसपास मे बना पश्मीना। जैसा महाभारत से पता चलता है पश्म के नमदे (राकव कट) भी बनते थे[१२]।

जैन साहित्य मे वस्त्रो के भेद

जैसा हम पहले कह आये है जैन साहित्य मे वस्त्रों की अनेक तालिकाए आती है। इन तालिकाओ मे बहुत से वस्त्रो के नाम आते है जिनके आधार पर हम इस युग के वस्त्र की निम्नलिखित तालिका तैयार कर सकते है—

१—जगिय—जगिय ऊनी कपडे को कहते थे टीका मे इसे जंगमोष्ट्राद्यूर्णा निष्पन्न कहा गया है इससे पता लगता है कि यह वस्त्र ऊट के बाल से बनता था[१४]।

२—भगिय—भगेला। अभी भी यह वस्त्र थोड़ा बहुत अल्मोडे मे बनता है और इसका व्यवहार बहुत साधारण लोग करते है[१५]।

३—पोत्तग—ताड के पत्रो से बने कपडे[१६]।

४—खोमिय—अलसी की छाल के रेशो से बना कपडा[१७]। निशीथ चूर्णि[१८] मे

९—अ० शो०, २, ६, १११

१०—अनुयोगद्वार, ३७

११—युज, ए जर्नी टु आक्सस, लंदन, १८९२, यूल द्वारा इन्ट्रोडक्शन, पृ० ५७

१२—महाभारत, २, २२५, ६

१३—आचारांग सूत्र, २, ५, १, ३६४, ३६६, आचारांग सूत्र, १७०, निशीथ चूर्णि (साइक्लो एडीशन,) भा० ७, पृ० ४६७

१४-१७—आचारांग, २, ५, १, १

१८—निशीथ, भा० ७, पृ० ४६७

क्षौम की व्याख्या है—पोण्डमया खोम्मा अण्णे भणति रुक्खेहिंतो निग्गच्छन्ति तहा वडेहिंती पादगा साहा। इस व्याख्या के अनुसार क्षौम रुई अथवा वट शाखाओ की छाल के रेशे से बनता था । टीका मे जो दुविधा देख पडती है उससे पता चलता है कि ७वी सदी में क्षौम का बनना कम हो गया था ।

५—तूलकड—सेमल के सूत से बने वस्त्र ।

ये पांचो तरह के कपडे कीमती नही होते थे और इसलिए जैन साधु इनका व्यवहार कर सकते थे ।

कीमती कपड़े

६—आइणगाणि—चमड़े से बने वस्त्र[१९]। निशीथ मे[२०] इसकी व्याख्या है 'अजिनं चम्मं तम्मि जे किरति', अर्थात् अजिन मृगचर्म से बने वस्त्र होते थे । गुप्तकाल में लगता है शीतप्रधान प्रान्तो मे पोस्तीन जैसा कोई कपडा पहना जाता था ।

७—सहिणाणि—महीन सूत के बने वस्त्र[२१]। निशीथ[२२] में यह वस्त्र सूक्ष्म कहा गया है ।

८—सहिणकल्लण—आचारांग की टीका में इस वस्त्र की व्याख्या 'वर्णछ्व्यादिभिश्च कल्याणानि, शोभनानि वा' अर्थात् रग और अलकारो से युक्त वस्त्र किया गया है[२३] । निशीथ[२४] में इसकी व्याख्या इस तरह से है, 'कल्लाण स्निग्ध लक्षणयुक्त वा किञ्चि सहिण कल्लणं चोभयो' अर्थात् कल्याण का अर्थ चिकना अथवा नकाशीदार कपड़ा होता है, कही कही वस्त्र में चिकनाई और नकाशी दोनो होती है।

९—आयाणि—बकरे के रोए से बने वस्त्र । आचाराग[२५] में इस कपडे की व्याख्या है—'क्वचिद्देश विशेषेऽजा सूक्ष्म रोमवत्यो भवन्ति, तत् पक्ष्मनिष्पन्नानि आजकानि भवन्ति' अर्थात् किसी देश विशेष में बकरियां कोमल रोए वाली होती है, उनके पश्म से बने कपडे आजक कहलाते है । यहा आजक से पश्मीने का मतलव है और लगता है कि राकव और आजक एक ही वस्त्र के पर्यायवाची है । निशीथ[२६] में इस वस्त्र की अजीव व्याख्या है—'आय णाम तोसलि विसये सीयतलाए अयाणा खुरेसु सेवालतरीया लग्गति तया

१९—आचाराग, २, ५ ,१, ३
२०—निशीथ, ७, पृ० ४६७
२१—आचाराग, २, ५, १, ३
२२—निशीथ, ७, पृ० ४६७
२३—आचाराग, २, ५, १, ३
२४—निशीथ, ७, पृ० ४६७
२५—आचाराग, २, ५, १, ३
२६—निशीथ, ७, पृ० ४६७

वत्यं कीरति' अर्थात् तोसलिविषय मे ऋपितडाग के पास बकरियों के खुरो में एक तरह की सेवार फंस जाती है उसी से आजक बनता है । मतलब यह है कि ओड़ीसा में एक ऐसी सेवार होती थी जिससे आजक बनता था । वास्तव मे चूर्णिकार को आजक के ठीक अर्थ का पता नही था, पर अर्थ करना जरूरी था और इसीलिए उसने, कोरी कल्पना कर दी ।

१०—कायाणि—नीली रुई के सूत से बना कपडा । आचारांग की टीका[२७] में इसकी व्याख्या है—'तया क्वचिद्देशे इन्द्रनीलवर्ण. कर्पासो भवति तेन निष्पन्नानि' अर्थात् किसी देश में इद्रनील वर्ण की कपास होती है, उमसे बना वस्त्र । यहा कोकटी जैसी किसी कपास से मतलब है । निशीथ[२८] मे इसकी व्याख्या है 'काकविसए काकजघस्स जही मणी पडितो तटागे तत्थ रत्तानि जाणि ताणि काय भणति, द्रुते वा काए रत्तं।' काक विषय मे काकजघ की मणि जिस तालाब में मिलती है उससे रगा वस्त्र अथवा रक्त की द्रुति से रगा वस्त्र । इस व्याख्या का ठीक ठीक अर्थ समझ मे नहीं आता ।

११—दुगुलाणि—दुकूल की व्याख्या आचाराग की टीका[२९] में है 'गौड विपय विशिष्ट कार्पासिक', अर्थात् गौड देश (बंगाल) में उत्पन्न एक विशेष तरह की कपास से बना वस्त्र। लेकिन निशीथ[३०] मे दुकूल की कुछ और ही व्याख्या है—'दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागो घेत्तुं उदूखले कुट्टइज्जति पाणिएण ताव जाव भूसी भूतो ताहे कच्चति दुगुल्लो' अर्थात् दुकूल वृक्ष की छाल ले कर पानी के साथ तब तक ओखली में कूटते हैं जब तक उनके रेशे अलग नही हो जाते । बाद में वे रेशे कात लिए जाते हैं । निशीथ की यह व्याख्या ठीक मालूम पडती है । अमरकोश में दुकूल क्षौम का पर्यायवाची है[३१] और उसके आवरणों को निवीत और प्रावृत कहते थे । ऐसा लगता है कि लोग जब दुकूल के अर्थ भूल गए तब सभी महीन धुले वस्त्रो को दुकूल कहा जाने लगा[३२]।

हम दुकूल गुप्तयुग के वस्त्र निर्माण कला का एक उत्कृष्ट नमूना था । आचारांग[३३] में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हस दुकूल का जोडा पहनाया था वह इतना हलका था कि हवा का मामूली झटका उसे उडा ले जा सकता था । उसकी बनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे । वह कलावत्तू के तार से मिला कर बना था और उसमें हंस के अलकार थे । नायाधम्म कहाओ[३४] के अनुसार यह जोड़ा वर्ण स्पर्श से युक्त,

---

२७—आचाराग, २, ५, १, ३

२९—आचाराग, २, ५, १, ३

३०—निशीथ, ७, पृ० ४६७

३१—अ० को०, २, ६, ११२

३२—देखिए रघुवश पर मल्लिनाथ की टीका, १, ६५

३३—आचाराग, २, १५, २०

३४—नायाधम्म, १, १३

स्फटिक के समान निर्मल और बहुत ही कोमल होता था । दहेज मे और कीमती कपडो के साथ दुकूल के जोडे भी दिये जाते थे[३५] ।

१२—पट्ट—रेशमी कपडा—आचाराग की टीका[३६] में इसकी व्याख्या है 'पट्टसूत्र निष्पन्नानि' अर्थात् पट्टसूत्र से बने वस्त्र । बृहद् कल्पसूत्र भाष्य की टीका मे भी इसकी यही व्याख्या है ।

कपडो के भेद मे जैसा हम ऊपर देख आये है अनुयोग द्वार[३७] मे कीडय भी आया है। इसके निम्नलिखित भेद गिनाये गए है, (क) मलय, (ख) अशुक, (ग) चीनाशुक, और (घ) कृमिराग। बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[३८] में उपरोक्त रेशमी कपडो के अतिरिक्त पट्ट और सुवर्ण नामक रेशमी वस्त्रो के और उल्लेख है।

क—मलय—आचाराग[३९] में इसकी टीका 'मलयज सूत्रो निष्पन्नानि' अर्थात् मलय सूत्र से बना वस्त्र किया गया है, लेकिन बृहत् कल्पसूत्रभाष्य के अनुसार यह रेशमी कपडा था । हो सकता है इस रेशम का नाम दक्षिण विहार में जिसे मलय भी कहते थे पैदा होने से पडा ।

ख—अशुक—बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[४०] की टीका में इसें कोमल और चमकीला रेशमी कपडा कहा गया है । निशीथ[४१] में इस शब्द की लबी चौडी व्याख्या है—'असुयाणि कणगकतानि, कणगखसियानि, कणगचित्ताणि, कणग विचित्ताणि' अर्थात् अशुक में तारबाने का काम होता था, अलकारो में जरदोजी (खचितानि) का काम तथा उसमें सोने के तार से चित्र विचित्र नकाशिया बनी होती थी । उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि अंशुक किमखाब अथवा पोत जैसा कोई कपडा था । आचारांग में भी इसका उल्लेख है[४२] ।

ग—चीनाशुक—बृहद् कल्पसूत्र भाष्य[४३] मे इसकी व्याख्या 'कोशिकाराख्य कृमि तस्माज्जात' अथवा 'चीनानामजनपद तत्र य. श्लक्ष्णतरपट तस्माज्जात'—अर्थात् कोशकार नामक कीडे के रेशम से बना वस्त्र अथवा चीन जनपद के बहुत चिकने रेशम से बना कपडा है। निशीथ[४४] मे इसकी व्याख्या है 'सुहुमतर चीणसुय चीण विसए वा जात

३५—अतगडदसाओ, पृ० ३२
३६—आचाराग, २, ५, १, ३
३७—अनुयोगद्वार, सू० ३७
३८—वृ० क० भा० ३, ३६६१
३९—आचाराग, २, ५, १, ३
४०—वृ० क० भा०, ४, ३६६१
४१—निशीय, ४, पृ० ४६७
४२—आचाराग सूत्र, २, ५, १, ३
४३—वृहत् कल्पसूत्र, ४, ३६६१
४४—निशीय, ७, पृ० ४६७

चीणंसुयम्' अर्थात् बहुत पतले रेशमी कपडे अथवा चीन के बने रेशमी कपडे को चीनांशुक कहते है । उपरोक्त व्याख्याओ से पता चलता है कि बहुत पतले रेशमी कपडे और चीन के रेशमी कपड़े दोनो को ही चीनाशुक कहते थे ।

घ—कृमिराग—किरिम दाना से बने गुलाली रंग में रगा हुआ रेशमी कपडा ।

ङ—सुवर्ण—बृहद्कल्पसूत्र भाष्य[४५] की टीका में इसे सुनहरे रंग वाला रेशमी वस्त्र कहा गया है । यह रेशम के खास तरह के कीड़ो से बनाये कोशो से निकलता था। लगता है यहा आसाम के मूगा रेशम से जिसका रग सुनहला होता है तात्पर्य है ।

१३—पत्रोर्ण—इसे आचाराग सूत्र[४६] में पत्तुन्न कहा गया है और यह छाल के रेशे से बना एक विशेष प्रकार का वस्त्र था । अमरकोश[४७] मे पत्रोर्ण एक तरह का रेशम कहा गया है । शायद यह किसी किस्म का जगली रेशम रहा हो। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी का कहना है इस रेशम को वड़ और लकुच की पत्तिया खाने वाले कीडे पैदा करते थे ।

उपरोक्त रेशमी कपडो मे जो वेशकीमती होते थे उन्हे अमरकोश[४८] ने महाधन की सज्ञा दी है ।

१४—देसराग—आचारागसूत्र[४९] में इसे केवल रंगीन कपडा कहा गया है पर निशीथ चूर्णि[५०] में इसका निम्नलिखित वर्णन है —'जत्यविसए या रग विधिनाए देसा रत्ता देसराग', जरत् विषय मे जो रग विधि है उसके अनुसार रगा हुआ वस्त्र। इससे यह पता लगता है कि जाटो के देश अर्थात् पूर्वी पजाब तथा पश्चिमी युक्त प्रदेश में कपडे रगने की कोई ऐसी विशेष प्रथा थी जो सारे देश मे मशहूर थी। हो सकता है देसराग का चुनरी रगने से सबध हो ।

१५—अमिल्ला—आचारागसूत्र[५१] मे तो इसे बकरे के चमडे से बना कपडा कहा गया है पर यह अर्थ कोई सगत नही मालूम पडता। निशीथ चूर्णि[५२] मे इसका निम्नलिखित अर्थ दिया है, 'रोमेसुकता अमिला अथवा णिम्मला अमिल्ला घट्टिणी सुघट्टिता ते परिभुज्ज माणा कडे कडेति', रोम से बना वस्त्र अमिल्ला कहलाता है अथवा अमिल्ला वह निर्मल वस्त्र

४५—बृहत् क० सू० ४, ३६६१

४६—आचाराग, २, ५, १, ३

४७—अमरकोश, डा० कुन्दन शर्मा द्वारा सपादित, पृ० १५७

४८—अमरकोश, २, ६, ११३

४९—आचाराग सूत्र, २, ५, १, ३

५०—निशीथ, ७, ४६७

५१—आचाराग, २, ५, १, ३—८

५२—निशीथ, ७, ४६७

है जिस पर घोटे की कुदी से कलफ आ गया है । उपरोक्त अर्थों को देखने से तो यही पता चलता है कि कुदी किए हुए किसी विशेष तरह के वस्त्र से अमिला का तात्पर्य है ।

१६—गज्जफल—आचाराग[५३] में इसे फडफडाता कपडा कहा गया है । निशीथ चूर्णि मे[५४] इसी तरह का अर्थ है—'समण सद्द करति ते गज्जला'—सुनने में जो शब्द करे। लगता है कि वह लकिलाट की तरह कोई कडा कपडा रहा होगा ।

१७—फालिय—आचाराग के[५५] अनुसार यह स्फटिक के समान साफ और पारदर्शी कपडा था । निशीथ चूर्णि[५६] में भी इसका यही अर्थ है और इसे फाडिग कहा है, 'फडिगपहाणनिभा फडिगा अच्छा' इत्यर्थ' स्फटिकशिलाके समान स्वच्छ । लगता है यह कोई बहुत ही महीन मलमल, जिसके लिए यह देश प्रसिद्ध था, रही होगी।

१८—काय—इस शब्द के अर्थ का पता नही है पर शायद यह काक विषय (पूर्वी मालवा) में बना कपडा हो[५७] ।

१९—कोयवाणि—रोएदार कबल अथवा ऊनी वस्त्र[५८] । निशीथ चूर्णि[५९] इसे कोतव कहा गया है । आधुनिक थुल्मे की तरह यह कोई वस्त्र था ।

१९—कवलगाणि—इसमें सभी तरह के ऊनी वस्त्रो, चादरो इत्यादि का समावेश हो जाता है[६०] ।

२०—पावराणि[६१]— चादरें। यहां ओढने और बिछाने दोनो तरह की चादरों से मतलब है, पर निशीथ के अनुसार[६२] यहा पावर के अर्थ नील गाय के चमडे से बनी चादर है ।

उपरोक्त कपडे कीमती होते थे इसीलिए जैन छेद सूत्रो में साधुओ के लिए इन्हे वर्ज्य माना है । जैन साधु निम्नलिखित खालें और लोइया (आइण्णे पावराणि) भी वेशकीमत होने से नही खरीद सकते थे ।

५३—आचाराग, २, ५, १, ३—८
५४—निशीथ, ७, ४६७
५५—आचाराग, २, ५, १, ३—८
५६—निशीथ, ७, ४६७
५७—आचाराग, २, ५, १, ३—८
५८—वही
५९—निशीथ, ७, ४६७
६०—आचाराग, २, ५, १, ३—८
६१—वही
६२—निशीथ, ७, ४६७

शाले और चादरें

१—उद्रा—ऊदविलाव के चमडे के बने रूमाल। आचारांग[६३] की टीका के अनुसार उद्र 'सिंधुविषयमत्स्या तत्सूक्ष्मचर्मनिष्पन्नानि' अर्थात् यह वस्त्र सिंध में ऊद विलाव के चमडे से बनता था। निशीथ में[६४] इसकी व्याख्या है 'मुमुणागिती जलचरामत्ता तेसि अजिणा उद्दा, अण्णे भणति उद्दे चम्म गोरमिगाण अजिणा' अर्थात् जल में रहने वाली सूस का चमडा, दूसरे कहते हैं कि उद्र किसी सफेद पशु का चमडा होता था। समुद्री ऊद-विलाव का चमडा तो बहुत महीन और पतला होता है। हो सकता है कि प्राचीन काल में इन समुद्री ऊदो के चमडो से ओढने बनाये जाते रहे हो।

२—पेस—आचारांग[६५] में पेस की व्याख्या है 'पेसाणीत्ति सिंधुविषय एव सूक्ष्म चर्माण पशवस्तच्चर्म निष्पन्नानीति', अर्थात् सिंधु देश के एक पशु विशेष महीन चमडे से बना हुआ। निशीथ[६६] में इसके अर्थ हैं 'पसवातेसि अइण्ण, अण्णे भणति पेसा लेमा य मच्छादियाए', अर्थात् पशु का चमड़ा, दूसरो के अनुसार पेसा मछलियो का चमडा था। इन व्याख्याओ से तो यह सिद्ध होता है कि पेस किसी पशु विशेष का चमडा था, लेकिन वैदिक और बौद्ध साहित्य में पेस सदा कसीदे के काम के लिए आया है। यहा पर भी सुंदर कसीदे के काम से बने शाल से ही मतलब है कि जिसका ज्ञान टीकाकारो को न था।

३—पेसलाणि—आचारांग में[६७] इसका अर्थ है 'तच्चर्म-सूक्ष्म-पक्ष्म-निष्पन्नानि; उस चर्म के महीन पश्म से बनी चादर। हो सकता है यहा पक्ष्म से कसीदे वाली पश्मीने की चादर से मतलब हो।

४—नीलमिगाईणग—नीलगाय के चमडे से बनी चादर[६८]।

५—गोरमिगाईणग—सफेद जानवर के चमड़े से बनी चादर[६९]।

६—कणगाणि—सुनहरे काम की चादर[७०]। निशीथ में[७१] इसके दो अर्थ दिये गए हैं, 'वरडगपारिगादिपावरगा ते सुवण्णे, सुवण्णे द्रुते सुत्त रज्जति तेन जं वून कणगम्' अर्थात् वट इत्यादि की छाल के रेशे से बनी चादर सुवर्ण कहलाती थी, अथवा सुवर्ण की

६३—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६४—निशीथ, ७, ४६७
६५—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६६—निशीथ, ७, ४६७
६७—आचारांग, २, ५, १, ३—८
६८—वही
६९—वही
७०—वही
७१—निशीथ, ७, ४६७

द्रुति (घोल) मे रंग कर जिस सूत से कपडा बुना जाय उसे सुवर्ण कहते है। सुवर्ण की आखीरी व्याख्या बडे काम की है क्योकि इसमें सोने के घोल में रग कर कलाबत्तू बनाने की क्रिया की ओर सकेत है। जहा तक हमें पता है मुगल युग मे बिटाई से कलाबत्तू बनता था, अर्थात् चादी सोना मिला कर तारकश तार खीचते थे। बेटरी की सहायता से कलाबत्तू रगने की त्रिया तो फ्रास से इस देश मे हाल ही में आयी। लेकिन इस उल्लेख से तो यह सिद्ध होता है कि सोने के घोल मे कलाबत्तू रगने की प्रक्रिया गुप्त युग मे भी लोग जानते थे। सोने की द्रुति बनाने की क्रिया वैद्यक शास्त्रो मे दी हुई है पर अब वह काम मे नही आती।

७—कणगकतिय—आचाराग[७२] की टीका मे इसे 'कनकस्येव कातिर्येषा' अर्थात् सोने की कान्तिवाला कहा गया है लगता है इस दुशाले पर सोने का भरावदार काम होता था।

८—कणग पट्ट—आचाराग[७३] मे इसे 'कृतकनकरसपट्टानि' कहा है जिसके अर्थ होते है तरल सुवर्ण से बना हुआ वस्त्र। लगता है यह कपडा अथवा चादर पूरी सुनहरे कलाबत्तू से बिनी जाती थी। निशीथ[७४] मे कनक पट्ट के दो अर्थ दिये गए है यथा 'कणगेण जस्स पट्टाकता, अहवा कणग-पट्टा मिगा' अर्थात् जिस वस्त्र का किनारा सुनहरे काम वाला होता था अथवा कनक पट्ट मृग की खाल से बना वस्त्र।

९—कणगखइयाणि—कनक खचित प्रावार की व्याख्या आचाराग[७५] मे है 'कनकरसस्तबकाचितानि' जिसके ठीक ठीक अर्थ समझ में नही आते पर यहा जरदोजी के काम से मतलब है।

१०—कणगफुसियाणि[७६]—यहा शायद हलके सुनहले काम वाली चादर से तात्पर्य है।

११—कणगयक—निशीथ[७७] में इसकी व्याख्या यो है 'अता जस्स कणगेणकता' अर्थात् वह चादर जिसके किनारो पर सुनहरा काम हो।

१२—कणगफुल्लिय—निशीथ[७८] में इस प्रावार का निम्नलिखित अर्थ दिया गया है, 'कणगसुत्तेन फुल्लिया जस्स फुल्लिताउ दिण्णाउ त कणग फुल्लियं जहा कद्दमेण उड्डेडिज्जति' कनक सूत्र अर्थात् कलाबत्तू से जो फूले फूल काढे गए हो। बाद का

७२—आचाराग, २, ५, १, ३—८
७३—वही
७४—निशीथ, ७, ४६७
७५—आचाराग, २, ५, १, ३—८
७६—वही
७७—निशीथ, ७, ४६७
७८—वही

अर्थ ठीक समझ मे नहीं आता लेकिन उसमे कलमदारी के काम की ओर संकेत मिलता है। कर्दम के अर्थ यहां मसाला या मोम से है जिसका कलमदारी में काफी काम पडता था।

१३-१५—उट्टाणि, वग्घानि, विवग्घानि—ऊंट, बाघ और चीते के चमडो से बनी चादरें[७९]।

१६—आभरणानि—पत्ती जैसे एक अलंकार से सुसज्जित—'पनिकादि एकाभरणेन मंडिता'। आभरण—विचित्त[८१] भरी नकाशीदार चादर थी जिसकी नकाशियो में पत्तिया चन्द्रलेखा, स्वस्तिक, घंटिका और मोती आते थे।

इन वस्त्रों और चादरो के सिवाय निशीथ और दूसरे जैन ग्रंथो में निम्नलिखित वस्त्रो के उल्लेख है—

१—पखगाणि[८२]—निश्चय ही इससे पशमीने का उद्देश्य है।

२—पाणालाणि[८३]—आवरण के लिए कपडे।

३—तिरीड पट्ट—तिरीट वृक्ष (सिम्प्लिकोस रेसीमोसा) की छाल के रेशो से बना कपडा। निशीथ[८४] मे इसकी चौडी व्याख्या की गयी है—'तिरीटरुक्खस्स वागो, तस्स ततुपट्टवरिसो सो तिरीडपट्टो तम्मि कयाणि तिरीडपट्टाणि अहवा कोटयलाला मलय विसये मलयाणि पत्ताणि कोविज्जति तसु वालेसु पत्तुण्णाणि दुगुल्ललातो अभतरहिरे जं जं उपज्जति त अंसुयम्' अर्थात् तिरीट वृक्ष की छाल की रेशो से बना पट्ट और उनसे बना तिरीट पट्ट अथवा मलय देश मे मलय वृक्ष के पत्तो पर कीडे अपनी लार इकट्ठे करते है इसकी ऊपरी छाल से तो पत्रोर्ण और दुकूल बनते है और भीतरी हीर से अंशुक। निशीथ की यह दूसरी व्याख्या दंतकथा सी मालूम पडती है।

४—वडग—अतगडदसाओ[८५] में राजकुमार गौतम के विवाह पर दहेज में मिले वस्त्रो में वडग के भी आठ जोडे थे। वडग का मतलब यहां टसर से है।

५—रल्लक—अमरकोश में इसे एक तरह का कम्बल कहा गया है[८६]। युवान च्वांग ने भी होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है[८७]। उनके यात्रा विवरण के अनुसार यह ऊनी कपडा किसी जंगली जानवर के ऊन से बनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था और उससे बने कपडे का काफी मूल्य होता था।

७९-८१—वही

८२—निशीथ, ७, ४६७

८३-८४—वही

८५—अंतगडदसाओ, पृ० ३२

८६—अमरकोश, २, ६, ११६

८७—वाटर्स, युवान चांग्स ट्रावेल्स इन इंडिया भा० १, पृ० १४८, लंदन, १९०४

६—शाणक—एक जगह युवान च्वाग[८८] का कहना है कि भिक्षु सन (शणक) के बने गहरे लाल कपडे पहनते थे । शायद किसान और मजदूर भी सन से बने सस्ते कपड़े पहनते थे ।

कपास के बने वस्त्र

गुप्त युग में प्राय जितनी तरह के कपडे बनते थे उनके उल्लेख हमें संस्कृत और प्राकृत साहित्यो से मिलता है । पर आश्चर्य की बात है कि इस युग में सूती कपडो के बारे में हमें अधिक जानकारी नही मिलती । इसका कारण यही हो सकता है कि सूती कपडे इतने प्रचलित थे कि उनके बारे में कुछ अधिक कहना उचित नही समझा गया । इसमें शक नही कि इस युग में बनारस, बगाल तथा दक्षिण में अच्छे से अच्छे कपडे बनते थे । लगता है आचाराग मे आये गर्जभ, स्फटिक इत्यादि सूती वस्त्र थे । बृहद् कल्पसूत्र भाष्य[८९] में एक जगह रुई कातने की विधि दी हुई है । पहले 'सेड्ग' नामक रुई से बिनौले निकाल लिए जाते थे और बाद में वह धुन ली (पिञ्जितम) जाती थी । अत में इस साफ रूई की पूलिया (पेलु) कातने के लिए बना ली जाती थी।

कपड़े बनाने की प्रक्रिया

अमरकोश में कपडे बिनने में करघे पर से ले कर माडी देने और कुदी करने तक की क्रियाओ का वर्णन है । करघे पर से तुरन्त कपडे को अनाहत (बिना कुदी किया हुआ), निष्प्रवाणि (तुरन्त करघे से उतरा) या तत्रक (करघे पर बुना) कहते थे[९०]।

कपडो के नाम—कपडे के छोरो को दशा या वसति, लबाई को दैर्घ्य, आयाम और आरोह और चौडाई को परिणाह या विशालता कहते थे[९१]।

कपडो के भिन्न भिन्न नाम और दाम—कपडो के छ पर्यायवाची यथा वस्त्र, आच्छादन, वास, चैल, वसन और अशुक थे[९२] । कीमती वस्त्रो के लिए सुचेलक और पट शब्द आए है और मामूली कपड़ो के लिए वराशि और स्थूल शाटक[९३]। यहा यह बात गौर करने की है कि हलके और नकली कलाबत्तू की बनी साडी को आज दिन भी बनारस में रासी माल कहते है जो संस्कृत बराशि का का रूपातर मात्र है । लेकिन वैदिक साहित्य में वरासि के अर्थ बरस की छाल के रेशे से बना एक घटिया कपड़ा होता है[९४] ।

८८—वही, भा० १, पृ० १२०

८९—बृहद्, ३, २९९६

९०—अ० को०, २, ६, ११२

९१—अ० को०, २, ६, ११४

९२—अ० को०, २, ६, ११५

९३—अ० को०, २, ६, ११५

९४—भारतीय विद्या, १, १, पृ० ३४

चादरें—अमरकोश में ओढने विछाने की चादरो के भी कई नाम कहे गए हैं। ओढने की चादर को निचोल और प्रच्छदपट और कालीन के लिए रल्लक और कवल शब्द आए है [९५]।

कपडे की धुलाई—नायाधम्म[९६] के अनुसार कपड़े पहने सज्जी के घोल में डाल दिये जाते थे। फिर इन्हें उवाल लिया जाता था और वाद मे साफ पानी से धो लिया जाता था। आज दिन भी धोवी अक्सर कपड़े इसी तरह धोते हैं।

कपडे वनाने के प्रसिद्ध स्थान

मथुरा की डोरिया—युवान च्वाङ का कहना है कि उसके समय मे मथुरा की डोरिया प्रसिद्ध थी[९७]। इस सबंध मे यह ध्यान देने योग्य वात है कि अजंटा के भित्तिचित्रो में स्त्री-पुरुष दोनो धारीदार कपड़े पहनते हैं।

मदसोर के रेशमी वुनकर—कुमारगुप्त के काल के मदसोर से मिले एक शिलालेख से पता चलता है कि लाट अर्थात् गुजरात से कुछ रेशमी कपडे वुनने वाले मदसोर में आ कर वस गए थे। इनमे से कुछ तो दूसरे व्यवसायो मे लग गए पर वाकी ने एक अपनी अलग श्रेणी वना ली। इन श्रेणी ने स० ४३७-३८ में एक सूर्य का मन्दिर वनवाया जिसकी मरम्मत ४७३-७४ ई० मे हुई और इसी अवसर पर उपरोक्त शिलालेख प्रस्तुत किया गया[९८]। इस लेख मे कारीगरो ने अपने व्यवसाय और कारीगरी के प्रति अपना स्वाभालिक अभिमान प्रकट किया है। वे कहते हैं कि तारुण्य और कांति से युक्त होने पर भी, सुवर्णहार तावूल और फूलो से सजे होने पर भी तव तक स्त्रिया प्रिय नहीं वनती जव तक वे रेशमी वस्त्र न पहने। ये वस्त्र छूने मे कोमल (स्पर्शवता) तथा वर्णान्तर विभाग से अलकृत होते थे[९९]।

ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि गुप्तयुग मे मंदसोर के वने रेशमी जोड़े स्त्रियो को वहुत प्रिय थे। ये वस्त्र छूने में कोमल होते थे और उनमे रगो का अपूर्व समतुलन होता था। वर्णन से ऐसा मालूम पडता है कि यहा पटोले से प्रयोजन है।

आसाम के रेशमी कपड़े

आसाम की अडी और मूगा आज दिन भी अपनी मजबूती के लिए प्रसिद्ध हैं। गुप्त-युग में आसाम में नक्काशीदार रेशमी कपडे वनते थे। आसाम के राजा ने श्री हर्ष के पास जो उपायन भेजे[१००] उनमें भोजपत्र जैसी कोमल जातीपट्टिका और कोमल निचोल से ढंके

९५—अ० को०, २।६।११६

९६—नायधम्म, ३, ६०

९७—वाटर्स, वही, भा० १, पृ० ३०१

९८—इ० एंटि०, १५, पृ० १९६

९९—वही, पं० १३३

१००—हर्षचरित, पृ० २१८, (कावेल का अनुवाद)

भी थे । कावेल ने जाती पट्टिका का अर्थ यहा धोती अथवा साडी किया है पर यह ठीक नही है। वास्तव मे इसके शाब्दिक अर्थ के अनुसार इसका अर्थ होता है रेशमी वस्त्र के लबे थान जिनमें चमेली के फूलो की नकाशी बनी हो (जाती चमेली, पट्टिका=पट्टिया) । भोजपत्र से इसकी तुलना से पता लगता है की जातीपट्ट किसी तरह का मूगा था क्योकि आज दिन भी इसका रग भोजपत्र जैसा ही होता है । चित्रपट म लगता है भरी नकाशी होती थी ।

बगाल के धोती दुपट्टे

गुप्तयुग में भी बगाल अपने कपडो के लिए प्रसिद्ध था । हर्षचरित में पौंड्र (उत्तरी बगाल) के बने धोती दुपट्टे की तारीफ की गयी है।

गुजरात की बाधणी

गुजरात और राजपुताने की बाधणी या चूनरी आज दिन भी प्रसिद्ध है[१०१] । हर्षचरित में [१०२] इसे पुलकबध कहा गया है और इससे कभी कभी स्त्रियो के कचुक बनते थे ।

व्यवहारसूत्र में कपड़े बनने के प्रसिद्ध स्थल

व्यवहारसूत्र भाष्य में[१०३] एक जगह उन जगहो की सूची दी हुई है जहा कपडे बनते थे। समुद्र पार (पारावतादि) विदेशो से भी लगता है कपडे आते थे । टीकाकार के अनुसार यहा आदि से पौंड्र का मतलब है । व्यवहारसूत्र के भाष्य में जो शायद गुप्तयुग में लिखा गया था कोटंब, ताम्रलिप्ति और सिंधु कपडे बनाने के बडे केन्द्र थे । टीकाकार ने कोटब की व्याख्या गौड देश के अर्थात् बगाली कपडे से की है पर शायद यह ठीक नही है। जैसा बौद्ध साहित्य से पता चलता है कोटुबर [१०४] औदुबर देश (पठान कोट) में बनता था। ऐसा पता चलता है कि ग्यारहवी सदी में जब व्यवहार भाष्य की टीका लिखी गयी कोटुबर की याद इतनी हलकी पड गयी थी कि टीकाकार ने उसे पजाब से उठा कर बगाल मे रख दिया । ताम्रलिप्ति अर्थात् कलकत्ते के पास आधुनिक तामलुक भी उस युग में कपड़े बनाने का प्रसिद्ध केन्द्र था । सिंधु प्रदेश भी कपड़ो के लिए प्रसिद्ध था ।

काशी के बने वस्त्र

इस युग में काशी के बने वस्त्रो का तो कोई साहित्य में उल्लेख नही मिलता पर लगता है कि पुष्पपट्ट [१०५] यानी किंखाब यही बनता था।

१०१—वही, पृ० ७२
१०२—वही, पृ० २६१
१०३—व्यवहारसूत्र भाष्य, ७, ३
१०४—भारतीय विद्या, १, १, पृ० ४०
१०५—हर्षचरित, पृ० ८५

विवाह में कपड़े देने की प्रथा

शान-शौकत और लेन-देन की प्रथा इस देश मे विवाह की एक खास बात है । उस अवसर पर बराती और घराती दोनो दिखाव बनाव मे एक दूसरे से होड़ लगाते है। इस प्रथा की प्राचीनता हमें हर्षचरित से लगता है । हर्ष की बहन राज्यश्री के विवाह के समय राज महल में अच्छे से अच्छे कपड़े दहेज में देने के लिए सजाये गए थे । क्षौम, सूती कपड़े (बादर), दुकूल, लालातंतुज, नेत्र और अंशुक इन कपडो में मुख्य थे ।[१०६] यह ठीक पता नही लगता कि नेत्र क्या था । कावेल के अनुसार यह कलाबत्तू और रेशम से बिना एक तरह का वस्त्र होता था । अमरकोश[१०७] के टीकाकार क्षीरस्वामी के मत से नेत्र एक वृक्ष विशेष की छाल के रेशे से बनता था । १४ वी सदी तक बंगाल में नेत्र अथवा नेत एक मजबूत रेशमी कपड़े को कहते थे । नेत की पाचूडी पहनी और बिछाई जाती थी[१०८] । श्री कावेल ने लालातंतुज का अर्थ स्पाइडर्स सिल्क अर्थात् बहुत महीन रेशमी कपडा किया है । इस संबंध में हम निशीथ चूर्णि की तिरीटपट्ट की व्याख्या की ओर ध्यान दिला देना चाहते है। यह तिरीटपट्ट कीड़ो के लार से बना माना गया है । ये कीड़े मलय वृक्ष के पत्तो पर अपनी लार इकट्ठा करते थे और उसके ऊपरी भाग से तिरीटपट्ट बनता था । जो भी हो पता ऐसा लगता है कि लालातंतुज किसी बहुत पतले रेशमी पारदर्शी कपड़े का नाम था।

संस्कृत साहित्य मे सिले और बेसिले कपड़े

यह कहा जा चुका है कि अधिकतर भारतीय सिले कपड़े नही पहनते थे। पुरुष धोती और दुपट्टे पहिनते थे और स्त्रिया साड़ी। हमारे देश की जलवायु को देखते हुए, जो यहां में अधिकतर गरम और शुष्क रहती है, धोती, दुपट्टा, चादर और साड़ी उपयुक्त और स्वास्थ्यकर पहरावे है । लेकिन इसके यह माने नही है कि भारतीयों को सिले कपड़े पहनने में कोई रुकावट थी । बिना सिले कपड़े सादे होते थे इसलिए धोती, दुपट्टा और चादर ऐसे कलात्मक ढग से पहने जाते थे कि जिससे पहनने वाले के सौदर्य में अभिवृद्धि होती थी और कपड़े भी बड़े सुहावने लगते थे ।

अमरकोश में सिले और बेसिले कपडो के बारे मे बहुत कम कहा गया है। उसमें धोती के लिए चार शब्द है यथा, अन्तरीय, उपसंव्यान, परिधान और अधोंशुक,[१०८] तथा दुपट्टे और चादर के लिए पांच यथा, प्रावार, उत्तरासंग, बृहतिका, संव्यान और उत्तरीय[१०९] ।

१०६—वही, पृ० १२५

१०७—अ० को०, वही, पृ० ३१३

१०८—नगेन्द्रनाथ दास, [illegible], पृ० १८०-१८१, कलकत्ता, १९३५

१०८—अमरकोश, २, ६, ११७

१०९—वही, २, ६, ११७-११८

धोती और दुपट्टे के लिए भिन्न समानार्थक शब्दो में, उनके नाम और बनावट के अनुसार क्या क्या भेद थे, यह कहना कठिन है।

चोली

स्त्रियो की चोली के लिए चोल और कूर्पासक शब्द आये है[११०], पर यह नही बतलाया गया है कि इन दोनो मे क्या भेद था। चोली अथवा कचुक के अर्थ में कालिदास ने कूर्पासक शब्द का कई बार व्यवहार किया है[१११]। जैसा कि ऋतुसहार से पता चलता है कूर्पासक एक तरह की चोली थी जो स्तनो पर कस के बैठती थीं।

लहँगा

आधे जघो तक पहुचते हुए घाघरे को चडातक कहते थे[११२]। आगे चल कर हम देखेगे कि चडातक का अर्थ घाघरे तक ही सीमित न रह कर स्त्रियो और पुरुषो की एक तरह की कमीज के लिए भी होने लगा था।

लबादा

जाडे मे पहनने के लबादे को नीशार[११३] कहते थे। और अगरखे को तरह एक पैरो तक लटकते हुए सिले वस्त्र को प्रपदीन[११४]।

गुप्तयुग मे स्त्रियों के वस्त्र पहनने के ढंग

गुप्तयुग के साहित्य में विशेषत कालिदास के नाटको और बाण भट्ट की आख्यायिकाओ से तत्कालीन वेशभूषा पर काफी प्रकाश पडता है। स्त्रिया साडी और चादर के सिवाय वैकक्ष्य भी पहिनती थी। सावित्री के पहिरावे का वर्णन करते हुए बाण भट्ट कहते है कि उनके अग पर एक शाल (गात्रिका) था, जिसकी गट्ठी स्तनो के बीच बधी थी,[११५] और उसका वैकक्ष्य बाए कधे से होता हुआ दाहिने हाथ के नीचे से जाता हुआ यज्ञोपवीत की तरह एक योगपट्ट (योग साधना के समय शरीर को बाधने वाली एक पट्टी) से बना था। स्त्रिया कभी कभी कचुक भी पहनती थी। मालती का पहिरावा बतलाते हुए बाण कहते है कि वह साप के केंचुल से भी हलका और पैर के अगूठो तक लहराता हुआ (प्रपदीन) धुले हुए सफेद नेत्र का बना

११०—वही, २, ६, ११८

१११—ऋतुसहार, ४, १६, कूर्पासक परिदधाति नखक्षतागी, वही, ५, ८, मनोज्ञकूर्पासक पीडितस्तना।

११२—अमरकोश, २, ६, ११९

११३—वही, २, ६, ११८

११४—वही, २, ६, ११६

११५—स्तनमध्य-गात्रिका-ग्रन्थि, योगपट्टेन विरचित वैकक्ष्य, हर्षचरित, पृ० ६,

हुआ कंचुक पहने थी ११६। उस कंचुक के नीचे रंग विरंगे चूनरी से सुसज्जित केसरिया चण्डातक था। यहां पुलकबन्ध से गुजरात और राजपूताने की बांधणी अथवा चूनरी से मतलब है। बाण के अनुसार थानेश्वर की स्त्रियां चोली पहनती थीं ११७।

स्त्रियां कभी कभी सुंदर नक्काशीदार कपडे पहनती थीं। बाण भट्ट ने एक जगह एक देवी को एक मलमल की चादर पहने दिखलाया है जिसमें सैकडों तरह के तरह तरह के पुष्प और चिडियों के नकशे बने थे और जो मंद वायु के धीमें झोंकों से तरंगित हो रही थी ११८।

ऋतुओं के अनुसार स्त्रियों के कपडे

स्त्रियां ऋतुओं के अनुकूल अपने कपडों में हेर फेर कर लेती थीं। ग्रीष्म में वे दुकूल की बनी एक हल्की साडी पहिनती थी ११९ और वसंत में केसरिया साडी और केसरिया और लाल स्तनपट्ट १२०।

राजा का पहरावा

राजे सादे पर रोबदार कपडे पहनते थे। हर्षचरित में १२१ हर्ष को नेत्र सूत्र से मिश्रित धोती और सितारे टंका हुआ दुपट्टा पहने दिखलाया गया है। राजा की सफेद धोती हंस मिथुन की नक्काशी से सुशोभित होती थी और उनके सिरे चमर से निकली हवा में फडफडाया करते थे १२२। युद्धक्षेत्र को जाते हुए हर्ष को धोती और हंस मिथुन से अलंकृत दुपट्टा पहने बताया गया है १२३। नायाधम्म कहाओ १२४ में राजकुमार गौतम को अंशुक की धोती और दुपट्टा जो रंगीन, महीन, और मुलायम थे और जिनके किनारों पर सुनहरा काम था, पहरे बतलाया गया है। अंतगडदसाओ १२५ में राजकुमार गौतम को हंस लक्षण दुकूल पहने बताया गया है।

११६—तिरोहिततनुलता, हृत भद्रानुरागपाटल, पुलकबन्ध-चित्र-चण्डातककञ्चुकम्, हर्षचरित, पृ० २६१, धौत-धवल-नेत्र-निर्मितेन निर्मोकलघुतरेण प्रपदीनेन कञ्चुकेन

११७—हर्षचरित, पृ० ८३

११८—बहुविध-कुसुम-शकुनिशत-शोभितातिपावन-नितम्बलग्नचारुदुकूलवाससा, हर्षचरित, पृ० ६६

११९—ऋतुसंहार, १, ४

१२०—ऋतुसंहार, ६, ४, कुसुंभरागारुणितैर्दुकूलैर्नितम्बबिम्बानि विलासिनीनाम् तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागगौरैरलंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि

१२१—मनागालोहितेन द्वितीयाम्बरेण विकल्पयोर्नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा, हर्षचरित, पृ० ५६

१२२—अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते चारुचामरवायुप्रनर्तितान्ते, कादम्बरी (काले द्वारा सम्पादित), पृ० १६

१२३—परिधाय राजहंसमिथुनलक्ष्मणी सदृशे दुकूले, हर्षचरित, पृ० १९८

१२४—नायाधम्म, १, १३

१२५—अंतगड, पृ० ४६

उच्च वर्ण के लोगों के कपड़े

उच्च वर्ण के लोग समाज में अपनी मान मर्यादा के अनुकूल कपडे पहनते थे । बाण ने इसी श्रेणी के एक नवयुवक के धोती पहनने के ढग का वर्णन किया है। "सरस्वती ने जिस युवक को देखा उसकी कमर हरे रग की उस धोती से जिसका छोर जरा नाभि के नीचे था, जिसका सिरा कमरबद के पीछे था और जिसके दोनो पक्ष इस तरह बधे थे कि जाघ का एक तिहाई भाग देख पडे, कसी थी[१२६] ।"

पदाति और अश्वारोहियों के पहरावे

बाण भट्ट को तत्कालीन सिपाहियो के पहिरावो का अच्छा ज्ञान था । उस युग में पैदल सिपाही कृष्णागरुचर्चित कचुक पहनते थे । उनके सिर रुमाल से ढके रहते थे और कटार दोहरे कमरबद के फेंटे में खुसी रहती थी[१२७] । घुडसवार कभी कभी वारबाण पहनते थे[१२८] । सिपाही कभी कभी बाघबरनुमा कपडे से बने कचुक और रग विरगी पट्टियो से बनी पगडिया पहनते थे[१२९] । युद्धक्षेत्र में जाने वाले योद्धाओ का निम्नलिखित वर्णन हर्ष-चरित में दिया है—"उनकी जघाए चित्रित और सुकुमार नेत्रपट से ढकी थी । उनके ताम्र वर्ण पैर कीचड से सने वस्त्र से चित्रित थे और उनके पाजामे भौंरे से काले थे । उनके कचुक लाजवर्दी रग के थे । उनके ऊपर उन्होने चीन-चोलक तथा तारमुक्ता वाले स्तवरक पहन रक्खे थे । उनके कूर्पासक रग विरगे और उनकी चादरें हरी थी । उनकी पगडियो में कर्णोत्पल की नाले खुसी थी । बहुधा उनके सिर केसरिया उत्तरीय से भी ढके थे[१३०] ।

ऊपर के वर्णन में बहुत से शब्द वस्त्र और वेश भूषा के सबध मे आए है जिनके विषय में कुछ कहना आवश्यक है ।

(१) नेत्र—इस रेशमी कपडे के वारे में हम कुछ पहले ही कह आए है यहा नेत्र के वर्णन से पता लगता है कि वह कोमल नक्काशीदार रेशमी कपडा (उच्चित्रसुकुमार) रेशमी वस्त्र होता था ।

१२६—पुरस्तादीषदवोनाभि-निहितैककोण-कमनीयेन, पृष्ठत कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयत सञ्चलनप्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरितानिविडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमान-तनुतरमध्यभागम् हर्षचरित, पृ० १७-१८।

१२७—पिनद्ध-कृष्णागुरु-पङ्ककलकच्छुरण-कृष्ण-शवल-कषाय-कञ्चुकेन उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रथिग्रथितासिधेनुना, वही, पृ० १६

१२८—धवलवारवाणधारिण, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिम्, वही, पृ० १६

१२९—जरद्व्याघ्रचर्म-शवल-वसन-कचुकवारिभि , अनेकपट्टचीरकोद्वद्धमौलिभि , कादवरी, पृ० १६१।

१३०—उच्चित्रनेत्र-सुकुमार-स्वस्थगण-स्थगितजघाकाडैश्च, कर्दमिक-पट-कल्मपितपिशगपिगै अलिनील मसृणसतुल-समुत्पादितकचुकै उपचितचीनचोलकैश्च, तारमुक्तास्तवकित-स्तवरक-वारवाणैश्च उष्णीपि पट्टावस्तव्व-कर्णोत्पलनालैश्च, कुकुमराग-कोमलोत्तरीयान्तरितोत्तमागैश्च, हर्षचरित, पृ० २०२।

(२) कंचुक—अमरकोश के अनुसार[131] कंचुक और वारबाण शरीर के बख्तर को कहते थे। लेकिन योद्धाओं के कंचुक को लगता है कुरतानुमा होते थे। एक जगह तो यह बुंदकीदार कपडे का और दूसरी जगह यह नीले कपडे का बना बतलाया गया है।

(३) वारबाण—वारबाण वह स्तवरक कपडे का बना होता था जिसके चमकीले मोती के गुच्छे टके होते थे। स्तवरक शब्द संस्कृत का न हो कर पहलवी भाषा का है। कुरान शरीफ में भी इसका जन्नत के प्रकरण में उल्लेख है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह काफी कीमती कपडा होता था। स्तवरक के उल्लेख से यह भी पता चलता है कि सासानी, ईरान और भारत से काफी व्यापारिक संबंध था[132]। स्तवरक के उल्लेख से यह भी साफ हो जाता है कि वारबाण लोहे का बना जिरह बख्तर नही था। हो सकता है कि वारबाण मुगल कालीन चिल्टे की तरह एक भरा हुआ कोट हो जिसे तलवार के वार से शरीर को बचाने के लिए पहना जाता था।

(४) चीन चोलक—कावेल चीन चोलक को जिरह बख्तर या चहार आइना समझते है। इसके वर्णन से एक बात तो पक्की हो जाती है कि यह कंचुक के ऊपर पहना जाता था और इसलिए शायद यह किसी तरह का चहार-आईना रहा हो। यह रुई भरा हुआ पूरी बांह का लंबा कोट भी हो सकता है जो मध्य एशिया मे सर्वत्र पहना जाता है। जो भी हो प्राय यह तो निश्चय है कि मध्य एशिया से आया हुआ कोई बख्तरनुमा वस्त्र था जिसे सातवी शताब्दी मे भारतीय योद्धा पहनते थे।

कूर्पासक—अमरकोश और ऋतु संहार मे तो यह शब्द स्त्रियों की चोली के लिये आया है पर यहा तो उसे योद्धा पहनते थे। लगता है कूर्पासक आधे बांह वाली मिर्जई अथवा कोई सजीनुमा वस्त्र रहा हो। अजंटा के भित्ति चित्रो मे सिपाही ऐसा वस्त्र पहने बहुधा दिखलाए गए है।

राज कर्मचारी, दूत, लेखक इत्यादि की पोशाकें

बाण ने बहुत सी जगहों मे राज्य कर्मचारियो, दूतो, भिक्षुकों, लेखकों इत्यादि के पहरावे का वर्णन किया है। बाण की वर्णनात्मक शैली इतनी प्रौढ थी कि वे क्षण में ही एक व्यक्ति या घटना का सजीव चित्र खडा कर देते थे। उदाहरणार्थ, हर्ष के भाई कृष्ण द्वारा बाण के पास भेजे हुए उनकी वेश भूषा का चित्र एक पंक्ति में ही मिल जाता है। "उसका नडानक कमरबंद से बंधा था और उसके गुल्ले बाल पीछे की ओर एक कपडे से बंधे

131—अ० को०, २, ८ ६६

132—रिचार्ड बेकरी, ए चोरायुसर्गो जॉर फारेन कर्चर् इन कुशान, मायरनाद सोसाइटी नोटिस १६३८, कुरान में इस्तबरक, ८, ३०, ४४, ५३, ७६, २१ का उल्लेख स्वर्गीय लिबास के रूप में हुआ है। अधिकतर टीकाकारो ने इसे फारसी से उधार लिया शब्द माना है। यह शब्द फारसी स्तोर से निकला है जिसका अर्थ मोटा और सुन्दर कपडा होता है।

थे[१३३] "। दूत का यह छोटा सा वर्णन हमारे सामने धावा मार कर आये धूल धूसरित दूत की वेश भूषा का चित्र एक पक्ति मे मिल जाता है। ऐसा लगता है कि प्रतिहारी और महा प्रतिहारी सफेद कचुक पहनते थे[१३४] और कमरबद बाधते थे[१३५]।

सन्यासी भैरवाचार्य की वेशभूषा की तुलना अगर हम आज कल के सन्यासी की वेशभूषा से करें तो हमे बाण की दृष्टि की सत्यता का पता चल जायगा। एक जगह उन्हें वैकक्ष्य की तरह गेरुआ उत्तरीय तथा छाती तक पहुंचता गेरुआ कौपीन पहने दिखलाया गया है[१३६]। एक दूसरी जगह जब उनकी श्रीहर्ष से मुलाकात हुई तब वे काला कंबल[१३७] एक क्षौम का कोपीन पहने थे तथा रेशमी पर्यङ्क बध से उनका शरीर बधा था। वे पादुका भी पहने थे[१३८]।

पगड़ियाँ

अजटा के भित्ति चित्रो में बहुत कम लोग पगडी पहने दिखलाये गए है लेकिन गुप्त सिक्को पर अकित मूर्तियो के सिरो पर तो अक्सर पगडिया देख पडती है। गुप्तकालीन साहित्य मे बहुत जगह पगड़ी के उल्लेख है। हर्ष चरित में[१३९] एक जगह पगडी बाधने के लिए मलमल की पट्टियो का उल्लेख है। एक दूसरी जगह पगडी के बीच के बडे लट्टुओ का जिक्र है[१४०]। अजटा के भित्ति चित्रो में पगडियो का कम आना किसी स्थानिक विशेषता का द्योतक है, अथवा शायद पगडिया चित्रकारो ने इसलिए नही बनायी क्योकि उन्हें स्त्री पुरुषो के सुन्दर केश रचना से दिखलाता था, पगडिया रख कर वे ऐसा नही कर सकते थे।

४

जैन छेद सूत्रो में जिनका अभी बहुत कम अध्ययन हुआ है भारतीय वेश भूषा और कपडो के इतिहास के लिए बहुत सामग्री सुरक्षित है। इनसे हमें जैन साधुओ और गुप्त युग के नागरिको की वेश भूषा का पूरा पता चलता है। छेद सूत्रो का विषय साधुओ का आचार विचार है। कुल मिला कर छ छेद सूत्र है जिनमें बृहत् कल्पसूत्र भाष्य का वडा स्थान है। सूत्रो में तो वस्त्र सबधी सामग्री कम है पर बाद के लिखे भाष्यो और टीकाओ मे काफी सामग्री है।

१३३—कार्दमिक-चेलचोरिकानियतोच्चण्डचण्डातक, पृष्ठ-प्रेङ्खत-पटच्चरघटितगलित-ग्रन्थिम्, हर्षचरित, पृ० ४१।

१३४—नीध्रकञ्चुकाच्छिन्नवपुषा, हर्षचरित, पृ० ४६, कञ्चुकावच्छन्नवपुपा, कादवरी, पृ० ३५।

१३५—हर्षचरित, पृ० ४६।

१३६—धातुरसारुणेन कर्पटेन कृतोत्तरासग, हर्षचरित पृ० ८६।

१३७—कृष्णकवल-प्रावरण, हर्षचरित, पृ० २६३

१३८—पाण्डर-पवित्रक्षौमावृत-कौपीन, सावष्टंभ-पर्यकवध-मण्डिलतेनामृतफेन-श्वेतारुचायोग पट्टकेन, हर्षचरित पृ० २६५।

१३९—अशुकोष्णीप-पट्टिकामिव, हर्षचरित, पृ० १४।

१४०—उष्णीपपट्टकल्ललाट-मध्यघटित-विकट-स्वस्तिक-ग्रथि, हर्षचरित, पृ० ९०-८१।

बृहत् कल्पसूत्र भाष्य के, जो भारत के सामाजिक इतिहास के लिए एक अभूत पूर्व ग्रन्थ है, एक खंड में साधुओं के वस्त्र पर तथा अविहित वस्त्रों के पहनने से पाप और उनके दूर करने प्रायश्चित्त संबंधी नियम हैं। आनुषंगिक रूप से इस खंड में नागरिकों की वेश भूषा का भी वर्णन आ गया है। इस ग्रंथ का सूत्र भाग निश्चय ही बहुत प्राचीन है और इसके रचयिता भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन माने जाते हैं। इसका भाष्य जिनदास ने शायद छठी सदी में लिखा। इसमें ईसा की आरंभिक शताब्दियों के सामाजिक इतिहास का मसाला है पर अधिकतर मसाला गुप्त युग का है।

कपड़े बदलने के समय

बृहत् कल्पसूत्र[141] में चार समय कपड़े बदलने की बात है यथा (१) नित्य निवसन, (२) नहाने के बाद का कपड़ा (निमज्जनिक), (३) उत्सवों पर पहने जाने वाले कपड़े (क्षणोत्सविक) तथा (४) राजाओं, सभासदों इत्यादि से मिलने के समय के कपड़े (राजद्वारिक)। उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि ऊपरी वर्ग के भारतीय अपने कपड़े समय के अनुसार बदलते थे। आधुनिक समय में तरह तरह के कपड़े पहनने की प्रथा इस देश में छूटती जाती है फिर भी लोग कुछ कपड़े उत्सवों के लिए रख छोड़ते हैं।

कपड़े वासने की प्रथा

गुप्त युग में कपड़ों की धुलाई और तैयारी का बहुत ख्याल रखा जाता था। छेद सूत्रों में कपड़े धोने, कलफ करने और वासने की प्रथाओं का उल्लेख है। पहले कपड़ा धो लिया जाता था (धौत) फिर उस पर कुंदी कर के (घृष्ट) मांडी (मृष्ट) दी जाती थी और अंत में धूप से वह वास (सप्रधूमित) दिया जाता था[142]।

कपड़े पर देवों का आवास

कपड़ों के भिन्न भिन्न भागों में देवताओं या राक्षसों का निवास माना जाता था[143]। कपड़ों के चारों कोनों पर देवता, किनारों और मध्य भाग में पितृ, कान के पास असुर और ठीक मध्य बिन्दु में राक्षस निवास करते थे। कपड़ों के साथ देवताओं और असुरों का साथ दिखाने से शायद तात्पर्य यह था कि लोग धार्मिक अवसरों पर ठीक तरह के कपड़े व्यवहार में लावें जिससे देवता प्रसन्न रहें।

जैन साधुओं के विहित वस्त्र

बहुत प्राचीन प्रथा[144] के अनुसार इस युग में भी जैन साधुओं को जंगिक, भंगिक, सानक, और पोतक कपड़े पहनने की अनुमति थी। जंगिक ऊंट के बाल से बना कपड़ा था।

१४१—बृहत् कल्पसूत्र भाष्य, ४, ४४४

१४२—वही, २, २००१

१४३—वही, ३, २४४३

ऊनी कपडो का जिक्र करते हुए भाष्य भेंड के ऊन से बने कपडे को और्णिक, ऊट के बाल से बने कपडे को औष्ट्रिक और हिरन के रोए से बने कपडे को मृग रोम कहता है । कुतप को जीर्ण कहा गया है । किट्ट ऊन अथवा बाल से बनता था । किट्ट ऊन और बाल के उस बचे अश को कहते थे जो अच्छे कपडे बनाने के बाद बच जाता था[१४५] । बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[१४६] की एक पाद टिप्पणी मे संपादक ने उपरोक्त ऊनी कपडो के सम्बन्ध मे दो चूर्णियो की राय दी है । एक चूर्णि के अनुसार मृग लोम की व्याख्या सलोममूषकलोमवा की गयी है सलोम का अर्थ यहा समूर हो सकता है । मूषक लोम का अर्थ साधारणत मूसे के बाल है । पर यहा मूषक से ठडे प्रदेशो मे रहने वाले ऊन बिलवासी पशुओ से जिनके समूर कपडे बनाने के काम मे आते थे प्रयोजन है । विशेष चूर्णि में मृगलोम की व्याख्या पव्वए यान रोम याने बकरे का बटा हुआ रोआ है । कुतप भी बकरे के रोए के किसी भाग से बनता था । इसका शायद यह तात्पर्य है कि कुतप तो बकरे के लबे बाल से बनता था और पश्मीना पेट के नीचे के बालो से । किट्टिम चूर्णि के अनुसार बकरे के रोए से बनता था। भागिक यानी भगेला, शाण यानी सन्नी और तिरीट की छाल के रेशे के कपडे भी जैन साधु पहन सकते थे ।

जैन साधु ठीक नाप वाले (प्रमाणवत्), सम तल (सम्र), मजबूत (स्थिर) और सुदर (रुचिकारक)[१४७] वस्त्र पहरते थे ।

जैन साधुओ को शरीर स्पर्शी ऊनी कपडे की इसलिए मनाही थी कि उनमे जू पैदा हो जाती थी और गर्द भी इकट्ठा हो जाती थी । लेकिन वे ऐसी ऊनी चादरे जिनके गदे होने का भय नही था और जो शरीर को ठडक से बचाती थी पहन सकते थे[१४८] । सूती धोती न मिलने पर जैन साधु तिरीट पट्ट और रेशम (कौशिकार) की बनी धोतिया पहन सकते थे। ऊनी चादर न मिलने पर छालटी की चादर ओढने का आदेश है । उसके भी न मिलने पर रेशमी चादर और उसके भी न मिलने पर तिरीट पट्ट की चादर ओढी जा सकती थी[१४९] ।

उपरोक्त पाच तरह के विहित वस्त्रो मे से जैन साधु एक साथ केवल दो तरह के वस्त्र ग्रहण कर सकते थे जैसे सूती और ऊनी एक साथ, अथवा तिरीट पट्ट और छालटी एक साथ[१५०] । ऐसा न करने वाला दोष का भागी होता था ।

बृहत् कल्पसूत्र भाष्य मे कपडे की कटाई सबधी अनेक शब्द आये है । बिना काट जोड वाले अनसिले कपडे प्राकृतिक (यथाकृत) कहलाते थे। जिस वस्त्र के केवल किनारे

१४५—वही, ४, ३६६१
१४६—वही, ४, पृ० १०१८, पा० टि० २
१४७—वही, ३, २८३५
१४८—वही, ४, ३६६७
१५०—वही, ४, ३६७०

(दशिका) कटे होते थे अथवा जो वस्त्र दो कपडे जोड कर बनाया जाता था अथवा जो वस्त्र सिला होता था (तुन्न) उसे अल्पपरिकर्म यानी कम काम किया हुआ वस्त्र कहते थे। वस्त्र मे अनेक काट और जोड अथवा उसके शरीर के नाप से बनने पर और उसमें काफी सिलाई होने पर उसे बहु परिकर्म अर्थात् बहुत काम वाला कपडा कहते थे[१५१]।

उपरोक्त सब तरह के कपडे नागरिक पहन सकते थे लेकिन जैन साधुओ को केवल यथाकृत वस्त्र ही विहित था, उसके न मिलने पर कुछ प्रायश्चित्त करने के बाद वे अल्प परिकर्म और बहु परिकर्म वस्त्र भी पहन सकते थे। लेकिन बीमारी अथवा यात्रा इस साधारण नियम के अपवाद थे[१५२]।

नागरिको के वे वस्त्र जिन्हे पहनने का जैन साधुओ को अधिकार न था:—

नागरिको द्वारा व्यवहार मे लाये जाने वाले पूरे कृत्स्न कपडे जैन साधु व्यवहार मे नही ला सकते थे[१५३]। ये कृत्स्नवस्त्र, नाम, स्थापना, श्रेणी, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार छ श्रेणियो मे बटे थे[१५४]।

द्रव्य वस्त्र दो विभाग मे बटे थे यथा सकल और प्रमाण। सकल वस्त्र गझिन बिना हुआ (घन तन्तुभि. सान्द्र), चिकना (मसृण), बिना छोर का (निरुपहत, अञ्जनखञ्जनादि दोषरहित) और किनारदार होता था। गुण के अनुसार पुन सकल वस्त्र जघन्य उत्तम और उत्कृष्ट श्रेणियो मे बट जाता था। भाष्य की टीका के अनुसार जघन्य वस्त्र मुह पोछने का रूमाल इत्यादि (मुखपोतिकादि), उत्तम वस्त्र सुगंध लिप्त (पटलकादि) और उत्कृष्ट वस्त्र माडी किया हुआ (कलपमादि, हिंदी कलफ) होता था। प्रमाण कृत्स्न वस्त्र की लबाई चौडाई (विस्तारायाम) साधुओ के वस्त्रो से अधिक होती थी[१५५]।

क्षेत्र कृत्स्न उन कपडो को कहते थे जो या तो देश के एक खास भाग में मिलते ही नही थे और अगर मिलते भी थे तो उनका दाम बहुत अधिक होता था। टीकाकार उदाहरण के लिए कहता है कि पूर्वी भारत के कपड़े लाट मे बहुत महगे पडते थे[१५६]।

काल कृत्स्न वस्त्र साल के कुछ महीनो मे बहुत महगे पडते थे और बहुत मुश्किल से मिलते थे। टीकाकार कहता है, जैसे गरमी मे खस वस्त्र, जाडे मे चादरे (शिशिर प्रावरकादि) और वर्षा मे केसरिया वस्त्र (वर्षासु कुकुमरजितादि)[१५७]।

१५१—वही, ४, ३६७१
१५२—वही, ४, ३६७२
१५३—वही, ४ पृ० १०६७
१५४—वही, ४, ३८८०
१५५—वही, ४, ३८८१–८३
१५६—वही, ४, ३८८४
१५७—वही ४, ३८८५

भाव कृत्स्न कपडो के दो भेद होते थे 'वर्णयुत' रग के अनुसार और 'मूल्ययुत' मूल्य के अनुसार[१५८]। जघन्य, उत्तम और निकृष्ट श्रेणी के कपडो के अलग अलग मूल्य होते थे। जघन्य श्रेणी के कपडे का दाम अट्ठारह कार्षापण होता था और उत्तम श्रेणी के कपड़े का मूल्य एक लाख। उत्तम श्रेणी के कपडो के दाम अट्ठारह और एक लाख कार्षापण के बीच में होते थे[१५९]। कीमती कपडे पहनने वाले साधुओ के प्रायश्चित्त के सबध मे कपडो के दाम, १८, २०, ४९, ५००, ९९९, १००००, ५०००० और १००००० कार्षापण दिया है[१६०]। उपरोक्त दामो से यह पता नही चलता कि यह दाम एक गज के लिए अथवा पूरे थान के लिए होता था। शायद यह पूरे थान का दाम था। यह भी पता नही चलता कि यहा ताबे के कार्षापण से मतलब है अथवा चादी के। जो भी हो यह तो निश्चित है कि इस देश मे गुप्त काल में काफी कीमत के कपडे बनते थे।

विदेशों मे उनकी प्रथा के अनुसार वस्त्र पहिनने की साधुओं को आज्ञा

जैन साधुओ द्वारा कीमती वस्त्र पहिनने पर प्रायश्चित्त का विधान था। कपडे पहनने मे यह रोक टोक समझदारी की द्योतक थी, क्योकि कीमती वस्त्र पहिन कर विहार यात्रा मे जाने पर साधु को चोरो का डर था[१६१]। यही नही, कीमती कपडे पहने हुए साधुओ को अक्सर चुगी वाले भी गिरफ्तार कर लेते थे और इस सदेह पर कि कपडे चोरी के होगे, उन्हें दड देते थे[१६२]। इस सबध मे एक जैन आचार्य की कथा दी है। एक समय किसी ने एक आचार्य को एक कीमती शाल (कवल रत्न) भेंट मे दिया। शाल ओढे आचार्य को किसी चोर ने रास्ते में देख लिया। आवास मे पहुच कर आचार्य ने शाल के दो टुकडे कर डाले। रात में चोर आया और छुरी दिखला कर आचार्य से कम्वल मागा। उन्होने शाल के टुकडे कर देने की वात कही पर चोर ने न माना, इस पर आचार्य ने उसे शाल के टुकडे दिखला दिए। चोर क्रोधित हुआ पर टुकडो को जोड कर वह जैसे तैसे शाल को ले कर चम्पत हो गया[१६३]।

स्थूण देश मे जैन साधुओ को कपडे के वारे मे कुछ स्वतत्रता थी। इस देश मे न तो चोरो का भय था न अच्छे कपडे पहनने से किसी को कोई आश्चर्य ही होता था। ऐसी अवस्था मे जैन साधुओ को कीमती कपडो के किनारे हटा कर पहिनने की आज्ञा

१५८—वही, ३८८७
१५९—वही, ४, ३८९०
१६०—वही, ४, ३८९३
१६१—वही' ४, ३८९९, ३९००
१६२—वही, ४, ३९०१
१६३—वही, ४, ३९०३-४

थी[१६४]। पर कुछ अवस्थाओ मे इन वस्त्रो के किनारे (दशिका) रखे जा सकते थे। कुछ कमजोर किनारो वाले वस्त्रो मे छोरो पर इसलिए किनारे जोड दिये जाते थे कि वे अधिक टिकाऊ बन सके। ऐसे वस्त्रो मे साधु किनारे रख सकते थे। कुछ देशो मे वस्त्रो के किनारे पतले होते थे इनको भी ज्यो की त्यो रखने की आज्ञा थी[१६५]। इस सबध मे टीकाकार सिंधु का दृष्टात देता है।

उकवत से पीडित जैन साधुओ को विहित नाप वाले वस्त्रो से बढ घट कर नाप वाले वस्त्रो को भी पहनने की आज्ञा थी[१६६]। वैद्य को दक्षिणा देने के लिए भी साधु किनारे वाले वस्त्र रख सकते थे।

नेपाल, ताम्रलिप्ति और सिंधु-सौवीर (सिंध सागर दोआब और सिंध) बहुत कीमती कपडे बनाने के प्रसिद्ध केन्द्र थे। इन देशो मे साधुओ सहित सब लोग कृत्स्न वस्त्र पहनते थे[१६७]। नेपाल इत्यादि देशों मे न तो चोरो का डर था और न कीमती कपडे पहनने में कोई विशेष मान था। सिंधु-सौवीर मे गदे और भद्दे कपड़े पहनना बुरा माना जाता था। इस अवस्था मे जैन साधु भी कीमती कपडे पहन सकते थे[१६८]

कुछ देशो मे (टीकाकार महाराष्ट्र का नाम देता है) नील कबल की काफी कीमत होती थी। लेकिन जैन साधुओ को इसे सरदी मे इसलिए ओढना पडता था क्योकि और कोई दूसरा वस्त्र इतनी गरमी नही देता था[१६९]।

ऐसा लगता है कि जैन सघ खास कर अपने मध्य कालीन इतिहास मे साधु व्रत धारण करने वाले राजकुमारो इत्यादि के आराम का ध्यान रखता था। उन्हे तब तक कोमल वस्त्र पहनने की आज्ञा थी जब तक वे साधुओं के खुरदरे वस्त्र पहनने के आदी न हो जाय[१७०]

साधुओ की वेश-भूषा

धोती और चादर के अलावा साधुओ को सूती कमरबंद (पर्यस्तक) जिसमें न तो रंग होता था न कोई नक्काशी (अचित्र) पहनने की आज्ञा थी यह बिना जोड का कमरबंद केवल चार अगुल चौडा होना था[१७१]। इस उल्लेख से यह भी पता चलता है कि इस युग के नागरिक रंगीन और नक्काशीदार कमरबंद पहनते थे।

१६४—वही, ४, ३९०५
१६५—वही, ४, ३९०६
१६६—वही, ४, ३९०७
१६७—वही ४, ३९१२
१६८—वही, ४, ३९१३
१६९—वही, ४, ३९१४
१७०—वही, ४ ३९१८
१७१—वही, ४, ५९९८

वीमार साध्वी की परिचया करते समय जब उसकी सफाई के लिए करवट बदलवाने की जरूरत पड़ती थी, तब साधुओ को गोपालकचुक नाम का एक वस्त्र विशेष पहिनने की आज्ञा थी[१७२]। इस वस्त्र के आकार का पता नही लगता पर यह घोघीनुमा अथवा पूरी वाहो वाला कचुक था जिसे छत से बचने के लिए पहरा जाता था। हो सकता है यह 'एप्रन' जैसा कोई वस्त्र रहा हो।

चादरे

भिन्न भिन्न तरह के पाच पाच दूष्यो के दो जोड नागरिक व्यवहार में लाते थे। पहले जोड में कोयव, प्रावारक, दाढ़िकालि, पूरिका और विरलिका आये है। जिनके निम्न-लिखित अर्थ दिये गये है[१७३]।

१—कोयव—इसे रूई भरी दुलाई बतलाया गया है गो कि इसका प्राचीन अर्थ रोएदार कवल था।

२—प्रावारक—इसे नेपाल का थुल्मे जैसा बडा कबल (नेपालदि, उल्बण रोमा बृहत् कबला) कहा गया है। लगता है टीका मे तालिका के नवर बदल जाने से कोयव और प्रावार के अर्थो मे गडवडी पड गई है क्योकि साधारणत कोयव का अर्थ रोएदार कम्वल और प्रावार का अर्थ रूई भरी दुलाई होती है।

३—दाढिकालि—यह बहुत सफेद धुली हुई चादर होती थी जिसके किनारो पर दात जैसे अलकार वने होते थे।

४—पूरिका—इसकी विनावट भिल्लड होती थी। इसका दूसर अर्थ पाट की वनी चादर भी होता था।

५—विरलिका—दोसूती

दूसरे जोड में उपधान, तूलि, आलिगिका, गडोपधान और मसूरिका नाम की तकियो का वर्णन है[१७४]।

(१) उपधान—परो से भरी तकिया।

(२) तूलि—साफ रूई (सस्कृत रूत) अथवा मदार की रुई से भरी तकिया।

(३) आलिगणिका—गाव तकिया। यह तकिया शरीर की लवाई जितनी होती थी, और सोते समय पैरो के वीच रख ली जाती थी।

(४) गडोपधान—सिर के नीचे एक तरफ रक्खी जाने वाली तकिया। लगता है यह तकिया गोल होती थी।

१७२—वही, ४, ३७६५

१७३—वही, ४, ३८२३

१७४—वही, ४, ३८२८

(५) मसूरक—यह गोल गद्दी (चक्कल गद्दिकादि) कपड़े अथवा चमड़े की बनी होती थी और रुई से बनी होती थी ।

जैन साध्वियों की वेश भूषा

जैन साध्वियो की वेश-भूषा लंबी चौडी होतीथी । उनके पहरावे मे इस बात का प्रयत्न रक्खा जाता था कि उससे उनका शरीर पूरी तरह से ढक जाय । बृहत् कल्पसूत्र भाष्य में उनके पहरावे के ग्यारह वस्त्र गिनाये गए हैं—यथा अवग्रह, पट्ट, अर्धोरुक, चलनिका। अभ्यंतरनिवसनी, बहिर्निवसनी, कंचुक, औपकक्षिकी, वैकक्षिकी, संघाटी और स्कध-कारिणी[१७५] ।

(१) अवग्रह—शरीर के गुप्त भाग को ढाकने के लिए वस्त्र । यह बीच में चौडा और बगल मे संकरा एक गज्भिन बिना हुआ मुलायम कपडा होता था[१७६] ।

(२) पट्ट—यह वस्त्र बंदो से कमरके बगल मे बधारहता था । इसकी चौड़ाई चार अगुल होती थी और लंबाई साध्वी के कमर की नाप के अनुसार। यह वस्त्र अवग्रह के छोरो को ढकता था और इसका रूप जांघिया (मल्लकक्षाबद्ध) सा होता था । यह मध्य-कालीन नीवीबंध का ही एक प्राचीन रूप था[१७७] ।

(३) अर्धोरुक—अवग्रह और पट्ट के ऊपर का यह वस्त्र पूरी कमर ढाकता था। इसका रुप तहमत (मल्लचलनाकृति) की तरह होता था, केवल फरक इतना था कि इसका चौड़ा सिरा दोनो जाघो के बीच कस कर बाघ दिया जाता था (ऊरुद्वये च कसावबद्ध)[१७८] ।

(४) चलनिका—यह अर्धोरुक जैसा ही वस्त्र था केवल फरक इतना ही था कि यह आधी जाघो तक पहुचता था । यह बेसिला वस्त्र होता था और उसके आकार की तुलना बांस पर नाचने वाले नट (लाङ्खिक) की कछाड़ेदार धोती से की जा सकती थी[१७९] ।

(५) अतर्निवसनी—कमर से ले कर यह वस्त्र आधी जाघो तक पहुंचता था । यह कपड़े पहनने के समय नगा दीखने से बचने के लिए पहना जाता था[१८०] ।

(६) बहिर्निवसनी—कमर से ले कर यह वस्त्र एडी तक पहुचता था । यह कमर से डोरी से बधा रहता था[१८१] । यहा शायद नाडी से अभिप्राय है।

१७५—वही, ४, ४०८२-८३

१७६—वही, ४, ४०८४

१७७—वही, ४, ४०८५

१७८—वही

१७९—वही

१८०—वही

१८१—वही

(७) कंचुक—साध्वियो का कचुक साढे तीन हाथ लबा और एक हाथ चौडा बेसिला वस्त्र जो कमर के दोनो ओर बाध लिया जाता था। इससे कठोर स्तन भी जिनका उभार कसे वस्त्रो के पहनने से हो उठता था ढक जाते थे[१८२]। यहा गृहस्थ स्त्रियो की तरह साध्वियो के लिए कचुक न पहन सकने के कारण बेसिले कचुक का विधान है ।

(८) औपकक्षिकी—यह कचुक के ही समान डेढ हाथ मुरब्बे का एक चौखूटा वस्त्र था। यह छाती का एक भाग ढकते हुए दाहिने कधे पर बाध दिया जाता था[१८३]।

(९) वैकक्षिकी—यह वस्त्र औपकक्षकी के प्रतिकूल बायी ओर पहना जाता था। यह पट्ट, कचुक और औपकक्षी को ढक लेता था[१८४]।

(१०) सघाटी—सघाटिया चार होती थी । एक दो हाथ चौड़ी, दो तीन हाथ और एक चार हाथ । लबाई में ये चारो सघाटिया साढे तीन हाथ से चार हाथ तक होती थी। दो हाथ चौडी एक सघाटी साध्विया आवसथ मे पहनती थी तीन हाथ चौडी दो सघाटियो मे से एक तो साध्विया भिक्षा मागने के अवसर पर पहनती थी और दूसरी शौच जाने के समय । चार हाथ चौडी सघाटी धर्मोपदेश सुनते समय इसलिए पहनी जाती थी कि साध्वियो के सीधे खडे होने पर उनका पूरा अग ढक जाय[१८५]।

(११) स्कधकरणी—यह एक चार हाथ मुरब्बे का चौखूटा कपडा होता था जो चार तह करके कधे पर तेज हवा से वचने के लिए रक्खा जाता था । इस वस्त्र का उपयोग औपकक्षिकी और वैकक्षिकी से वाध कर सुदर स्त्रियो साध्वियो को बौनी दिखलाने के लिए किया जाता था[१८६]। इसका मतलव यह था कि प्रसाधन के लिए साध्विया वस्त्र न पहने ।

साडी—साडी पहनते समय साध्विया उसका एक हिस्सा चुन कर आगे या पीछे जैसा गृहस्य स्त्रिया करती थी, नही खोस सकती थी। साडी की चूनन को उक्ख कहते थे। निशीथ मे उसकी व्याख्या है ,अवो वस्त्र के वीच का चुना हिस्सा नाभि के पास गोल उभार मे दिखाना[१८७]।

कमरवद—साधारण स्त्रियो की तरह साध्विया कमरवद (पर्यस्तक) नही पहन सकती थी । वीमारी मे वे ऐसा कर सकती थी पर शर्त यह थी कि कमरवद जालदार (अजालिक) न हो[१८८]। इसमे यह पता चलता है कि इस युग की स्त्रिया जालीदार कमरवद पसद करती थी ।

१८२—वही, ४, ४०८८
१८३—वही,
१८४—वही, ४, ४०८९
१८५—वही, ४, ४०८९-९०
१८६—वही, ४, ४०९१
१८७—वही, २, पृ० १०९७
१८८—वही, ५, ५९९६

साध्वियो के वस्त्रो की तालिका से यह स्पष्ट है कि उसमे से सब नही तो अधिकतर वस्त्र गुप्त युग की स्त्रिया पहनती थी । अजटा और वाग के भित्ति चित्रो मे अर्धोरुक, चलनिका, वहिर्निवसनी, सघाटी और स्कधकरणी जैसे वस्त्र आये है और इन सब का व्यवहार साधारण स्त्रिया करती दिखायी गयी है। ऐसा लगता है कि गुप्त युग मे जैन साध्वियो का पहरावा साधारण स्त्रियो के पहरावे को ले कर वना । केवल उसमे कुछ और वस्त्र शरीर के नगापन को, जो उस युग के पहिरावे मे लज्जाजनक न मान कर प्रसाधन और सौंदर्य प्रकाशन का एक अग माना था, दूर करने के लिए जोड दिये गये ।

नर्तक और नर्तकियो के पहरावे

यह आश्चर्य की वात है कि आराम पसद गुप्त कालीन समाज जिसमे सुसस्कृत यौना-कर्षण को कला मानते थे नर्तक और नर्तकिया अपने शरीर को पूरी तरह ढक लेते थे । अजटा के भित्ति चित्रो मे आये नर्तकों ने लगता कंचुक और पाजामे पहनते है। वृहत् कल्पसूत्र भाष्य[१८९] मे कहा गया है कि अच्छी तरह से कपडे पहने हुए नर्तकी को नृत्य में अपने पैर ऊपर उठाते हुए लज्जा का वोध नही होता । रग मच पर सैकडो तरह के खेल दिखलाती हुई नटी (लखिका) को इसलिए लज्जा का वोध नही होता था कि वह पूरे कपडे पहने होती थी। रायपसेणिय[१९०] मे नर्तक और नर्तकियो की वेश भूषा का पूरा वर्णन वच गया है। उस वेश भूषा का वर्णन हमे उस समय मिलता है जव सूर्याभदेव की आज्ञानुसार नर्तक और नर्त-कियो ने भगवान महावीर के सामने वत्तीस तरह के नाच रग मच पर दिखलाये। उन युवा और सुन्दर नर्तको ने दोनो ओर लटकते हुए उत्तरीय , कसे हुए नकाशीदार कपडो से वने कमरवद (उप्पीलिय - चित्र - पट्ट - परियर), दुपट्टे[१९१] और रग विरगे वस्त्र (चित्त-चित्त-चिल्लगनियमणाम्) पहन रक्खे थे । वे एकावलियो और दूसरे आभूषणो से भी सुसज्जित थे उनके मस्तको पर तिलक थे और जूडो मे सेहरा (निलयजामेल्ण), उनके गले में तौके थी और उन्होने कचुक पहन रक्खे थे (पिनद्धगेवज्जकचुकोण)[१९२] ।

जैन छेद सूत्रो मे आए अनेक तरह के जूते

जैन छेद सूत्रो से पता चलता है कि उस युग मे चमडे के तरह तरह के जूते बनते

१८९—वही, ४, ४१२७

१९०—रायपसेणिय, प० बेचरदास द्वारा संपादित, पृ० १२३-२४

१९१—इस वर्णन में दुपट्टे का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है पर जिस वस्त्र का उल्लेख है उसका पाठ यह है—[illegible]—अर्थात् वस्त्र [illegible] भी [illegible] पहने थे और [illegible] । टीकाकार ने [illegible] की व्याख्या [illegible] है । इस वर्णन में [illegible] दुपट्टे [illegible] । [illegible] दिखलाने के लिए दुपट्टा पहना जाता था ।

१९२—वही, पृ० १९५

थे । जूते बनाने के लिए बृहत् कल्पसूत्र में गाय, भैसे, बकरे, भेड और दूसरे वन्यपशुओ के चमडे गिनाये गये है[१९३] । जैन साधु और साध्विया किसी तरह के नापदार अथवा रगीन चमड़े की वस्तुओ का व्यवहार नही कर सकते थे[१९४] । इस उल्लेख से यह आशय निकाला जा सकता है कि उस युग में तरह तरह के नाप और शकल के तथा रगीन चमडो से जूते बनते थे जिनकी जन साधारण में काफी माग थी । प्रमाण और वर्ण के अनुसार इन्हें चार भागो में, यथा सकल कृत्स्न, प्रमाण कृत्स्न, वर्ण कृत्स्न और बध कृत्स्न मे बाट दिया गया है[१९५] ।

सकल कृत्स्न—ये एक तल्ले जूते (एकपुटं या एकतल) होते थे[१९६] । इस एक तल्ले जूते को जिसे तलिका कहते थे जैन साधु रात में काटो से बचने के लिए पहन सकते थे । दिन में ये जूते तब पहने जा सकते थे जब सार्थवाह जिसके साथ जैन साधु चल रहे हो पगदडी का रास्ता पकड़े क्योकि ऐसे समय जूते पहनने से चलने में आसानी होती थी[१९७] ।

प्रमाण कृत्स्न—इन जूतो में दो तीन अथवा इनसे भी अधिकतर तल्ले होते थे[१९८] ।

खल्लका—टीका के अनुसार इसके अर्ध खल्लक और समस्त खल्लक दो भेद होते थे । अर्ध खल्लक जूते आधे पैर ढकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर[१९९] ।

खपुसा—ये जूते घुटनो तक पहुंचते थे[२००] । इनके संबंध मे हम आगे चल कर कुछ और कहेंगे ।

वागुर—इन जूतो से पैर और अगुलिया ढंक जाती थी ।

कोशा—इससे चलने में अगूठो के नखो की पत्थरो की ठोकरो से रक्षा होती थी

जघा और अर्धजंघा—जघा पूरे जघे को और अर्ध जघा आधे जाघ को ढक लेता था[२०१] ।

पुटक—यह जूते तसमो से वने होते थे और इनके पहनने से जाडे में पैरो की फटने से रक्षा होती थी[२०२] ।

कोशक और खपुसा नाम के जूते, सरदी, वरफ, साप और काटो से वचने के लिए

१९३—बृहत् कल्पसूत्र, ४, ३८२४
१९४—वही, पृ० १०५९
१९५—वही, ४, ३८४६
१९६—वही, ४, ३८४७
१९७—वही, २, २८८४
१९८—वही, ४, ३८४७
१९९-२००—वही
२०१—वही, ४, ३८८७
२०२—वही, ३, २८८४

पहने जाते थे । यह साफ है कि वे जूते ठंडे देशो मे पहने जाते थे । जैन साधुओ को भी इन देशो मे विना प्रायश्चित्त के ऐसे जूते पहनने की आज्ञा थी[२०३] ।

सकल कृत्स्न जूतो की निम्नलिखित व्याख्या दी गयी है । ये जूते (क्रमणिका) परो के नाप के अनुसार बनाये जाते थे और मध्य या और किसी भाग में ये कटे जुडे नही होते थे[२०४] । तात्पर्य यह है कि ये जूते एक पूरे चमडे से बनते थे ।

वर्ण कृत्स्न जूते सफेद अथवा रगीन चमड़ो से बनते थे[२०५] ।

बधन कृत्स्न—इन जूतों में तीन से अधिक बंद होते थे[२०६] । एक दूसरी जगह[२०७] इस जूते में सन अथवा सूत की दो या उससे अधिक पक्तियो मे सिलाइयां अथवा बंद होने की बात आयी है ।

जूतो के बंद—जूतो अथवा बूटो में दो बंद होते थे, सन का बना एक बंद घुटने पर होता था दूसरा पैर की अंगुलियो पर । कुछ जूतो मे तीन बंद होते पर एक घुटने पर होता था दूसरा पैर के अगुठे पर और तीसरा पैरो की शेष चार अगुलियो पर[२०८] ।

जूतों की उपरोक्त किस्मो मे खल्लक और खपुसा अजंटा के भित्ति चित्रों और गुप्त सिक्को मे आते है ।

जैसा हम पहले कह आए है उपरोक्त किस्मो के जूते जो शोभाजनक समझे जाते थे जैन साधु नही पहन सकते थे । उनके जूते अट्ठारह टुकड़ो मे कटे और सिले होते थे। रंगीन चमडो मे उनके जूते नही बन सकते थे और उनमे केवल एक तल्ला और एक ही बंद (एकबंध) विहित था[२०९] ।

जैन साधुओ को भिन्न भिन्न तरह के जूते न पहनने देने के निम्नलिखित कारण थे, (१) चमड़े के व्यवहार के माने, गाय और दूसरे पशुओ के प्रति क्रूरता थी[२१०] । (२) जूतों कडाई मे चलने मे छोटे छोटे जंतुओ की हत्या होती थी[२११] । (३) विना जूता पहन कर चलने में लोग सावधानी से काटे इत्यादि देख कर चलते थे । ऐसा करने से उन्हें क्षुद्र कीटादि

२०३—वही, ३, २३८५

२०४—वही, ४, ३८४८

२०५—वही, ४, ३८५१

२०६—वही

२०७—वही, ४, ३८६६

२०८—वही, ४, ३८७०

२०९—वही, ४, ३८७३

२१०—वही, ४, ३८५६

२११—वही, ४, ३८५७

थे । जूते बनाने के लिए बृहत् कल्पसूत्र में गाय, भैसे, बकरे, भेड और दूसरे वन्यपशुओ के चमडे गिनाये गये है[१६३] । जैन साधु और साध्वियां किसी तरह के नापदार अथवा रंगीन चमडे की वस्तुओ का व्यवहार नही कर सकते थे[१६४] । इस उल्लेख से यह आशय निकाला जा सकता है कि उस युग में तरह तरह के नाप और शकल के तथा रगीन चमडो से जूते बनते थे जिनकी जन साधारण मे काफी माग थी । प्रमाण और वर्ण के अनुसार इन्हें चार भागो में, यथा सकल कृत्स्न, प्रमाण कृत्स्न, वर्ण कृत्स्न और बध कृत्स्न में बाट दिया गया है[१६५] ।

सकल कृत्स्न—ये एक तल्ले जूते (एकपुटं या एकतल) होते थे[१६६] । इस एक तल्ले जूते को जिसे तलिका कहते थे जैन साधु रात मे काटो से बचने के लिए पहन सकते थे । दिन में ये जूते तब पहने जा सकते थे जब सार्थवाह जिसके साथ जैन साधु चल रहे हो पगदडी का रास्ता पकड़े क्योकि ऐसे समय जूते पहनने से चलने में आसानी होती थी[१६७] ।

प्रमाण कृत्स्न—इन जूतो मे दो तीन अथवा इनसे भी अधिकतर तल्ले होते थे[१६८] ।

खल्लका—टीका के अनुसार इसके अर्ध खल्लक और समस्त खल्लक दो भेद होते थे । अर्ध खल्लक जूते आधे पैर ढकते थे और समस्त खल्लक पूरे पैर[१६६] ।

खपुसा—ये जूते घुटनो तक पहुंचते थे[२००] । इनके संबध में हम आगे चल कर कुछ और कहेंगे ।

वागुर—इन जूतो से पैर और अंगुलियां ढंक जाती थी।

कोशा—इससे चलने मे अगूठो के नखो की पत्थरो की ठोकरो से रक्षा होती थी

जघा और अर्धजघा—जघा पूरे जघे को और अर्ध जघा आधे जाघ को ढक लेता था[२०१] ।

पुटक—यह जूते तसमो से बने होते थे और इनके पहनने से जाड़े में पैरो की फटने से रक्षा होती थी[२०२] ।

कोशक और खपुसा नाम के जूते, सरदी, बरफ, साप और काटो से बचने के लिए

१६३—बृहत् कल्पसूत्र, ४, ३८२४
१६४—वही, पृ० १०५६
१६५—वही, ४, ३८४६
१६६—वही, ४, ३८४७
१६७—वही, ३, २८८४
१६८—वही, ४, ३८४७
१६६-२००—वही
२०१—वही, ४, ३८४७
२०२—वही, ३, २८८४

पहने जाते थे । यह साफ है कि वे जूते ठंडे देशों मे पहने जाते थे । जैन साधुओ को भी इन देशो में विना प्रायश्चित्त के ऐसे जूते पहनने की आज्ञा थी[२०३] ।

सकल कृत्स्न जूतो की निम्नलिखित व्याख्या दी गयी है । ये जूते (क्रमणिका) परो के नाप के अनुसार वनाये जाते थे और मध्य या और किसी भाग मे ये कटे जुडे नही होते थे[२०४] । तात्पर्य यह है कि ये जूते एक पूरे चमडे से वनते थे ।

वर्ण कृत्स्न जूते सफेद अथवा रंगीन चमडो से वनते थे[२०५] ।

वधन कृत्स्न—इन जूतो में तीन से अधिक वद होते थे[२०६] । एक दूसरी जगह[२०७] इन जूते में सन अथवा सूत की दो या उससे अधिक पक्तियो मे सिलाइया अथवा वंद होने की वात आयी है ।

जूतो के वंद—जूतो अथवा वूटो में दो वद होते थे, सन का वना एक वद घुटने पर होता था दूसरा पैर की अंगुलियो पर । कुछ जूतों में तीन वद होते पर एक घुटने पर होता था दूसरा पैर के अंगुठे पर और तीसरा पैरो की शेष चार अगुलियो पर[२०८] ।

जूतो की उपरोक्त किस्मो में खल्लक और खपुसा अजटा के भित्ति चित्रो और गुप्त सिक्को मे आते है ।

जैसा हम पहले कह आए है उपरोक्त किस्मो के जूते जो शोभाजनक समझे जाते थे जैन साधु नही पहन सकते थे । उनके जूते अट्ठारह टुकडो मे कटे और सिले होते थे। रंगीन चमडो से उनके जूते नही वन सकते थे और उनमे केवल एक तल्ला और एक ही वद (एकवंध) विहित था[२०९] ।

जैन साधुओ को भिन्न भिन्न तरह के जूते न पहनने देने के निम्नलिखित कारण थे, (१) चमडे के व्यवहार के माने, गाय और दूसरे पशुओ के प्रति क्रूरता थी[२१०] । (२) जूतो चढाई मे चलने मे छोटे छोटे जंतुओ की हत्या होती थी[२११] । (३) विना जूता पहन कर चलने मे लोग सावधानी से कांटे इत्यादि देख कर चलते थे । ऐसा करने से उन्हें क्षुद्र कीटादि

२०३—वही, ३, २३८५

२०४—वही, ४, ३८४८

२०५—वही, ४, ३८५१

२०६—वही

२०७—वही, ४, ३८५८

२०८—वही, ४, ३८७०

२०९—वही, ४, ३८७३

२१०—वही, ४, ३८९५

२११—वही, ४, ३८९७

भी दीख जाते थे और उन्हे वचा कर वे आगे वढते थे, लेकिन जूते पहन कर चलने से मनुष्य काटो और जीवो की कम परवाह करता था[२१२]। जूते पहनते ही हम पशुओ के प्रति क्रूरता स्वीकार कर लेते है[२१३]। क्षुद्र जीव स्वभाव से ही कोमल होते है इसलिए वे जूते की चाप सह नही सकते[२१४]।

धार्मिक दृष्टि से जूते न पहनना चाहे जितना पुण्य कार्य रहा हो दैनिक जीवन में यह सभव नही था कि जैन साधु जूते पहनने से बच सके, और इसीलिए हम इनके जूते न पहनने के साधारण नियम में कुछ अपवाद पाते है। विहार करते समय, बीमारी में, प्राकृतिक रूप से कोमल पैर वालो को, चोरो और वन्य पशुओ से सर्वदा ग्रस्त साधुओ को, कुष्ठ, अर्श से पीडित तथा कम देखने वाले साधुओ को, तथा विहार मे निकले छुल्लको और साध्वियो को जूते पहनने की आज्ञा थी। पारिवारिक विपत्ति तथा सघ और देश पर आयी विपत्तियो के समय भी अविहित जूते विना किसी सकोच के पहने जा सकते थे[२१५]। विहार यात्रा में साधुओ को कोश तथा खपुसा नाम के जूते पहिनने का आदेश था[२१६]। अगर साधुओ को अविहित जूते पहनने ही पडते थे तो उन्हे काले रग के जूते पहनने का आदेश था, उनके न मिलने पर लाल अथवा किसी दूसरे रग के जूते पहने जा सकते थे पर ऐसा करने के पहले यह आवश्यक था कि उनके रग विकृत कर दिये जावे[२१७]।

जैन साधुओ और साध्वियो की उपरोक्त वेश भूषा में हम एक सामाजिक विकास की क्रिया का दर्शन कर सकते है। हमे आचाराग सूत्र के पहले भाग से पता लगता है कि घोर कष्टमय तपस्या ही जैन धर्म का चरम लक्ष्य था। सामाजिक वधनो को ख्याल मे रख कर दो चार मोटे वस्त्र वे अपने अग ढाकने के लिए रख सकते थे पर इन वस्त्रो का उद्देश्य होता था केवल शरीर रक्षा और सामाजिक नियमो का पालन। गुप्त काल में सामाजिक व्यवस्था वदल गयी थी अच्छी और सुसस्कृत वेश भूषा लोगो को अत्यंत रुचिकर हो गयी थी। वौद्ध भिक्षुओ को तो इस समय कपडो के विषय मे विशेषकर विदेशो में जाने पर काफी स्वतत्रता थी। जैन साधुओ को भी झखमार कर यह स्वतत्रता कुछ अशो में देनी ही पडी और प्राचीन वस्त्र सवधी कठोर नियम ढीले करने पडे। वस्त्र सवधी इन्ही नये आदेशो को वृहत् कल्प सूत्र मे पाया जाता है। अगर जैन धर्म को सजीव होकर आगे वढना था तो उन्हें जैसा देस वैसा भेस स्वीकार करने की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य की कहानी छेद सूत्रो में है।

२१२—वही, ४, ३८५८
२१३—वही, ४, ३८५९
२१४—वही, ४, ३८६१
२१५—वही, ४, ३८६२
२१६—वही, ४, ३८६३
२१७—वही, ४, ३८६७

५

युवानच्वांङ् द्वारा वर्णित भारतीयों की वेश-भूषा

हम ऊपर जैन छेद सूत्रो में वर्णिति वेश भूषा का वर्णन कर आए है। इस खड मे हम चीनी यात्रियो द्वारा भारतीय वेश भूषा पर जो प्रकाश पडता है उसका वर्णन करेगे। युवानच्वाङ, जिनका भारतीय वेश-भूषा का ज्ञान शास्त्रीय आधार पर अवलवित जान पडता है, का कहना है कि भारतीय विना सिले सफेद कपडे पसंद करते थे। पुरुष कमर मे एक कपडा जो कांख तक पहुंचता था लपेट लेते थे और दाहिना कधा खुला छोड देते थे। स्त्रिया एक लवा वस्त्र जो दोनो कधो को ढंकता हुआ ढीले तौर से नीचे लटका करता था पहनती थी[२१८]। युवानच्वांङ द्वारा वर्णित स्त्रियो के पहिरावे का वर्णन साफ नही है और हम यह निश्चित करने में असमर्थ है कि लवे ढीले कपडे से उनका उदेश्य, साडी, चादर या कचुक इन तीन वस्त्रो मे से किससे है। इन साधारण वस्त्रो में सिवाय, युवानच्वांङ के अनुसार, उत्तर भारत में जहां काफी सरदी पडती थी लोग तातारियो की तरह चपके जाकेट पहनते थे[२१९]। शायद यह जाकेट वाद की रूईदार पूरी वाहो वाली और वायी ओर वंधने वाली वगलवदी की तरह कोई वस्त्र रहा हो।

इत्सिंग द्वारा वर्णित वौद्ध भिक्षुओ का पहरावा

इत्सिग नाम के एक दूसरे चीनी यात्री ने वौद्ध भिक्षुओ और नागरिको के पहिरावे का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। मूल सर्वास्तिवादी वौद्ध भिक्षुओ के पहिरावे का वर्णन करते हुए इत्सिग कहता है कि उनके पहिरावे मे निम्नलिखित वस्त्र होते थे। सघाटी (दोहरी चादर), उत्तरासग (चादर) और अन्तरवास (धोती)[२२०]। इन वस्त्रो के अलावा निम्नलिखित वस्तुओ का व्यवहार भी विहित था, (१) निषीदन (वैठने या सोने की चटाई), निवसन (अधो वस्त्र), (३) प्रति निवसन (एक दूसरा अधो वस्त्र), (४) सकक्षिका (वगल ढकने का वस्त्र), (५) कायप्रोछन (वदन पोछने का गमछा), (६) मुखप्रोञ्छन (मुह पोछने का रूमाल), (७) केश प्रतिग्रह (हजामत के समय वाल गिराने के लिए वस्त्र), (८) भैषज परिष्कार चीवर (दवाई का दाम देने के लिए वस्त्र)। उपरोक्त वस्तुओ के सिवाय और दूसरे वस्त्र ग्रहण करने की सर्वास्तिवादी भिक्षुओ को आज्ञा न थी लेकिन वह ऊनी कपडो के व्यवहार के लिए स्वतत्र था

रेशमी कपड़ो की अनुमति

ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण भारतवर्ष मे वौद्ध भिक्षु वढिया घटिया दोनो तरह के

२१८—वाटर्स, वही, भा० १, पृ० १४८

२१९—वही

२२०—ए रेकर्ड ऑफ दि वुधिस्ट रिलिजन एज प्राक्टिस्ड इन इंडिया एंड दी मलाया आर्चिपेलिगो पृ० ५४, जे० तककुसु द्वारा अनूदित, आक्सफोर्ड १८९६।

रेशमी वस्त्र पहन सकते थे और इस संबध में किसी प्रतिषेधात्मक आज्ञा को इत्सिंग ठीक नही समझते थे। उनकी राय मे यह बात हास्यास्पद थी कि कठिनता से मिलने वाला क्षौम तो विहित था पर आसानी से मिलने वाला रेशमी वस्त्र अविहित। इत्सिंग उस मत की आलोचना करता है जिसके अनुसार रेशमी वस्त्र इसलिए नही पहिनना चाहिए क्योकि वह जीवो को मार कर बनता था। इत्सिंग इस तर्क की हसी करता हुआ कहता है कि जीव हिंसा का यह सिद्धान्त अगर अपनी चरम सीमा पर पहुचा दिया जाय तो भिक्षुओ को प्राय सब चीजे छोड देनी होगी[२२२]। रेशमी वस्त्रो के प्रति इत्सिंग का यह प्रेम शायद इसलिए है कि वह उस देश का वासी था जहा रेशम तो बहुत होता था पर क्षौम कठिनाई से मिलता था। इस तर्क से इत्सिंग के वैज्ञानिक विचार का भी पता चलता है।

बौद्ध निकाय के चारो भेद के अनतर उनके मानने वाले भिक्षुओ के निवसन पहनने के ढंग के अंतरो से मिलता है। मूल सर्वास्तिवादी भिक्षु अपने निवसन के छोर कमरबंद के वाहर निकाल देते थे। महासाघिक भिक्षु निवसन का दाहिना छोर बायी ओर ले जाकर कमरवद मे कस कर खोस लेते थे। स्थविर निकायवादी और सम्मित निकायवादी भिक्षु अपने निवसन महासाघिक भिक्षुओ की तरह पहनते थे, सिवाय इसके कि पहले दोनो अपने निवसनो के छोर वाहर छोड देते थे और महासाघिक उनको कस कर कमर मे खोस लेते थे। इन चारो निकाय के भिक्षुओ के कमरवद भी भिन्न भिन्न तरह के होते थे[२२३]।

भिक्षुणियों के वस्त्र

भिन्न भिन्न निकाय की भिक्षुणियो के वस्त्र पहनने की रीति उन निकायो के भिक्षुओ के वस्त्र पहिरने की रीतियो के अनुसार होती थी[२२४]। वे उत्तरासग, अन्तरवास और सकक्षिका तो अपने निकाय के भिक्षुओ के तरह की पहनती थी पर उनके निवसन पहनने का तरीका भिन्न था। निवसन के लिए कुसूलक शव्द का प्रयोग होता था क्योकि इसका आकार कुसूल की तरह होता था। यह घाघरेनुमा वस्त्र एक वस्त्र के दोनो सिरो को सीकर वनाया जाता था। कपडा चार हाथ लवा और दो हाथ चौडा होता था। घाघरा नाभि से ले कर एडी के चार अगुल ऊपर तक पहुचता था। पहिनने में पहले घाघरे के अदर खडे हो कर फिर उसे ऊपर खीच लिया जाता था। घाघरे का सिरा कमर पर सकुचित कर के पीछे वाघ लिया जाता था[२२५]। साधारणत भिक्षुणिया अपनी छाती और वगले नही ढाकती थी, पर युवावस्था स्तनो के उभार होने पर वे उन्हे ढक सकती थी[२२६]।

२२१—वही, पृ० ५५
२२२—वही
२२३—वही, पृ० ६६-६७
२२४—वही, पृ० ६७
२२५—वही, पृ० ७८
२२६—वही, पृ० ७८

भिक्षुओं के वस्त्र रंगने के रंग

कपड़े रगने के लिए रंग कांड (रहमानिया ग्लूटिनोसा, पीतचूर्ण (प्टेरोकार्पस इंडिकस) को गेरू और लाल पत्थर के चूरे से मिला कर बनाते थे। कपडे रंगने के सस्ते रग खजूर, लाल मिट्टी, लाल पत्थर के चूरे, हुरमुजी मट्टी और जंगली नाशपाती से तैयार कर लिए जाते थे[२२७]।

नागरिकों के वस्त्र

इत्सिग के अनुसार उच्च वर्ण के भारतीय जिनमें राज कर्मचारी भी होते थे सफेद कपडो का एक जोड पहनते थे। पर गरीब केवल एक ही वस्त्र पहनते थे। धोती आठ फुट लबी होती थी और वह केवल कमर मे लपेट ली जाती थी[२२८]।

ठडे प्रदेशों की वेश-भूषा

कश्मीर से ले कर मगोल प्रदेशों तक जिनमे सूली (रूसी तुर्किस्तान), तिब्बती और तुर्की नस्ल की जातिया आ जाती थी लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे। सूती वस्त्रो का व्यवहार तो यहां के लोग यदा कदा ही करते थे। शीत की वजह से लोग कमीज और पाजामे पहनते थे। भिक्षु और साधारण जन लि-प नाम का एक विशेष वस्त्र पहिनते थे[२२९]। यह लि-प शायद सस्कृत रेफ से निकला है और इसके बनाने का निम्नलिखित तरीका दिया गया है—रेफ बनाने के लिए कपडा इस तरह काटा जाता था कि उसमे पीछा न पड़े और एक कधा भी न ढके। इसमें बाहे भी नही होती थी और बायां कंधा ढंकने वाला भाग सकरा होता था। ठडी हवा से बचने के लिए इसे दाहिनी बगल में बाध लिया जाता था। मोटा और गरम बनाने के लिए इस वस्त्र मे रूई भर दी जाती थी। कभी कभी यह वस्त्र दाहिनी ओर सिला होता था और उसके सिरे पर बद जोड दिये जाते थे। इत्सिग ने पश्चिमी भारत मे उत्तरापथ से आये भिक्षुओ को रेफ पहने देखा था। विहार की गरम जलवायु की वजह से नालदा में यह वस्त्र नही पहना जाता था। कुछ लोग कमीज भी पहनते थे, गो कि भिक्षुओ के लिए यह वस्त्र अविहित था[२३०]

बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्रों के नाम

ताकाकुसु द्वारा इत्सिग की यात्रा विवरण के उस भाग का अनुवाद, जहां भिक्षुओ के वस्त्र पहनने की विधि दी गयी है, ठीक तरह से समझ मे नही आता। संघाटी चार हाथ चौडी होती थी जिसमें गले से पाच अंगुल हट कर एक चार अगुल चौखूटा कपड़ा जोड़

२२७—वही, पृ० ७७

२२८—वही, पृ० ६७-६८

२२९—वही

२३०—वही, पृ० ६७-७०

रेशमी वस्त्र पहन सकते थे और इस संबध में किसी प्रतिषेधात्मक आज्ञा को इत्सिग ठीक नहीं समझते थे। उनकी राय में यह बात हास्यास्पद थी कि कठिनता से मिलने वाला क्षौम तो विहित था पर आसानी से मिलने वाला रेशमी वस्त्र अविहित। इत्सिग उस मत की आलोचना करता है जिसके अनुसार रेशमी वस्त्र इसलिए नही पहिनना चाहिए क्योकि वह जीवो को मार कर बनता था। इत्सिग इस तर्क की हंसी करता हुआ कहता है कि जीव हिंसा का यह सिद्धान्त अगर अपनी चरम सीमा पर पहुचा दिया जाय तो भिक्षुओ को प्राय सब चीजें छोड देनी होगी[२२२]। रेशमी वस्त्रो के प्रति इत्सिग का यह प्रेम शायद इसलिए है कि वह उस देश का वासी था जहा रेशम तो बहुत होता था पर क्षौम कठिनाई से मिलता था। इस तर्क से इत्सिग के वैज्ञानिक विचार का भी पता चलता है।

बौद्ध निकाय के चारो भेद के अनतर उनके मानने वाले भिक्षुओ के निवसन पहनने के ढंग के अंतरो से मिलता है। मूल सर्वास्तिवादी भिक्षु अपने निवसन के छोर कमरबंद के बाहर निकाल देते थे। महासाघिक भिक्षु निवसन का दाहिना छोर बायी ओर ले जाकर कमरबंद में कस कर खोस लेते थे। स्थविर निकायवादी और सम्मित निकायवादी भिक्षु अपने निवसन महासाघिक भिक्षुओ की तरह पहनते थे, सिवाय इसके कि पहले दोनो अपने निवसनो के छोर बाहर छोड देते थे और महासाघिक उनको कस कर कमर मे खोस लेते थे। इन चारो निकाय के भिक्षुओ के कमरबद भी भिन्न भिन्न तरह के होते थे[२२३]।

भिक्षुणियों के वस्त्र

भिन्न भिन्न निकाय की भिक्षुणियो के वस्त्र पहनने की रीति उन निकायो के भिक्षुओ के वस्त्र पहिरने की रीतियो के अनुसार होती थी[२२४]। वे उत्तरासग, अन्तरवास और सकक्षिका तो अपने निकाय के भिक्षुओ के तरह की पहनती थी पर उनके निवसन पहनने का तरीका भिन्न था। निवसन के लिए कुसूलक शब्द का प्रयोग होता था क्योकि इसका आकार कुसूल की तरह होता था। यह घाघरेनुमा वस्त्र एक वस्त्र के दोनो सिरो को सीकर बनाया जाता था। कपडा चार हाथ लबा और दो हाथ चौडा होता था। घाघरा नाभि से ले कर एडी के चार अगुल ऊपर तक पहुचता था। पहिनने में पहले घाघरे के अदर खडे हो कर फिर उसे ऊपर खीच लिया जाता था। घाघरे का सिरा कमर पर सकुचित कर के पीछे बाध लिया जाता था[२२५]। साधारणत भिक्षुणिया अपनी छाती और बगलें नही ढाकती थी, पर युवावस्था स्तनो के उभार होने पर वे उन्हे ढक सकती थी[२२६]।

२२१—वही, पृ० ५५
२२२—वही
२२३—वही, पृ० ६६-६७
२२४—वही, पृ० ६७
२२५—वही, पृ० ७८
२२६—वही, पृ० ७८

भिक्षुओं के वस्त्र रंगने के रंग

कपडे रगने के लिए रग कांड (रहमानिया ग्लूटिनोसा, पीतचूर्ण (प्टेरोकार्पस इंडिकस) को गेरू और लाल पत्थर के चूरे से मिला कर बनाते थे । कपड़े रंगने के सस्ते रंग खजूर, लाल मिट्टी, लाल पत्थर के चूरे, हुरमुजी मट्टी और जंगली नाशपाती से तैयार कर लिए जाते थे[२२७] ।

नागरिकों के वस्त्र

इत्सिग के अनुसार उच्च वर्ण के भारतीय जिनमें राज कर्मचारी भी होते थे सफेद कपडो का एक जोड पहनते थे । पर गरीब केवल एक ही वस्त्र पहनते थे । धोती आठ फुट लंबी होती थी और वह केवल कमर मे लपेट ली जाती थी[२२८] ।

ठंडे प्रदेशों की वेश-भूषा

कश्मीर से ले कर मगोल प्रदेशों तक जिनमें सूली (रूसी तुर्किस्तान), तिब्बती और तुर्की नस्ल की जातिया आ जाती थी लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे । सूती वस्त्रो का व्यवहार तो यहां के लोग यदा कदा ही करते थे। शीत की वजह से लोग कमीज और पाजामे पहनते थे । भिक्षु और साधारण जन लि-प नाम का एक विशेष वस्त्र पहिनते थे[२२९] । यह लि-प शब्द सस्कृत रेफ से निकला है और इसके बनाने का निम्नलिखित तरीका दिया गया है—रेफ बनाने के लिए कपडा इस तरह काटा जाता था कि उसमे पीछा न पड़े और एक कधा भी न ढके । इसमें बाहे भी नही होती थी और बाया कधा ढंकने वाला भाग सकरा होता था । ठंडी हवा से बचने के लिए इसे दाहिनी बगल में बाध लिया जाता था। मोटा और गरम बनाने के लिए इस वस्त्र में रूई भर दी जाती थी । कभी कभी यह वस्त्र दाहिनी ओर सिला होता था और उसके सिरे पर बद जोड दिये जाते थे । इत्सिग ने पश्चिमी भारत में उत्तरापथ से आये भिक्षुओ को रेफ पहने देखा था। बिहार की गरम जलवायु की वजह से नालदा में यह वस्त्र नही पहना जाता था। कुछ लोग कमीज भी पहनते थे, गो कि भिक्षुओ के लिए यह वस्त्र अविहित था[२३०]

बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्रों के नाम

ताकाकुसु द्वारा इत्सिग की यात्रा विवरण के उस भाग का अनुवाद, जहां भिक्षुओं के वस्त्र पहनने की विधि दी गयी है, ठीक तरह से समझ में नही आता । सघाटी चार हाथ चौडी होती थी जिसमें गले से पाच अंगुल हट कर एक चार अंगुल चौखूटा कपड़ा जोड़

२२७—वही, पृ० ७७
२२८—वही, पृ० ६७-६८
२२९—वही
२३०—वही, पृ० ६७-७०

दिया जाता था । इसके बीच में एक छेद होता था जिसके बीच से रेशमी अथवा सूती फीते बाहर निकाल कर छाती पर बाध दिये जाते थे[२३१] । उपवसन में भी इसलिए फीते लगे रहते थे कि वह जरा ऊपर खीच कर बाधा जा सके[२३२] । एकहरा अथवा दुहरा निवसन पाच हाथ लबा और दो हाथ चौडा होता था और वह नाभि को ढकते हुए पहना जाता था। इसके दोनो छोरो में तीन गाठे लगा दी जाती थी और वे पीछे इस तरह खोस ली जाती थी कि वे आखो से छिपी रहे । निवसन के ऊपर कमरबद भी पहना जाता था[२३३] ।

कुरता

इस युग में आजकल का सर्व साधारण वस्त्र कुरते का पता भारतीय साहित्य से नही चलता, पर इसका उल्लेख लि-येन (मृत्यु ७८५-७९४ के बीच में) के सस्कृत चीनी कोश में हुआ है। चीनी शब्द चान् का जिसका अर्थ कमीज होता है सस्कृत पर्यायवाची कुरतउ दिया गया है[२३४] । कुरता की समानता पुर्तगाली कुरता-कबाया से की गयी है। पर यह निश्चित है कि पुर्तगालियो ने यह शब्द भारतीय भाषा से ही ग्रहण किया है। पुर्तगाली मे कुरता कबाया के सयोग से यह पता लगता है कि कुरता और कबाया का बहुत नजदीक सबध था। कुरता कबा, जो फारसी मे एक लबे गाउन जैसे वस्त्र का द्योतक है, के नीचे पहरा जाता था और यह दोनो वस्त्र मुगल पहरावे मे अपना विशेष स्थान रखते थे । लेकिन लि-येन के कोश में उल्लिखित कुरतउ किस भाषा का शब्द था इसका अभी तक पता नही चला है । क्या यह तुर्की का शब्द है ? आशा है कि विद्वान् इस पर प्रकाश डालेगे ।

जूते

गुप्त-युग में प्रचलित जूतो पर भी चीनी साहित्य से कुछ प्रकाश पडता है। फान-यु-त्सा-मिंग मे चीनी शब्द हियु का जिसके माने वूट होते हैं पर्यायवाची शब्द कवशि दिया है पर यह शब्द सस्कृत साहित्य में नही आता । पेलियो के अनुसार यह शब्द जूते के लिए फारसी कफ्स से बहुत कुछ मिलता है जो मध्य एशिया की तुर्की भाषाओ में कापिश तथा किपिश शब्दो मे जिनके माने जूते होते है बच गया है । इस शब्द की तुलना तिब्बती कव-श, जिसके माने धनी तिब्बतियो का भारतीय ढंग का जूता होता है, की जा सकती है। ले-फान-ताग्-सियाओ-सी (ब्रम्ह-चीन-वर्तमुख) में जो इत्सिग के चीनी कोश का एक उपोद्घात है, दो चीनी शब्द हियु और हिआइ जिनके अर्थ बूट और जूते होते है पर्यायवाची सस्कृत शब्द शवनस और पूल दिये गये है । महाव्युत्पत्ति में बूट और जूतो के लिए उपानह, पादुका,

---

२३१—वही, पृ० ७२-७३

२३२—वही, पृ० ७३

२३३—वही, पृ० ७५-७६

२३४—बागची, द्व लेक्सीक संस्कृत-चिनुआ, टोम, २ पृ० ३५७, पैरिस १९२७।

पादवेष्टनिका पूल और मंडपूल (मुडपूल) शब्द आए हैं । ले-फान-तांग-सियाओ-सी और महाव्युत्पत्ति के पूल एक ही हैं पर शवनस और पूल की व्युत्पत्तियों का ठीक ठीक पता नही चलता[२३५] । लगता है कि जूतों के लिए ऊपर आये शब्द या तो मध्य एशिया मे वनाये गये या देशी भापा से लिये गये । हमें पूल का तो पता नही लगता लेकिन महाव्युत्पत्ति के मुडपूल का सवध उत्तर भारत के मुडे जूते से हो सकता है, जिसमें अलंकारिक चोटिया नही होती । पूर्वी युक्त प्रदेश मे अब भी मुडा जूता पहना जाता है । फान-युत्सा-मिंग के कवशि का प्राकृत रूपान्तर हमे बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[२३६] के घुटने तक पहुचने वाले खपुसा नाम के जूते में मिलता है । इस बात की काफी संभावना है कि खपुसा या कवशि ईरानी बूट थे जिन्हें शक और कुषाण इस देश में लाये



२७५



२७६



२७७



२७८



२७९



२८०



२८१



२८२


२८३


२८४


२८५ ए०


२८५ बी०


२८५ सी०


२८६


२८७


२८८


२८९


२९० ए०


२९० बी०


२९१


२९२


२९३


२९४

दसवां अध्याय

मूर्तियो और चित्रों मे गुप्त-युग की वेश-भूषा

गोली के अर्धचित्रो मे दक्षिण भारतीयो के चौथी शताब्दी की वेश-भूषा का सुन्दर चित्रण हुआ है । इस वेश-भूषा का वर्णन करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि दक्षिण भारत के लोगो की चौथी शताब्दी के वेश-भूषा में और नागार्जुनीकुण्ड और अमरावती के अर्ध चित्रो में चित्रित दक्षिण भारत की वेश-भूषा में बहुत अतर नही है ।

उच्च पदस्थ लोगो की वेश-भूषा

धोती—राजकुमार और उच्चवर्ग के लोग कमरबंद से बधी धोती और पगड़ी पहनते थे । नागराज की मूर्ति मे[1] तत्कालीन धोती पहनने का सुदर चित्रण है (आ० २७१) जरा घुटनो के ऊपर तक पहुंचती धोती कमर के साथ एक फंदेदार कमरबद से बधी है । धोती का फदेदार और छूट्टे सिरे एक चूडी से निकाल दिये गये है, एक दूसरी जगह एक राजकुमार की धोती का सिरा चुन कर आगे खुसा है । कमर के साथ धोती एक फूदनेदार उमेठी पेटी से बधी है । पेटी के अदर से कमरबद निकाल कर पहना गया है । पगडी में पान के आकार का एक शीर्षपट्ट, जिस पर एक पक्षी बना है, लगा है (आ० २७२)[२] । अपने घर के एकान्त में दोनो सिरे आगे लटकते हुए कमरबद के साथ लोग धोती पहनते थे (आ० २७३)[३] ।

सिपाहियो की वेश-भूषा

युद्ध यात्रा पर निकले सिपाही अपनी धोती का अगला हिस्सा मोड कर कमर मे खोस लेते थे, जिससे चलने मे धोती लपटे नही । धोती के बधन मे मजबूती लाने के लिए कमरवद भी पहनते थे (आ० २७४)[४] । इस कमरवद के सिरे नाभि के नीचे लगी दो चूडियो के वीच से निकाल दिये जाते थे । अक्सर उनकी धोती घुटनो तक ही पहुचती थी (आ० २७५)[५] । सिपाही पगडी भरी वाह के कचुक और धोती भी पहनते थे (आ० २७६)[६] ।

एक जगह भगवान वुद्ध की पूजा करते हुए एक भक्त की पीठ दिखलाई गयी है जिससे

१—रामचन्द्रन्, वुधिस्ट स्कल्पचर्स फ्राम ए स्तूप नियर गोली विलेज, गुटूर डिसट्रिक्ट, प्ले० ४ जे मद्रास, १६२६ ।

२—वही, प्ले० ६, ६

४—वही, प्ले० ५, वी०

५—वही, प्ले० ४, ६

६—वही, प्ले० ४

पता लगता है कि लोग लांग खोंसते थे । शीर्षपट्ट को यथास्थान स्थिर रखने के लिए पगड़ी के पीछे एक चौपतिया कोढ़ा भी लगा दिखलाया गया है (आ० २७७)[७] ।

ब्राह्मणो की वेश-भूषा

अधिकतर ब्राम्हण धोती जिसका एक सिरा कमर के बगल में खुसा होता था और वैकक्ष्य पहनते थे (आ० २७८)[८] ।

प्रतिहारी की वेश-भूषा

प्रतिहारी भरी बांह का कंचुक ऊंची टोपी और वैकक्ष्य पहने दिखलाया गया है (आ० २७९)[९] ।

स्त्रियों की वेश-भूषा

स्त्रिया पतली साड़ी पहने दिखलायी गयी है । एक जगह एक विदेशी स्त्री टोपी पहने दिखलायी गयी है (आ० २८०)[१०]।

२

गुप्त-युग की वेश-भूषा के जिन अंगो पर साहित्य से कम प्रकाश पडता है, उनका पुरातत्व से समाधान हो जाता है । इस युग की मूर्ति-कला अमरावती के अर्ध चित्रो की तरह हमें तात्कालिक सामाजिक जीवन के चित्र नही देती और इसका कारण इस युग की कला के उद्देश्य मे परिवर्तन है, जिसमे अनुप्राणित हो कर वह अध्यात्मचितन की ओर उन्मुख हो जाती है । इससे उसमें वर्णनात्मकता की तो कमी हो जाती है, पर रसभावना कही अधिक वढ जाती है । पर भाग्यवश यह चिंतनशीलता मूर्तियो तक ही सीमित रही। इस युग के भारतीय चित्रकार तो अपने पुरानो की तरह चित्रो को तत्कालीन समाज और सस्कृति के प्रतिबिंव मानते रहे। अजटा के भित्ति-चित्र गुप्त-युग के वस्त्रो के लिए कोश के समान है। नक्काशिया इन वस्त्रो पर कम मिलती है । चित्रो में सादे और सिले वस्त्र दोनो आते है ।

गुप्त-युग के सिक्के भी हमें तत्कालीन राजकीय वेश-भूषा के वारे में काफी मसाला देते है । इनमे अकित राजाओ को छोटी शवीहो में भी वेश-भूषा का आकर्षक चित्रण हुआ है।

वेश-भूषा पर विदेशी प्रभाव

गुप्त-साम्राज्य के स्थापित होने के सैकड़ो वर्ष पहले तक उत्तर पश्चिमी भारत हिन्द-यूनानियो, शको और कुषाणो के आधीन रहा । देशी और विदेशी सस्कृतियो के पारस्परिक सबध और आदान-प्रदान से दोनो संस्कृतिया एक दूसरे का दृष्टिकोण समझ गयी । मध्य एशिया का विशाल सास्कृतिक क्षेत्र शको और कुषाणो ने खोल कर भारतीय और चीनी

७—वही, प्ले० ६, ५

८—वही, प्ले० ४, एफ

९—वही, प्ले० २, ई

१०—वही, प्ले० ३, जी

संस्कृतियों का सपर्क स्थापित किया । गुप्त युग में भारतीय सस्कृति का बृहत्तर भारत में प्रसार होने से यह देश एशिया की बहुत सी जातियो का तीर्थ क्षेत्र बन गया। अजटा के भित्ति-चित्रो मे अपने जातीय पहरावो से अलकृत, भारतीय, अफगान, तथा मध्य एशिया वासी बुद्ध की पूजा करते दिखलाये गये है। यात्रियो की इस रग बिरगी भीड से और अपने जातीय पहरावे पहरे हुए व्यापारियो के वस्त्रो से इस देश की वेश-भूषा पर प्रभाव पडना कुछ असभव न था। बाणभट्ट की आख्यायिकाओ से भी इस बात का पता चलता है कि सातवी शताब्दी में यहा कुछ सिले विदेशी वस्त्रो का व्यवहार होता था । इसका कारण भारतीय सस्कृति का ईरानी, अफगानी और चीनी सस्कृतियो से व्यापारिक और धार्मिक सबध था। इसी सबध की वजह से हम अजटा के भित्ति चित्रो में भारतीय पहरावो के सिवाय पडोसी देशो के पहरावो का भी अध्ययन कर सकते है ।

अजंटा के भित्ति-चित्रों में बोधिसत्वों की रूढ़िगत वेश-भूषा

गुप्त-युग के सिक्के और अजटा के भित्ति-चित्र ही हमारे गुप्त कालीन वेश-भूषा की जानकारी के प्रधान साधन है । अजटा के भित्ति-चित्रो में राजे और राज पुरुष धोती और गहरे काम वाले मुकुट पहने दिखलाये गये है । पगडी तो शायद ही कही आती है । लेकिन सिक्को में तो गुप्त राजे धोती, दुपट्टा, कचुक और पायजामे पहने दिखलाये गये है। वे पगडी और कभी कभी टोपी भी पहनते थे, पर प्राय. वे अपने सिर नगे रखते थे । अजटा के भित्ति-चित्रो में और सिक्को पर आये राजाओ की वेश-भूषाओ में जो फर्क आ जाता है, उसका कारण शायद भित्ति-चित्रो में बोधिसत्वो के देवत्व की कल्पना है। इन बोधिसत्वो की वेश-भूषा मे हम मूर्ति रचना के मध्यकालीन नियमो का आरम्भ देखते है। अजटा के भडकीले मुकुट उन्ही मध्यकालीन नियमो की देन मालूम पडते है, क्योकि तत्कालीन साहित्य में तो ऐसे मुकुटो के वर्णन नही से है । भडकीले मुकुट और गहने पहने हुए अजटा के बोधिसत्वो को हम तत्कालीन ऐसी ही विष्णु की मूर्तियो की श्रेणी मे रख सकते है और इसीलिए हम इनके वस्त्राभूषणो से उस युग के राजाओ के वस्त्राभूषणो की तुलना नही कर सकते । जैसा हम पहले देख चुके है, हर्षचरित के राजो का पहरावा कीमती कपडो का तो अवश्य होता था, पर वह चडक भडक से तो बहुत दूर रहता था । अजटा के भित्ति-चित्रो और गुप्त सिक्को पर राजाओ की वेश-भूषा में अन्तर के कारण सिक्को पर आई वेश-भूषा का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व बढ जाता है । नीचे के पृष्ठो में सिक्को और चित्रो में आई राजाओ की वेश-भूषा का वर्णन दिया जाता है ।

सिक्कों पर अकित गुप्त राजाओ की वेश-भूषा

समुद्रगुप्त

साधारण भाति के सिक्को पर समुद्रगुप्त अधवहिया कचुक अथवा कोट जिसके चाकदार नुकीले कोने नीचे लटक रहे है तथा जिसके आगे पर दोनो घुडीदार

कसीदे का काम है पहिने है (आ० २८१)[११]। अधिकतर सिक्को मे तो कचुक के दो ही नुकीले कोने होते है लेकिन एक सिक्के में[१२] चारो कोने दिखलाये गये है। इस,कचुक की तुलना मथुरा से मिलीहुई एक शक योद्धा की मूर्ति के कचुक से की जा सकती है[१३]। समुद्रगुप्त का पाजामा ढीला शलवार न हो कर चूड़ीदार है और इनके सिर पर सटकर बैठने वाली टोपी है । जूते अर्धजघा किस्म के है ।

साधारण भाति के कुछ दूसरे सिक्को में कचुक पूरी बाह का है बाहे चपकी न हो कर ढीली है और कलाइयो पर मोडी हुई है (आ० २८२)[१४]। बूट जघा किस्म का है और उसमें बटन लगे है ।

साधारण भाति के तीसरी किस्म के सिक्को मे अधवहियां कचुक का सयोग जाधिये के साथ है । घुटनो के नीचे तक पहुंचते जूतो के जोड पर फुल्ले लगे है (आ० २८३)[१५]। ये बूट साहित्य में आये खपुसा की तरह है ।

व्याघ्र-पराक्रम भाति के सिक्को मे राजा मुडी आस्तीन वाला कसा हुआ कचुक, बटा हुआ कमरबद, घुटनो के ऊपर तक पहुचती जाधिया और कुषाण कालीन पगडी, जिस पर शीर्षपट्ट लगा हुआ है, पहने है (आ० २८४)[१६]।

चद्रगुप्त-कुमार देवी भाति के सिक्को मे चन्द्रगुप्त चाकदार जामा, जिसके गले पर घुडीदार काम है और फूदने लटक रहे है, पहनता है । जामा के मध्य मे तुक-मेक की पक्ति है (आ० २८५ ए० बी० सी०)[१७]। ब्रीचेस ऐसे पाजामे पर गरारीदार खपुसा किस्म के जूते है।

समुद्रगुप्त के वीणावादक भाति के सिक्को से पता चलता है कि राज के थकाने वाले कामो से छुट्टी पा कर आराम के समय अथवा सगीत का आनद लेते हुए गुप्त राजे सादी घोती और टोपी पहनते थे (आ० २८६)[१८]। अपने घरेलू जीवन मे गुप्त राजे ऐसी सादी वेश-भूषा पसद करते थे, इसका पता हमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के आसदिक सिक्को से लगता है[१९]। यहा आसदी पर बैठे राजा एक घोती पहने है।

११—एलन, कैटलाग ऑफ दि कॉयन्स ऑफ दि गुप्त डाइनेस्टी एण्ड शशाक किंग ऑफ गौड, प्ले० १, ११, लडन १९१४

१२—वही, प्ले० १, ५

१३—अग्रवाल, हैंड बुक ऑफ दि कर्जन म्यूजियम ऑफ आर्कियोलोजी, प्ले० २१ तथा जे० आई० एस० ओ० ए०, १९४०, पृ० २०६।

१४—एलन, वही, प्ले० १, ११-१३

१५—वही, प्ले० १

१६—वही, प्ले० १, १४-१७

१७—वही, प्ले० २, १४

१८—वही, प्ले० ३, १

१९—वही, प्ले० ५

चन्द्रगुप्त द्वितीय की वेश-भूषा

चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी भाति के सिक्को में राजा एक सटा कचुक पहनते हैं जो कभी कभी कमरबद से बधा होता है। इसका फदा बायी ओर होता था और उसी ओर इसके सिरे जमीन पर लहराते थे[२०] (आ० २८७)। धनुर्धारी भाति के दूसरे सिक्कों में राजा जाधिया और दाहिनी ओर फदेदार कमरबद पहनते हैं[२१]।

एक सिह-पराक्रम भाति के सिक्के में राजा कचुक, कमरबद, धोती और चोटीदार फुल्ले वाला खोद पहने दिखाये गए है (आ० २८८)[२२]। एक दूसरी तरह के खोद में चोटी से ले कर पीछे तक घुडिया बनी है (आ० २८९)[२३]।

अश्वारोही भाति के सिक्को में चन्द्रगुप्त द्वितीय के पहरावे में धोती और कमरबद, जिसके छोर पीछे फडफडा रहे है, मुख्य है (आ० २९० ए० बी०)[२४]। पर कभी घोडे पर सवार राजा कमरबद से कसा कचुक और धोती भी पहनते है (आ० २९१)[२५]।

एक ताबे के सिक्के में बरामदे मे आराम से खडे चन्द्रगुप्त द्वितीय को दोनो कधो पर पडा दुपट्टा, जिसका एक छोर उनके बायें हाथ मे है, पहरे दिखलाया गया है (आ० २९२)[२६]।

कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल मे जब गुप्त-साम्राज्य अपनी चोटी पर पहुच चुका था, हम उस जातीय पहरावे की चलन देखते है जिसमें से कुषाण युग के पाजामें और पूरे बूट निकाल दिये गये थे। साधारणत कुमारगुप्त प्रथम चाकदार कचुक और घुटनो तक की धोती पहने दिखलाये गये है (आ० २९३)[२७]। कभी कभी यह धोती एडी तक पहुचती थी[२८]। पगडी की जगह चूर्ण कुतल देख पडते है। कमरबद का फदा बायी ओर होता है और उसके सिरे उसी ओर लटका करते थे[२९]।

कुमारगुप्त के चादी के सिक्को में वेश-भूषा की दृष्टि से आकर्षक वस्तु चपकी

२०—वही, प्ले० ६, ८-९
२१—वही, प्ले० ६, १०-११
२२—वही, प्ले० ७, १८
२३—वही, प्ले० ८, ११
२४—वही, प्ले० ८, १३
२५—वही, प्ले० ९-१०
२६—वही, प्ले० १०
२७—वही, प्ले० १०, ९
२८—वही, प्ले० ११, ११
२९—वही, प्ले० १२, ४

टोपी[३०] अथवा सजी पगड़ी[३१] है जिसका छज्जा ऊपर मुड़ा है (आ० २९४)[३२]।

अजटा के भित्ति-चित्र मे राजाओ और उच्चपदस्थ राजकर्मचारियो की वेश-भूषा

अजटा के भित्ति-चित्रो मे राजाओ का पहरावा बड़ा सादा यानी केवल धोती दुपट्टे का होता था, लेकिन वस्त्रो के इस सादेपन को वे अपने रत्न जटित मुकुटो की कारीगरी से पीछे डाल देते थे। इस बात मे सदेह है कि पेचीदी कारीगरी वाले मुकुट यथार्थ मे व्यवहार में लाये जाते थे अथवा नही, क्योकि तत्कालीन साहित्य इनकी ओर सकेत नही करता, तथा तत्कालीन गुप्त सिक्को की राजमूर्तियो की वेश भूषा मे भी इनका पता नही चलता। सभव है सादी कारीगरी वाले मुकुट यथार्थ में राजाओ द्वारा पहने जाते हो, लेकिन बहुत पेचीदी कारीगरी वाले मुकुट तो देवताओ और बोधिसत्वो के लिए ही थे।

अजटा के एक भित्ति-चित्र मे राजा बिंबिसार एक लाल और नीली धारियो वाली धोती और झब्बेदार कमरबद पहने हैं। इनकी पगडी अथवा टोपी एक सरपेच से, जिसके दोनो ओर टिकरे लगे है, सुसज्जित है (आ० २९५)[३३]।

अजटा में चित्रित काशिराज बारीक धोती जो कमर पर पेटी से बधी है पहने है। पटके का छोर जमीन पर लहरा रहा है। उनके बाये कधे पर एक सकरा धारीदार दुपट्टा है। उनकी ऊची टोपी फुल्लो और सितारो से सज्जित है (आ० २९६)[३४]।

एक दूसरी जगह राजा धारीदार धोती जिसका एक खाना मोटी धारियो से सज्जित है, पहरे है। उनकी धातु-निर्मित टोपी के चोटी और बगलो पर फुल्ले है (आ० २९७)[३५]।

विश्वतर जातक के चित्रण में राजकुमार विश्वतर राज महल के बाहर निकलते समय आधे बाह का कसा हुआ कचुक (कूर्पासक), कमरबद सहित धोती और कुलाहनुमा टोपी पहने दिखलाये गये है (आ० २९८)[३६]। उसी चित्र में राजमहल के अदर ब्राह्मणो को दक्षिणा बाटते हुए विश्वतर खूब कामदार मुकुट, छाती को ढकता हुआ आधे बाह का कसा कचुक (कूर्पासक) जो मोरियो पर गोट से सजा है, उमठे दुपट्टे से बना वैकक्ष्य, छोटी धोती तथा करधनी, जिसके फूदने नीचे लटक रहे हैं, पहरे है (आ० २९९)।

एक दूसरे चित्र में घोडे पर सवार एक राजकुमार एक पूरे बाहो वाला कचुक,

---

३०—वही, प्ले० १२, ८
३१—वही, प्ले० १५, ६
३२—वही, प्ले० १६, ५
३३—हेरिगम, अजटा फ्रेस्कोज, प्ले० १, १, केव १७
३४—वही, प्ले० २५, २७
३५—वही, प्ले० २२, २४
३६—वही, प्ले० २२, २४



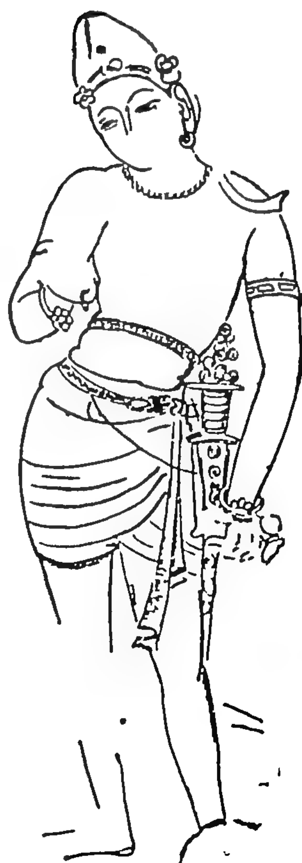
२९५



२९६



२९७



२९८



२९९



३००



३०१



३०३



३०२

छोटी धोती और कमरबद, जिसमें कटार खुसी है, पहने दिखलाया गया है (आ० ३००)[३७]।

बाग गुफा के एक भित्ति-चित्र मे एक राजा धारीदार धोती और जडाऊदार चौखूटा मुकुट पहने है (आ० ३०१)। उसी चित्र में एक दूसरा राजा तिकोना मुकुट पहने दिखाया गया है (आ० ३०२)[३८]।

राजाओ की रूढिगत वेश-भूषा का सुदर चित्रण पद्मपाणि के चित्र में हुआ है। इसमें आभूषणो की सख्या कम, पर आकर्षक है। धोती धारीदार है और उसके कुछ खानो में चारखाने बने है (आ० ३०३)[३९]। एक दूसरी जगह अवलोकितेश्वर करधनी से बधी लाल हरी धारियो वाली धोती और जडाऊदार त्रिकूट मुकुट पहने दिखलाये गये है[४०]। एक तीसरी जगह एक राजा धारी और चारखाने दार धोती और पैरो के बीच लटकता दुपट्टा पहरे है तथा दीवार में लगे एक फदे में अपना बाया हाथ डाल कर सुखपूर्वक खडे है (आ० ३०४)[४१]। एक नागराज बारीक काम का मुकुट, तथा कमरबद के कई फेंटो से बधी धोती पहने है[४२]। लेण १७ के एक भित्ति-चित्र मे एक राजा भरे काम वाला मुकुट, धोती और करधनी पहने है और उनके कमरबद के छोर नीचे लटक रहे है[४३]।

ईरानी बादशाह की पोशाक

दीवान पर बैठा एक ईरानी राजा एक हलके नीले रग का कोट, जिसके मोरियो, गले और बाजुओ पर काम है, पहने है। यह कसीदे का काम जरा हलके रग का है। टोपी में फीते लगे है और उसके जूते या मोजे कोमल ऊन के बने मालूम पडते है (आ० ३०५)[४४]।

अजटा मे आये मुकुट

१—मुकुट का आकार लम्बोतरा है। इसके अलकारो में हम वृत्त, घुडिया अथवा मनके और फूल देख सकते है (आ० ३०६)[४५]। लेण, १७

२—अनेक चोटियो वाला पगडी से लगा मुकुट (आ० ३०७)[४६]। लेण, १७

३—दो पुरुषो के राजमुकुट—एक लम्बोतरे रत्न जटित मुकुट में मोती की लड़ें लगी

३७—वही, प्ले० ८, १०

३८—वही, प्ले० ८, १०

३९—मार्शल, दि बाग केव्स, प्ले० बी०

४०—हेरिंघम, वही, प्ले० १०, १२

४१—वही, प्ले० १०, १२

४२—ग्रिफिथ, अजटा, भा० १

४३—हेरिंगम, वही

४४—याजदानी, अजटा, भा० १, पृ० ५०, प्ले० ३९

४५—हेरिंगम, प्ले० १६, १८

४६—वही, प्ले० २९, ४८, २४, २६

हैं (आ० ३०८)[४७]। दूसरा मुकुट वृत्तों, अर्धचंद्रो और मोती की लडो से अलकृत है और उसके बगल के उभरे अंश कटावदार हैं (आ० ३०९। लेण, १७

४—राजकुमार के त्रिभुजाकार मुकुट की नक्काशी मे वृत्त, फुल्ले, खिले फूल इत्यादि देख सकते है । मुकुट फीतों से पीछे बधा है[४८]। लेण, १

५—इस मुकुट का आकार टिकरेदार पट्टी की तरह है। पट्टी मे लगे कई कलंगो में दो दिखलायी देते हैं । इनमें एक का आकार तीन आमलको से मडित कूट के समान है । फुल्ले से अलकृत बीच का कलगा त्रिभुजाकार है[४९]। लेण, १

६—त्रिभुज के दोनो पक्ष लहरियादार है । मुकुट पुष्पो और जडाऊ तख्तियो से सजा है और उसके दोनो ओर गोल तख्तिया है। मुकुट पीछे बदो से बधा है[५०]। लेण, १

७—मुकुट का आकार चिपकी टोपी जैसा है जिस पर एक पेचक और फूले कमल के आकार है (आ० ३१०)[५१]। लेण, २

८—ऊची टोपी जैसा मुकुट । यह घुडीदार वृत्तो और खिले पुष्पो से सुसज्जित है[५२]।

घुड़सवारो की वेश-भूषा

अजटा की न० १ लेण मे एक घुडसवार एक योगी से बातचीत करता हुआ बताया गया है (आ० ३११)[५३]। इसका पूरा बाहो वाला कचुक काली बुदकियो से सजा है। ये काली बुदकिया हमे अगरुपक से लिप्त बाणभट्ट द्वारा वर्णित कचुक की याद दिलाती है[५४]। दुपट्टे के सिरे पीछे फडक रहे हैं और बाल एक फीते से बधे हैं ।

अजटा के सिंहल-युद्ध नामक चित्र में घुडसवार आधी बाहो वाले कूर्पासक और जाघिया पहने है । इस कूर्पासक के गले और मुहरियो पर गोटे लगी मालूम पडती है (आ० ३१२)[५५]।

१७ नबर की लेण के एक भित्ति-चित्र में दो घुडसवार नुकीले गले वाले कचुक पहरे दिखलाये गये है । गले पर छाया से पता लगता है कि शायद वह समूर का बना होगा । बायें ओर के अश्वारोही की टोपी का ऊपर मुडा छज्जा कटावदार है तथा उसके चोटी पर एक

४७—वही, प्ले० २६, २८
४८—वही, प्ले० ११, १३
४९—वही, प्ले० १४, १६
५०—वही, प्ले० १५, ७
५१—वही, प्ले० ११, ४९
५२—ग्रिफिथ, अजटा
५३—हेरिगम, वही, प्ले० ६, ८
५४—हर्षचरित, पृ० १६
५५—हेरिगम, प्ले० १७, १९



३०४



३०५



३०६



३०७



३०८



३०९



३१०



३११



३१२



३१३

० २५



३१४



३१५

फूदना है । अपनी वेश-भूषा और आकृति से ये अश्वारोही ईरानी अथवा हूण विदित होते हैं (आ० ३१३)[५६]।

१७ न० की लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में आगे के दो घुडसवारो में बायी ओर का घुडसवार पूरी बाहो वाला आगे से खुला कोट (वारबाण) पहने है । उसका साथी चाकदार कचुक, पाजामा और पूरा बूट पहने है । इसके एक वस्त्र का जिसका कोना बाहर निकला है, क्या रूप था ठीक ठीक नही कहा जा सकता (आ० ३१४)[५७]।

१७ नबर की लेण के मातृपोषक जातक वाले भित्ति-चित्र मे बायी ओर एक घुड सवार एक बहुत चौडे कालर वाला हलके नीले रग का पूरे बाह का कचुक पहरे है । उसका फेंटा कसा हुआ और पैरो में बूट है (आ० ३१५)[५८]।

बाग के एक भित्ति-चित्र में सत्रह घुडसवारो का एक समूह तरह तरह के कचुक पहरे है (आ० ३१६)[५९]। घुडसवारो का सरदार नीली बुदकीदार पीला कचुक पहने है, इसके दाहिने ओर एक दूसरा सवार फूलदार चारखाने का कचुक पहने है। यह कहना कठिन है कि चारखानो का मतलब सकरपारेदार सीयनो से है अथवा अलकार से । अगर इसका मतलब सीयन से है तो इस वस्त्र से शायद वारबाण का तात्पर्य हो सकता है । सरदार के बाये ओर दूसरा सवार एक गेरुए रग का कोट और नीले रग के सूक्ष्म अलकारो से सज्जित पीली टोपी पहने है । आगे के तीन सवारो में एक सवार के कचुक में रूढिगत पक्षियो जैसे अलकार है । घुडसवारो के तीसरी पक्ति के चार सवारो मे एक सवार कोणाकार गले वाला कचुक और पाजामा पहरे है और इसका साथी चूदरी का बना कचुक (पुलकबध) पहने है । पीछे के चार सवारो मे एक सवार पूरी बाह का वारबाण पहने है । सवारो के सिर प्राय नक्काशीदार रंगीन रुमालो से ढके है । यह चित्र हमे बाणभट्ट द्वारा वर्णित श्रीहर्ष के घुडसवारो की याद दिलाता है[६०]।

फीलवानो की वेश-भूषा

फीलवान प्राय अधबहिया मिरज़ई (कूर्पासक), जिसमे कोणाकार गला और मोहरियो पर सादी गोटें लगी रहती थीं, पहनते थे (आ० ३१७)[६१]। पर कभी कभी वे पूरे बाहो वाला कचुक भी पहनते थे (आ० ३१८)[६२]और उनके बाल एक रुमाल अथवा चपकी टोपी से ढके

५६—वही, प्ले० २२, २४

५७—वही, प्ले० ८, १०

५८—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में प्रतिकृति

५९—मार्शल, वही, प्ले० एफ०

६०—हर्षचरित, पृ० २०२

६१—याजदानी, अजटा, भा० २, प्ले० १४

६२—हेरिंगम, वही, प्ले० १९, २१

होते थे । बाग के एक चित्र मे फीलवान सुनहरे धारीदार कपडे से बनी जाघिया पहरे है[६३]।

१७ न० की लेण के एक भित्ति चित्र मे सिपाही छोटी धोतिया पहने दिखलाये गये है (आ० ३१९)[६४] कभी कभी वे पट्टियो से अपने बाल बाध लेते थे (आ० ३२०)। १७ नं० की लेण में सिहलयुद्ध वाले भित्ति-चित्र मे सिपाही धोती अधबहिया मिर्जई (कूर्पासक) जो छाती को ढाकती है और जिसके गले और मोहरियो पर गोट लगी है, पहनते है । उनके सिर रूमाल से ढके होते है (आ० ३२१)[६५]।

पैदल सिपाहियों की वेश-भूषा

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक असिवाहक अधबहिया, घुटनो तक पहुचता हुआ तथा कमरबद से बधा चाकदार कचुक पहने है (आ० ३२२)[६६]। उसी चित्र में एक कुतल-वाहक भी अधबहिया कचुक पहने है । इसका कमरबद दो फेटो मे बधा है (आ० ३२३)। १ न० की लेण में एक सिपाही पत्रो की नकाशी से सज्जित कचुक पहने है[६७]। उसी चित्र मे एक ढाल-वाहक ने एक कधो को ढाकती चादर, जिसमें एक गट्ठी लगी है, पहन रक्खा है ।

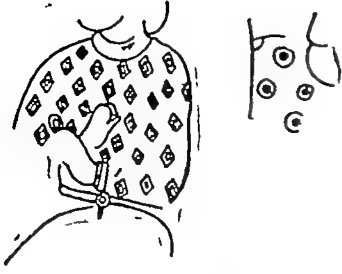
युद्धभूमि में राजाओं और सामंतों की वेश-भूषा

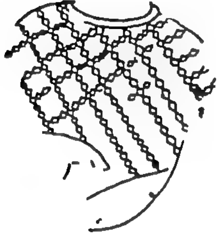
युद्धभूमि में, जैसा कि सिंहलयुद्ध नामक चित्र मे दिखलाया गया है, राजे और राजकुमार अधबहिया मिर्जई (कूर्पासक) और सरपेच से युक्त भारी भरकम पगडिया पहनते है[६८]।

शिकारी और बहलियो की वेश-भूषा

१७ न० की लेण में मातृपोषक जातक नाम के भित्ति-चित्र मे शिकारी और वद्धक छोटी धोती पहने दिखलाये गये हैं, और उनके बाल फीतो से बधे है[६९]। उसी लेण के षड्दंत जातक नामक चित्र मे वद्धक जो किसी जगली जाति के मालूम पडते है पेटीदार जांघिया जिसमे कटार खुसी है, पहनते है (आ० ३२४)[७०]। पकडे ग षड्दत गज को दडवत करते हुए एक वद्धक की चप्पल दर्शनीय है। यह चप्पल आधुनिक पठानी चप्पलो की तरह एडी पर एक तस्मे से बधी है (आ० ३२५)। लगोटी पहरे हुए तथा धनुषबाण और दड से युक्त

६३—मार्शल, बाग, प्ले० जी०
६४—हेरिंगम, वही, प्ले० १७, १९
६५—वही, प्ले० १७, १८
६६—वही, प्ले० २८, ४६
६७—याजदानी, अजटा, १, प्ले० १४
६८—हेरिंगम, वही, प्ले० १७-१९
६९—वही, प्ले० २०, २२
७०—प्ले० २७, २९






३१६



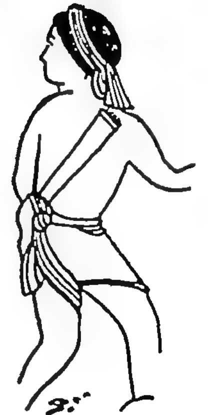
३१७



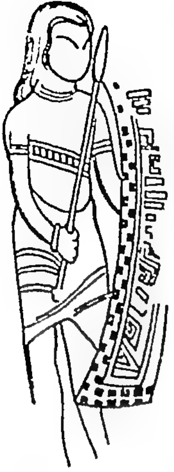
३१८



३१९



३२०



३२१



३२२



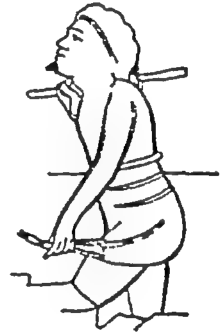
३२३



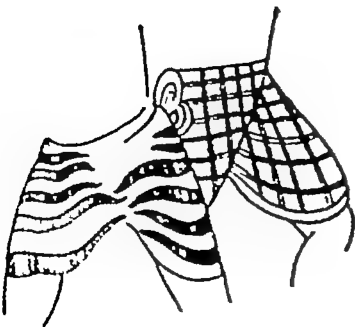
३२४



३२५



३२६



३२७



३२८



३२९

एक ठेठ जंगली आदमी भी उसी दृश्य में दिखलाया गया है (आ० ३२६)। शंखपाल जातक मे दाहिनी ओर एक नाग को रस्सी से घसीटता हुआ शिकारी चारखानेदार लगोटी पहने है (आ० ३२७)[७१]। इसी दृश्य मे एक दूसरे शिकारी की धारीदार लगोटी की धारियो पर तीर के फल अथवा उडती चिडियो के रूढिगत अलकार बने है ।

शिकारी की वेश-भूषा

उच्चपदस्थ मनुष्यो की शिकारी वेश-भूषा दूसरे ही तरह की होती थी। १७ नं० की लेग के एक भित्ति-चित्र मे एक बाणसधान करता हुआ जमीन पर खडा शिकारी कमर तक पहुचता कचुक जिसमें नीचे सुनहरी गोट लगी है, सफेद पाजामा और बूट पहने है (आ० ३२८)। उसका साथी एक चाकदार कचुक जिसके ऊपर किसी दूसरे वस्त्र का कोना देख पडता है पहने है ।

कंचुकी की वेश-भूषा

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में सावले बदन का कचुकी एक बटे कपडे की चपटी पगडी पहने है। पूरे वाह वाले कचुक के ऊपर तिरछे बल एक चादर, जिस पर सेहरे की तरह अलकार बने है, पडी है (आ० ३२९)[७२]।

१ न० की लेण में राजा का स्नान दिखलाते हुए एक भित्ति-चित्र मे एक वृद्ध कचुकी तिकोने गले वाला पूरे वाह का कचुक, जिसका छोर इकट्ठा कर के कमरबद मे खोस लिया गया है, और लाल धारी वाली धोती पहने है (आ० ३३०)[७३]।

मंत्रियो की वेश-भूषा

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे राजमत्री एक सफेद पूरी वाह का कचुक और चादर पहरे दिखलाये गये है। उसका सिर अनावृत है और वह खल्लका किस्म का पूरा वूट पहने है (आ० ३३१)[७४]।

शिवि जातक के एक चित्र मे जहा इन्द्र को अपनी आखे देने के वाद राजा घोर कष्ट में है एक राज पत्री का चित्रण हुआ है । मत्री एक अधवहिया मिर्जई (कूर्पासक) जिसकी मुहरियो पर वृत्त और चारखाने के जाल वने है और जिनमें मोती की झालरे है तया छाती पर तिरछी तरह से चादर डाले है । गले मे एक वैकक्ष्य भी है जिसके दोनो सिरे एक काटे से फसे है । वालो के चारो तरफ एक फूलो से सुशोभित पट्टी है (आ० ३३२)[७५]।

७१—याजदानी, वही १, प्ले० ११
७२—हेरिंगम, वही, प्ले० २५, २८
७३—वही, प्ले० १२, १४
७४—वही, प्ले० २५, २७
७५—वही, प्ले० २९, ४७

सामंतों और उच्चवर्ण नागरिकों की वेश-भूषा

राजाओ का पहरावा तो सादा होता था पर उनके मुकुट काफी कामदार और रत्न जटित होते थे । सामतो और उच्च पदस्थ नागरिको के पहरावे भी इसी तरह सादे होते थे, पर उनमे मुकुट का अभाव होता था । ऐसा लगता है कि मुकुट पहनने के अधिकारी केवल राजे ही थे । सादापन होते हुए भी सामत अपने कपडे खूब सजा कर पहनते थे । हम नीचे इन वस्त्रो के पहरने के भिन्न भिन्न तरीको की समीक्षा करेगे ।

मीरपुर खास (सिंध) से मिले एक मिट्टी के अर्व चित्र मे गुप्त-युग के एक समृद्ध नागरिक की मूर्ति है (आ० ३३३)[७६]। उसने जाघिया के ऊपर धोती इस तरह से पहन रक्खी है कि उसका सामना तो घुटनो तक पहुचता है पर पीछा एडियो के जरा ऊपर । ढीले तौर से वधे कमरवद के दोनो मुक्त छोर वायी ओर लटक रहे है । जाघिये के ऊपर धोती पहनने की इस युग में साधारण प्रथा थी । अजटा की १७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे भी एक नागरिक जाघिया के ऊपर एक छोटी धोती पहरे दिखलाया गया है । वायीं ओर सफाई से वंधे पटके का छोर नीचे लटक रहा है । वैकक्ष्य के दोनो छोर छाती पर एक मोती के काटे से फसे है[७७]।

ईडर रियासत के सामलाजी पहाडी से मिली एक वेसिर वाली शिव की मूर्ति मे एक उच्च गुप्त नागरिक की वेश-भूषा अकित है । धोती घुटनो के नीचे तक पहुंचती है और उसका चुना हुआ छोर सामने लटकता है । कमर पर वटे हुए कमरवद के तीन फदे है। कमरवंद के चुने हुए छोर दोनो ओर देख पडते है (आ० ३३४)[७८]। ईडर से मिली एक दूसरी शिव की मूर्ति एडी तक पहुचती कमर पेटी से ववी है तया एक ढीला कमरवद जांघो को घेरे है (आ० ३३५)[७९]। जोधपुर रियासत के मडोर नामक स्थान से मिले एक स्तभ पर गोवर्धन-धारी कृष्ण एडी तक पहुचती धोती पहने है। कमरपेटी मे एक घुमावदार कमरवद सकर मुद्धी लगा कर दाहिनी ओर वधा है (आ० ३३६)[८०]।

ग्वालियर रियासत के उदयगिरि के पाच नवर के लेण मे वराह अवतार के अर्ध चित्र मे समुद्र की वेश-भूषा तत्कालीन भद्रपुरुष की सी है[८१]। धोती और कधो को ढाकते दुपट्टे के सिवाय वह एक शीर्षपट्ट युक्त पगड़ी भी पहने है जो मथुरा की कुषाण मूर्तियो में आई पगडी का ध्यान दिलाती है । सारनाथ से मिली अवलोकितेश्वर की मूर्ति में हम धोती और

७६—ए० एन० आई० एन० रि०, १९०९-१०, प्ले० ३८, बी०

७७—हेरिंगम, वही, प्ले० ४१, ५५

७८—इनामदार, सम आर्कियोलोजिकल फाइडस् इन ईडर स्टेट, प्ले० १, १, अहमदाबाद, १९३६

७९—वही, प्ले० २, ५

८०—ए० एस० आई० एन० रि०, १९०५-०६, पृ० १३६

८१—एन० रि० आर० डि० ग्वालियर स्टेट, १९२८-२९, प्ले० ५



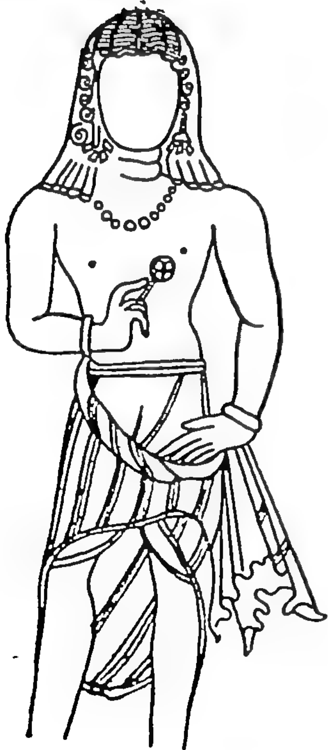
३३०



३३१



३३२



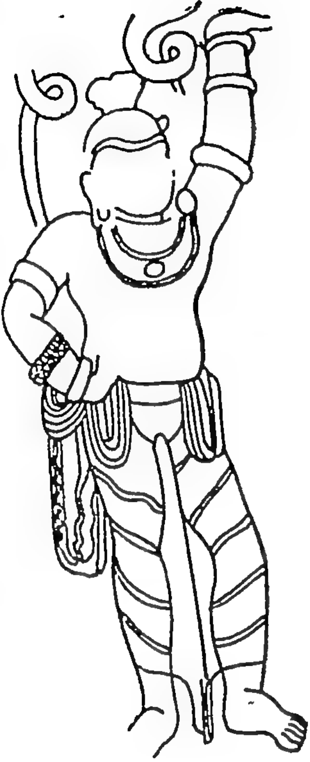
३३३



३३४



३३५



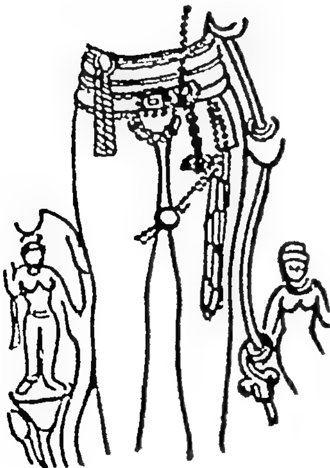
३३६



३३७



३३८



३३९



३४०



३४१

कमरबंद पहनने के आकर्षक ढग को देख सकते है। अवलोकितेश्वर के शरीर का निचला भाग एक चुनी धोती से, जिसकी चुन्दन पैरो के बीच में लटकती है, ढका है। कमर से यह धोती एक रत्न जटित पेटी से बधी है। कमर के ऊपर हम ढीले तरीके से बधे एक रूमाल को देखते है जो दाहिनी बाहु के पास बधा है और जिसके लहराते छोर दाहिने पैर के पास नीचे लटक रहे है (आ० ३३७)[८२]।

१७ न० की लेण में सारिपुत्रप्रश्न नामक एक भित्ति-चित्र मे एक सामत या राजा का जो उच्च पदाधिकारी बायी ओर दिखलाया गया है, खडी धारियो वाली धोती और छाती को ढकती हुई चादर जो बायें कधे पर डाल दी गयी है पहरे है। इसकी चक्करदार छोटी पगडी के एक तरफ सोने का फुल्ला लगा है (आ० ३३८)[८३]।

सारनाथ से मिली सातवी सदी के अतकी मजुश्री की मूर्ति घुटने के नीचे तक पहुचती धोती, जिसका एक भाग चुन कर बायी ओर खुसा है, पहरे है। एक भारी करधनी कमर में है। कमरबद का एक बटा हिस्सा एक चूडी से निकाल कर दाहिनी जाघ पर लटका दिया गया है (आ० ३३९)[८४]।

वादको की वेश-भूषा

गुप्तकालीन भूमरा के मदिर में अर्ध चित्रो मे एक नरसिंहा बजाने वाला कुलाहनुमा टोपी, जिसकी चोटी जरा आगे झुकी है, घुटनो के नीचे पहुचता चाकदार कचुक और पाजामा पहने है (आ० ३४०)[८५]। हुडुक्क बजाता हुआ एक दूसरा वादक चोटीदार टोपी, बामदार कोट और पाजामा पहने है (आ० ३४१)। एक गायक कूर्पासक और सकच्छ धोती पहने है (आ० ३४२)। एक शहनाई वजाने वाला हलकी चोटीदार टोपी पहने है (आ० ३४३)। ढोल वजाने वाले की टोपी गोल है (आ० ३४४) और नर्तक की टोपी झालरदार है (आ० ३४५)।

१७ न० की लेण के एक भित्ति चित्र मे आकाशचारी एक गधर्व सफेद और भूरी रंग की धारियो वाली धोती और भूरी और हरी धारियो से सज्जित कमरबद, जो धोती से मिलान खाता है, पहरे है[८६]। उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र मे एक दूसरा गवैया सफेद जमीन पर हरी लहरिया वाली धोती पहने है[८७]।

८२—साहनी, केटलाग ऑफ दि म्यूजियम ऑफ आर्कियोलोजी एट सारनाथ, प्ले० १३ बी०, पृ० ११८

८३—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५६

८४—साहनी, वही, पृ० १२०-१२१, प्ले० १३ सी०

८५—बेनर्जी, दि शिव टेंपिल एट भूमरा, प्ले० १०, कलकत्ता, १९२४

८६—हेरिंगम, प्ले० २, २

८७—वही, प्ले० २

एक वीणावादक का, जो अपनी वीणा कंधे पर रक्खे है, पहरावा आकर्षक है। वह औरो की तरह धोती, कमरवद और पेटी पहने है। एक रूमाल गले से वधा है। कमरवद और रूमाल के छोर हवा में फड़फड़ा रहे है। दो जूडो में वधे वालो में शेखरक लगे है (आ० ३४६)[८८]।

द्वारपालो की वेश-भूषा

गुप्तयुग के द्वारपाल या तो सिले हुए कपड़े अथवा अपने कपडों को सवार सुधार कर पहिनते थे। उदयगिरि के ६ न० की लेण में द्वारपाल एक धोती, जिसका चुना हुआ भाग खुसा है और जो नाभि के नीचे कमरवद और सकर मुद्धी दार पेटी से वधी है, पहरे है। कमरवद के दोनो छोर कमर पर पखे के आकार में सुसज्जित है (आ० ३४७)[८९]।

अजटा के भित्ति-चित्रो में द्वारपाल प्राय सिले कपड़े पहने दिखलाये गये है। न० १ की लेण के एक भित्ति-चित्र मे द्वारपाल सफेद और काले चारखानो वाले कपडे से वना पूरे वाह का कचुक पहने है जो कमर से एक चौडी पेटी से वधा है (आ० ३४७)[९०]। उसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक द्वारपाल गोल टोपी (आ० ३४८)[९१] जिसका छज्जा उलटा हुआ है और एक कसी भर वाहो वाला हलके रग का फूलदार कोट पहने है। याजदानी के मत से कोट का कपडा किखाव हो सकता है[९२]। दूसरे न० की लेण मे एक भित्ति चित्र में द्वारपाल कमर के नीचे पहुचता पूरे वाह का कचुक, जिसके किनारों पर कसीदे का काम है, (आ० ३४९)[९३] पहने है।

राजभृत्योकी वेश-भूषा

अजटा के भित्ति-चित्रो में राजभृत्य सिले कपडे अथवा मादी धोती पहने दिखलाये गये है। ७ न० की लेग के एक भित्ति-चित्र में वुद्ध के वायी ओर खड़ा एक सेवक एक चारखानेदार धोती पहरे है (आ० ३५०)[९४]। १ न० की लेण के अवलोकितेश्वर वाले प्रसिद्ध भित्ति-चित्र में फूलचंगेर लिए हुए सेवक गहरे भूरे रंग की धारियो वाला कचुक और एक सुदर मुकुट पहने है (आ० ३५१)[९५]। इसी लेण के एक दूसरे भित्ति-चित्र में एक सेवक घुमावदार नक्काशी से सज्जित कचुक पहने है। अलकार पट्टियो मे वने है और उनमे फुल्ला

८८—वही, प्ले० ३६, ४०

८९—एन० रि० आ० डि० ग्वालियर स्टेट, १९२८-२९, केव ६, प्ले० वी०

९०—याजदानी, अजटा, १, प्ले० १

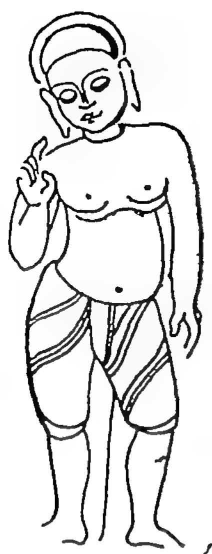
९१—वही, प्ले० ३५

९२—वही, पृ० ४२, फु० नो० २

९३—याजदानी, अजटा, भा० २, प्ले० २५, पृ० २५

९४—हेरिंगम, वही, प्ले० ४२, ५६

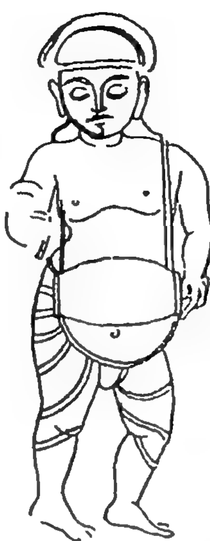
९५—वही, प्ले० १०, १२



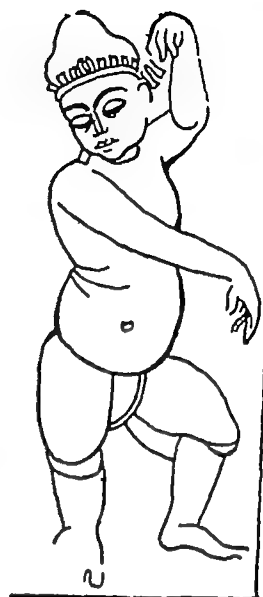
३४२



३४३



३४४



३४५



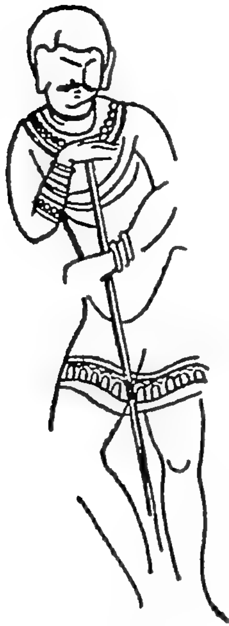
३४६



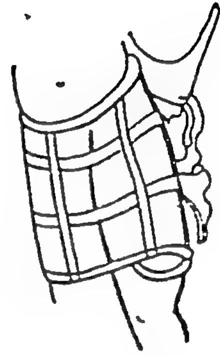
३४७



३४८



३४९



३५०



३५१



३५२



३५३

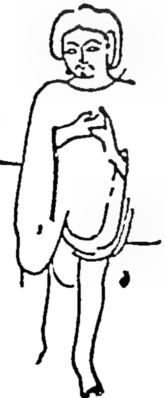


३५४



३५५



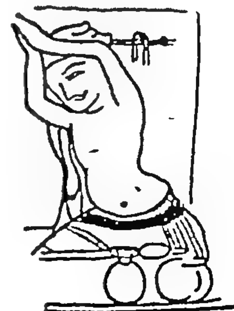


३५६



३५७

३५८



३५९



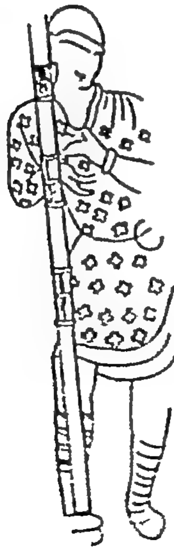
३६०



३६१



३६२



३६३



३६४

मूर्तियो में भी हुआ है । मथुरा म्यूजियम मे एक स्तभ पर उत्कीर्ण नद और सुदंरी की कथा में एक स्त्री विदूषक के गले में दुपट्टा डाल कर खीचती दिखलायी गयी है ।

१ न० की लेण के एक दूसरे चित्र मे धोती और कचुक पहने विदूषक वीणा वजा रहा है । एक फूलो से सजी गोल टोपी पहरे चेटी मजीरा वजा रही है (आ० ३६५) ।

मदारी की वेश-भूषा

१ न० की लेण के एक भित्ति चित्र मे एक मदारी नीली और हरी धारियो के चारखाने वाली छोटी धोती, और छाती पर बधा चारखाने दार दुपट्टा पहने है (आ० ३६६)[१११] ।

विदेशियों की वेश-भूषा

जैसा हम पहले कह आये है गुप्त-युग मे भारत और एशिया के और देशो से विशेष-कर चीन और ईरान से सास्कृतिक सम्बन्ध बढा- जिसका उदाहरण हम अजटा के भित्ति-चित्रो मे ईरानियो के चित्रो से पा सकते है । मध्य एशिया की भारतीय औपनिवेशिक सस्कृति का, जिस पर भारत और चीन दोनो देशो की स्पष्ट छाप है, अध्ययन हम मध्य एशिया के भित्ति-चित्रो और मडल चित्रो से कर सकते है । इन चित्रो मे अजटा के चित्रो की स्पष्ट छाप है । यह स्पष्ट है कि भूस्थापको और यात्रियो द्वारा इस देश की सस्कृति मध्य एशिया मे पहुची और वहा की सस्कृति यात्रियो , व्यापारियो तथा विजेताओ द्वारा इस देश मे आयी । मध्य एशिया का प्रभाव हम इस युग में भारतीय वेश-भूषा पर साफ तरह से देखते है। यह प्रभाव कोई नगण्य नही था, क्योकि अजटा के भित्ति-चित्रो में बहुधा हम टोपिया, पाजामे, कचुक और पूरे बूट देखते है जो इस देश में मध्य एशिया से आये ।

हम इस पुस्तक के आरभिक अध्यायो मे इस बात पर जोर देते आये है कि वैदिक युग मे भी सिले वस्त्रो का व्यवहार होता था, पर इस देश की गरम आवहवा के अनुकूल साधा-रणत लोग धोती, दुपट्टे और साडी जैसे सादे वस्त्र पहरते थे । हम यह भी कह आये है कि किस तरह ईसा पूर्व तीसरी सदी से ले कर चौथी सदी तक सिले कपडे विशेषकर नौकर, चाकर, सिपाही, शिकारी और विदेशी इत्यादि ही पहनते थे । ऐसा लगता है कि ईसा की पहली शताब्दी मे कुषाण राज्य की स्थापना के बाद मध्य एशिया के सिले वस्त्रो का प्रभाव इस देश में विशेष तरह से पडा और 'यथा राजा तथा प्रजा' की रीति के अनुसार लोग विदेशी वस्त्रो को भी अपनी वेश-भूषा मे स्थान देने लगे । हमारे इस मत का पोषण गुप्त सिक्को पर आयी राजाओ की वेश-भूषा मे होता है । लेकिन अजटा के भित्ति-चित्रो से पता लगता है कि दक्षिण भारत मे सिले कपडे नौकर, चाकर, सिपाही और दासियो इत्यादि तक ही सीमित रहे । अजटा के भित्ति-चित्रो में कुछ विदेशियो की वेश-भूषा भी आई है, जिसका हम यहा प्रसगवश वर्णन कर देना आवश्यक समझते है।

१११—याजदानी, वही, प्ले० १० बी०

मध्य एशिया वालों के वस्त्र

१७ वी लेण के सारिपुत्र प्रश्न नामक एक भित्ति-चित्र मे[११२] ईरानी नस्ल के बहुत से विदेशी एक साथ दिखलाये गए है । चित्र के बाये ओर एक विदेशी हाथी पर सवार कचुक पहने है जिसके गले मुहरियो और आगे पर कसीदे का काम है । गले और मुहरियो पर गोटे लगी है, जिन पर दाते और चारखाने जैसे अलकार है (आ० ३६७) । उसी चित्र मे एक घुड-सवार नुकीले गले वाला कचुक पहने है, जिसके दोनो ओर दतालकार से सजी पट्टिया लगी है। बाहो पर लगी पट्टियां सेहरे और पत्तियो से अलकृत हैं (आ० ३६८) । इसी चित्र मे एक सिपाही तिकोने गले वाला कचुक पहने है जिसकी बाहो की पट्टिया शायद समूर की बनी थी। इसका साथी सिपाही एक गोल गले वाला कचुक पहने है (आ० ३६९) । एक मोटा ताजा विदेशी सेवक कुलाह और धारीदार पगडी पहने है । उसके कचुक का गला कोणाकार है जिसके दोनो ओर दातो और लहरियों से सुसज्जित पट्टिया लगी है। बाहो की पट्टिया भी दाते और बिदुओ से सजी है । कमरबद कई फेटो से बधा है (आ० ३७०) ।

२ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक विदेशी, जो शायद ईरानी नस्ल का है, फीतेदार गोल टोपी पहने है। उसके कचुक और पाजामे कसे है और मोजे धारीदार है । ऐसा प्रतीत होता है कि उसके गले मे रूमाल बधा था, क्योकि इसके किनारे पीछे फडफडाते दिखलायी देते है (आ० ३७१)[११३] । इसी लेण के एक दूसरे चित्र मे एक विदेशी का अधो-वस्त्र डोरिया और हंस के अलकारो से सुसज्जित है[११४] ।

अजटा के तथा कथित राजदूत वाले दृश्य मे सीरियन लोगो की वेश-भूषा

विदेशियो की वेश-भूषा में सब से विचित्र वेश-भूषा हमे अजटा की पहली लेण के एक भित्ति चित्र से, जिसकी पहचान ईरानी प्रणिधि वर्ग कह कर की गयी है, मिलता है । विद्वानो में इस चित्र की पहचान में काफी मतभेद है । कुछ लोग तो इस चित्र मे सातवी शती के आरभ मे ससानी बादशाह खुसरो द्वारा चालुक्य राज पुलकेशी के पास भेजे गए प्रणिधि वर्ग का चित्रण देखते हैं । दूसरो का विचार है कि अजटा के धार्मिक चित्रो मे इस तरह के लौकिक चित्र का होना सभव नही है और इसलिए इस चित्र का सबध किसी जातक मे होना चाहिए। जो भी हो, इन दोनो विचार वालो ने यह माना ही है कि इस दृश्य मे उपायन देते हुए लोगो की वेश-भूषा ठेठ विदेशी है । हमारी समझ में इस चित्र का एक जातक से सबध होने की राय ठीक है । एक इसी तरह का अर्ध चित्र अमरावती में आया है जिसकी पहचान श्री शिवराम-मूर्ति ने वेस्सन्तर जातक के राजा बन्धुम वाले प्रकरण मे की है[११५] । अमरावती के इस अर्ध चित्र

११२—हेरिंगम, वही, प्ले० २२, २८

११३—याजदानी, अजटा, भा० २, प्ले० ११, पृ० ९

११४—वही, प्ले० २०, पृ० १९

११५—शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास म्यूजियम, प्ले० २५, पृ० २३४-२३५


३६५


३६६


३६७


३६८


३६९


३७०



३७१



३७२ ए०



३७२ बी०



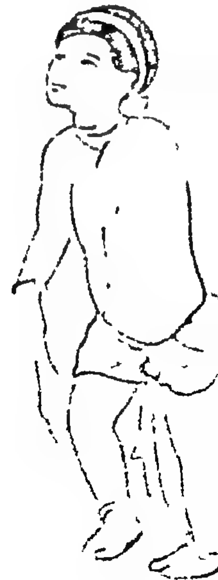
३७३







३७६



३७७

में राजा सिंहासन पर बैठे हैं और उनके अगल बगल दो चामर-ग्राहिणिया और पीछे एक पखे वाला है । बायी ओर एक मोढे पर राजमहिषी दासियो से घिरी बैठी है । राजा के सामने कचुक, पाजामा, कमरवद और बूट पहने हुए चार विदेशी घुटने टेक कर उपायन भेट कर रहे है। दाहिनी ओर सभासदो की भीड मे हम इन विदेशियो के नेता द्वारा राजा को मोती की माला भेट करते देख सकते है। राजद्वार के पास हम एक हाथी और घोडा तथा एक विदेशी को खडे पाते है[११६] । अजटा में भी तथाकथित ईरानी प्रणिधि वर्ग वाला चित्र अमरावती वाले अर्ध चित्र की प्रतिकृति है । अजटा के भित्ति-चित्र में राजद्वार के पास एक विदेशियो का गिरोह है जिसमे से दो विदेशी उपायन लिए हुए राजसभा के अदर दाखिल हो गए है। राजसभा सभासदो से भरी है और उनमे हम तीन विदेशियो को देख सकते है । सभा के बीच में सिंहासन पर राजा बैठे है और उनके पीछे पखे और चमर लि हुए दासिया खड़ी है, बायी ओर और भी बहुत सी सेवक सेविकाए है[११७] । अजटा के इस चित्र का अमरावती के अर्ध चित्र से इतना मेल है कि हम यह कह सकते है कि दोनो दृश्य एक ही प्रकरण को व्यक्त करते है। यह सभव है कि इन दोनो दृश्यो की सजावट तत्कालीन राजसभाओ से ली गयी हो जिनमे समय समय पर विदेशी प्रणिधि वर्ग और व्यापारी उपायन ले कर आते थे । बहुत सभव है कि अमरावती के अर्ध चित्र के विदेशी सिकदरिया के रहने वाले यूनानी व्यापारी हो जिनका दूसरी सदी में भारत के साथ घनिष्ट व्यापारिक सवध था ।

अजटा के भित्ति-चित्र मे[११८] सामने खडा हुआ विदेशी राजा को एक मोती की माला भेट दे रहा है (आ० ३७२ ए० बी०)। याजदानी के कथनानुसार वह धारीदार कपडे की बनी नुकीली टोपी और उसी कपडे का बना कोट पहने है। लेकिन प्लेट से तो पता लगता है कि वह दो कपडे यानी एक लबी धारीदार कमीज और एक कोट, जिसका गला कोणाकार है, पहने है । इसके दाहिने हाथ के पास दो कबा बाधने के बद है। उसके पहरावे मे कमर पेटी नही है। कमर के नीचे की जमीन सफेद है और कोट कमीज की धारियो का पता नही चलता । यह सभव है कि सफेद जमीन पाजामे की द्योतक है । इन विदेशियो के

११६—याजदानी, अजटा, भा० १, पृ० ४६-४८

११७—राजा बधुम और उनकी कन्याओ की कथा (जातक, ६, २४७) इस तरह दी गयी है । बुद्ध विपस्सी के युग में बधुमती के राजा बधुम के पास एक राजा ने उपायन भेजे जिनमें सोने की कीमती माला और चदन थे । राजा ने चदन तो अपनी बडी कन्या को दे दिया और छोटी को सोने का हार। राजा की अनुमति से उन दोनो ने चदन और हार विपस्सी को भेंट कर दिया । विपस्सी से बडी कन्या ने तो दूसरे जन्म में बुद्ध-माता होने का वर मागा और छोटी कन्या ने यह वर मागा कि वह दूसरे जन्म में गले पर सोने के हार के सहित जन्म ले और वह उसके बुद्धत्व प्राप्त करने तक उसके गले में बना रहे । विपस्सी के आशीर्वाद से दोनो की मनोकामनाए पूरी हुई ।

११८—याजदानी, वही, पृ० ४६-४७

कोट और कमीज पहनने का पता बीच में खडे हुए एक विदेशी की वेश-भूषा से ठीक ठीक चल जाता है। वह खुले गले का एक हरा कवा पहने है। खुले गले के बीच से कमीज की धारियां साफ साफ देख पडती है। घुटनो तक पहुचते हुए कोट में जहा उनमें चाक पड जाती है, उसके बीच से हम घुटनो को ढकते हुए नीचे जाते पाजामे को देख सकते है। टोपी की चोटी पर एक फूदना है। उपायन की थाली लिए हुए तीसरे विदेशी के पहरावे में कोई खास बात नही है। दाहिनी ओर द्वार के भीतर घुसते हुए विदेशी दिखलाये गये है। सामने वाला विदेशी तो साधारण चोटीदार टोपी, घुटनो तक पहुचता कवा, पाजामा और नोकदार चोटी वाले बूट पहने है। उसकी दोहरी पेटी से तलवार लटक रही है।

अब प्रश्न उठता है कि उपरोक्त विदेशी किस देश के वासी है? अजंटा के इस भित्ति-चित्र में ईरानी प्रणिधि-वर्ग का अकन मानने वालो की राय से तो ये ईरानी होने चाहिए। याजदानी इनको तुर्की नस्ल का मानते है[११९]। लेकिन इन विदेशियो की शारीरिक गठन, जिसमें सीधी समुन्नत घोणा, सुविभाजित अगकद और खरहरी दाढी मुख्य है, मध्य एशिया के निवासियो के शारीरिक गठन से जिसका अजंटा के चित्रो मे अनेक बार प्रदर्शन हुआ है, नही मिलती। ये ईरानी जरा भारी शरीर वाले होते थे और उनके बाल बडे गझिन होते थे। उनके कपडे भी मोटे ऊनी कपड़ो के बने होते थे। इन सब बातो को देखते हुए यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र में आये विदेशी ईरान अथवा मध्य एशिया के निवासी तो नही है। इनके नुकीले अग शायद इनकी सामी नस्ल के द्योतक है। इन्हे जल्दी मे हम अरब भी कह दे सकते है, क्योकि पश्चिमी भारत के साथ अरबो का व्यापारिक सबध बहुत प्राचीन काल से चला आया है। लेकिन ठीक तौर से विचार करने पर हमें पता लगता है कि यह सभव नही है क्योकि अरब पहनावा जैसा कि हमें प्राचीन अरब सिक्को और मूर्तियो से पता लगता है एक ढीली कमीज और सिर पर बधे रूमाल का था, और प्राचीन अरब चोटीदार टोपी कभी नही पहनते थे। इन विदेशियो के ऊपर पर प्रकाश डूयरा यूरोपास से मिले एक भित्ति-चित्र मे कोनोन और उनके परिवार की पोशाक से पडता है। डूयरा यूरोपास मध्य अफ़ात नदी के दाहिने किनारे पर, अन्तिओख और सेल्युसिया के बीच में सिल्यूकस द्वारा २८० ई० पू० मे निर्मित मेसीडोनियन उपनिवेश था जो बाद में क्रमश रोमनो, पार्थियनो और ईरानियो के अधिकार मे आता रहा[१२०]। कोनोन और उनके परिवार की पोशाक में चोटीदार टोपी पूरे बाह की लबी कमीज और जूते है। कोनोन की दाढी खरहरी है और उनके शरीर के अवयव सामियो की तरह नुकीले। श्री रोस्तोवत्जेफ[१२१]

११९—वही, पृ० ४७

१२०—प्रोसीडिंग्स ऑफ दी ब्रिटिश एकेडमी, भा० १९, पृ० ३७०

१२१—दि सोशियल एंड एकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ दी हेलेनिस्टिक वर्ल्ड भा० १, पृ० ४०७, ऑक्सफोर्ड, १९४१



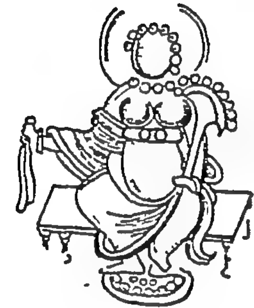
३७८



३७९



३८०



३८१



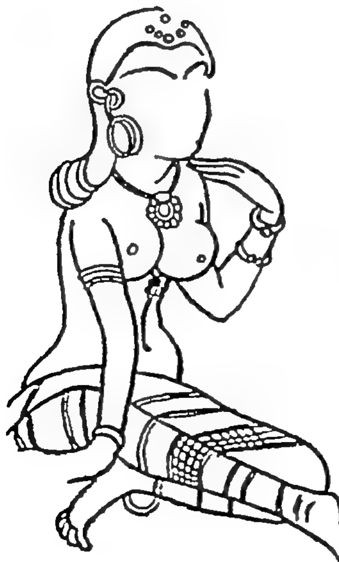
३८२



३८३



३८४



३८५



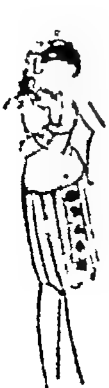
३८६


३८७


३८८


३८९


३९०


३९१


३९२


३९३


३९४


३९५

इस पोशाक को यूनानी-सीरिया (शायद कुछ ईरानी पुट के साथ) का मेल मानते है। अजटा के तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र मे विदेशियो की पोशाक कोनोन की उपरोक्त पोशाक से बहुत कुछ मिलती है। लेकिन डूचरा यूरोपास के भित्ति-चित्र पहली शताब्दी ई० स० के है और अजटा के लेण न० १ के चित्र सातवी शताब्दी ईस्वी सन् के। समय के इस बडे अतर के कारण हम दृढतापूर्वक किसी राय पर नही पहुच सकते। फिर भी यह तो निश्चित है कि पूर्वी देशो मे पाच सौ वर्षों के बीच पहरावे मे कोई गहरे फेरफार होने की सभावना कम है। इसलिए हमे यह कहने मे कोई झिझक न होनी चाहिए कि अजटा मे तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग वाले चित्र मे सीरिया अथवा शाम के व्यापारी थे।

विदेशी टोपियो का वर्णन हम विदेशी वेश-भूषाओ के साथ साथ करते आये है, फिर भी कुछ खास तरह की टोपियो का वर्णन हम नीचे कर देते है, यथा —

(१) एक कुलाहनुमा टोपी जिसकी चोटी आगे झुकी है और जिसके दोनो फटके ऊपर उठे है (आ० ३७३)[१२२], (२) लट्टूदार चोटी और लहरियेदार किनारे वाला खोद (आ० ३७४), (३) दुमचीदार कुलाह (आ० ३७५)।

बच्चो का पहरावा

अजटा के भित्ति-चित्रो मे राजा रानियो की सेवा करते और खेलते हुए बच्चे दिखलाये गये है। १७ न० की लेण के माता पुत्र नाम के प्रसिद्ध भित्ति-चित्र में पुत्र धारीदार धोती और छन्नवीर पहने है। बालो को यथा स्थान रखने के लिए फीतों का उपयोग हुआ है (आ० ३७६)[१२३]। उसी लेण मे एक दूसरी जगह एक लडका धोती और पटका पहने दिखलाया गया है और उसके बाल फीते से बधे है (आ० ३७७)[१२४]।

उसी लेण के एक दूसरे चित्र मे (आ० ३७८)[१२५] एक हाथ में पीकदान लिए हुए लडका जाघिया और कचुक पहने है और उसके बाल फीते से बधे है। न० १ की लेण के एक गुफा चित्र में एक बालक कभी जाघिया, पूरे पैर के बूट और फूलो से सजी टोपी पहने है (आ० ३७९)[१२६]। उसी चित्र मे एक लडका छन्नवीर और कमरपेटी पहने है (आ० ३८०)

प्रतीत होता है कि बच्चे बडे चाव से टोपी पहनते थे। एक भित्ति चित्र मे लड़का

१२२—ग्रिफिथ, अजटा, भाग १

१२३—हेरिंगम, वही, प्लेट ६, ७

१२४—वही, प्लेट ५, ६

१२५—वही, प्लेट ३, ८

१२६—प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम की एक प्रतिकृति में

चक्करदार टोपी पहने दिखलाया गया है[127]। लड़के धारीदार बूट अथवा मोजे भी पहनते थे[128]।

गुप्त-युग मे रानियो और दूसरी स्त्रियो की वेश-भूषा

समुद्रगुप्त के साधारण भाति के सिक्को के पट पर लक्ष्मी देवी एड़ी तक पहुचती साड़ी और घुटने तक पहुचता पूरे बाह का कचुक पहनती है, स्तनो के नीचे एक पट्ट बधा है जिसकी मुद्धी बायी ओर दिखलाई गयी है। उनके कधे चादर से ढके है (आ० ३८१)[129]। धनुर्धारी भाति के सिक्को मे लक्ष्मी धोती और अधबहिया कूर्पासक पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८२)[130]। कोसम मे मिली एक गुप्तकालीन शिवपार्वती की मूर्ति मे एक जालीदार टोपी, जिसके दोनो ओर फुल्ले है, पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८३)[131]

देवगढ से मिली नद-यशोदा की मूर्ति मे यशोदा का पहरावा आजकल के वजारो की पोशाक जैसा है। वह सिर को ढकती हुई एक चादर, भरी बाह का कुरता जिसके बायी ओर घुडी है और लहगा पहने दिखलायी गयी है (आ० ३८४)[132]। यह वेश-भूषा भारतीय कला मे सर्व-प्रथम प्रदर्शित की गयी है और बहुत सम्भव है कि जाट इस पहिरावे को पाचवी या छठी शताब्दी मे मध्य एशिया से यहा लाये। इतने दिन बीत जाने पर भी जाट, वजारे लंबाटी इत्यादि इस पहिरावे को अपनाये हुए है।

अजंटा के भित्ति-चित्रो मे रानिया एड़ी तक पहुचती साड़ी या धारीदार घघरी पहनती है (आ० ३८५)[133]। दर्पण मे अपना मुख देखती हुई एक राजकुमारी तीनलड़ी करधनी और सुनहरे किनारो वाले कमरबंद से बधी साड़ी पहने है (आ० ३८६)[134]। उसकी एक सेविका पेटी मे बंधी साटी पहने हुए है और उसके कमरबंद के छोर पीछे लटक रहे है। इसी चित्र मे एक चामरग्राहिणी की साड़ी की सिलवटे बड़ी सुदरता से बतायी गयी है। उसमे कमरबंद की मुद्धी पीछे बधी है। एक दूसरी जगह एक रानी धारीदार घघरी और टोपी अथवा पगड़ी पहने है (आ० ३८७)[135]।

कभी कभी अजटा के भित्ति-चित्रो मे रानिया और कुलीन स्त्रिया सिले कपड़े भी

127—हैरिंगम, वही, प्लेट० ३, ७
128—याजदानी, वही, भा० १, प्लेट० २४ बी०, पृ० [illegible]
129—एलन, वही, प्लेट० १, १–९
130—वही, प्लेट० ३, १
131—आ० एस० आई० एन० रि०, १९१३-१४ प्ले० ७० ६
132—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल गुप्त आर्ट, प्लेट० १, २, लखनऊ १९४७।
133—हैरिंगम वही प्लेट० ३, ८
134—वही, प्लेट० ५, ६
135—वही, प्लेट० २३, २९ और ३१

पहने दिखलायी गयी है । १ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक रानी महीन कपड़े की बनी बुदकीदार चोली पहनती है[१३६] । उसी लेण के पद्मपाणि वाले चित्र मे एक राजकुमारी झीनी मलमल की चोली और[१३७] एक छोटी घघरी जिसके खानो में पक्षी और सीढिया बनी है और जिसके एक मध्य के खाने में लहरिया बनी है, पहने है। रानी के सिर पर कामदार टोपी अथवा मुकुट है (आ० ३८८)[१३८] ।एक दूसरी जगह एक रानी हल्के रग का कचुक, जिसके किनारेपर जवाहिर बने है,पहने है (आ० ३८९)[१३९] । १ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक चौकी पर बैठी रानी धारीदार घघरी स्तनपट्ट और चादर पहने है (आ० ३९०)[१४०] । उसी लेग के एक दूसरे चित्र मे एक स्त्री धारीदार घघरी, जिसके ठीक बीच में फुल्लो से सजी एक गोट लगी है, पहने है (आ० ३९१)[१४१] । २ न० की लेण के एक भित्ति चित्र मे एक स्त्री महीन कपडे की चोली और किनारेदार चडातक पहने है (आ० ३९२)[१४२] ।

दासियों की वेश-भूषा

जैसा हम ऊपर देख चुके है रानियो और उच्चकोटि की स्त्रियो की वेश-भूषा गहनो को छोड कर काफी सादी होती थी, पर आश्चर्य की बात तो यह है कि दासियो की वेश-भूषा में हम काफी चडक भडक पाते है । दासिया मामूली तौर से साडी कमरबंद और कमरपेटी पहनती है[१४३] , पर अनेक दासिया कसीदे के काम की हुई घघरिया और कंचुक भी पहनती है।

अजंटा के चित्रो में दासिया अक्सर घुटनो तक पहुचता पूरे बांह का सफेद कंचुक पहनती है (आ० ३९३)[१४४] । वे कभी कभी दुहरे जाकेट भी पहनती है[१४५] । १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री कचुक के ऊपर जाकेट पहने है जो चूदरी से बना है और सामने से खुला है, पूरे बाह का हरा कचुक आगे से बंद है (आ० ३९४) । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक दासी बुदकीदार छोटे बाह की चोली पहरे है जिसका आगा घुटनो तक पहुचता है और जिसके ऊपर एक चूदरी का टुकडा पीठ पर बधा है । इसका सिर रुमाल से ढका है (आ० ३९५)[१४६] । उसी लेण के एक चित्र में एक चामरगाहिणी नीचे गले का

१३६—याजदानी, वही, भा० १, प्लेट० १७, पृ० २१

१३७—वही, प्लेट० २४, हेरिंगम, वही, प्लेट० ११, १३, चित्र मे चोली नही दिखाई देती।

१३८—वही

१३९—याजदानी, वही, भा० १, प्लेट० ६ बी०

१४०—हेरिंगम, वही, प्लेट० १४, १६

१४१—वही, प्लेट० १५, १७

१४२—याजदानी, वही, भा० २, प्लेट० २१, पृ० २०

१४३—हेरिंगम, वही, प्लेट० ५, ६, लेण १७

१४४—याजदानी, वही, भा० १, प्लेट० ६ बी

१४५—वही, प्लेट० १८

१४६—वही, प्लेट० १७

डोरीदार फ्राक की तरह कपड़ा पहने है (आ० ३९६)[१४७]। उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक चामरग्राहिणी हंस दुकूल का बना कपड़ा पहने हुए है (आ० ३९७)[१४८]। पद्मपाणि वाले चित्र में बोधिसत्व के पीछे खड़ी हुई दासी जो विदेशी नस्ल की मालूम पड़ती है, लंबा कंचुक और विचित्र तरह की कुलाहनुमा टोपी जिसके चार कलीदार फटके ऊपर मुड़े हुए हैं, पहने है (आ० ३९८)[१४९]। चामरग्राहिणियां साड़ी भी पहनती थीं। १ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में राजसिंहासन के नीचे एक चामरग्राहिणी साड़ी, जिसका एक हिस्सा मोड़ कर उसने कंधे पर चादर की तरह डाल रक्खा है, पहने है[१५०]। नं० १७ की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक चामरग्राहिणी गले में रूमाल, धारीदार जांघिया और दुपट्टा, जिसके छोर लहरा रहे हैं, पहने है[१५१]। अजंटा के काशिराज की सभा वाले चित्र में राजा के पीछे खड़ी चामरग्राहिणी एक फूल से सुशोभित ऊंची टोपी पहने है (आ० ३९९)[१५२]। उसी चित्र में बायीं ओर मंत्री के पीछे एक चामरग्राहिणी कुलाहनुमा टोपी और छाती ढंकती हुई एक पतली चादर पहने है (आ० ४००)

मध्यवर्ग की स्त्रियों की वेश-भूषा

चामरग्राहिणियों की वेश-भूषा के उपरोक्त वर्णन से यह न समझ लेना चाहिए कि यह वेश एक खास तरह की सेविकाओं तक ही सीमित था। यह वेश-भूषा हर तरह की राज सेविकाओं में प्रचलित था और विचार करने पर यह पता चलता है कि गुप्त-युग में यही मध्य वर्ग के स्त्रियों की वेश-भूषा थी। राजमहल से संबंधित स्त्रियों की वेश-भूषा नीचे दी जाती है:—

नं० २ की लेण में चंपेय जातक के एक चित्र की पृष्ठिका में खड़ी एक स्त्री पतले तथा फूलदार कपड़े का बना कंचुक पहने है। दुपट्टे पर के अलंकार का प्रतिकृति में तो पता नहीं चलता पर मूल चित्र में बिल्कुल स्पष्ट है[१५३]।

ईरानी नस्ल की दासियां

१ नं० की लेण के एक मौज मजे के दृश्य में दाहिनी ओर खड़ी एक दासी अपने स्वामी को शराब पिला रही है। वह एक समूर के किनारे वाली लाल टोपी, जिसकी चोटी में पर लगे हैं, पहने है। उसका पूरे बांह का लंबा कंचुक लाल रंग का है और उसके गले, मोहरियों और

१४७—वही, प्लेट १३
१४८—वही, प्लेट २८
१४९—वही, प्लेट २८ c, नं० १
१५०—हेरिंगम वही, प्लेट ३८
१५१—वही,आले०, प्लेट १, ११
१५२—यजदानी, वही, प्लेट २३
१५३—यजदानी, वही, भा० १, प्लेट ३८ बी०, पृ० ४१ एफ० एन० १, केव २



३९६



३९७



३९८



३९९



४००



४०१



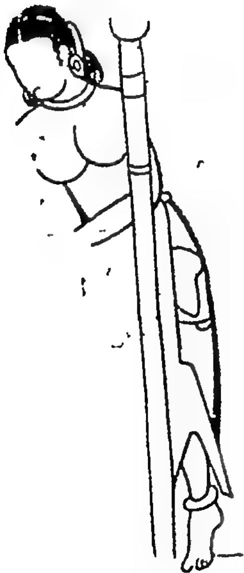
४०२



४०३ ४०४



४०५



४०६



४०७



४०८ ४०९

कधो पर कसीदे का काम है । लबे और सफेद घाघरे में हल्के नीले रग की चूदनदार झालर लगी है (आ० ४०१)[१५४] । बायी ओर की दासी का पहरावा कुछ थोडे फरक के साथ वैसा ही है । इसकी लाल टोपी के साथ एक पीठ पर लहराता रुमाल लगा है जिसका एक सिरा कमर मे खोस दिया गया है । कचुक के कधो, मोहरियो और गले पर समूर लगा मालूम पडता है । लबे घाघरे की चुनी- झालरे हल्के हरे और नीले रग की है (आ० ४०२) ईरानी सरदार के साथ बैठी हुई स्त्री की वेश-भूषा दासियो के वेश-भूषा सी ही है।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र के मध्य मे एक दासी जो अपनी वेश-भूषा से विदेशी मालूम पडती है, फुल्लो से अलकृत कचुक तथा गोल टोपी, जिसके छज्जे ऊपर मुडे है और जिसके चोटी पर कुब्बा है, पहने है[१५५] । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक सेविका कचुक और रुमाल, जिसके दोनो छोरो की गट्ठी गले पर लगी है, पहरे है (आ० ४०३)[१५६] । उसी चित्र मे एक दूसरी दासी दो बगल मे लगे हुए तस्मो वाली टोपी पहरे है (आ० ४०४)।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक विदेशी दासी काही रग की एक अधबहिया जाकेट पहने है जो कमर तक चपकी है और जिसका आगा और कोने खुले हुए है (आ० ४०५)[१५७] । जाकेट के कपडो पर चौफुलियो की नकाशी है। उसका लहगा शायद धारीदार रेशमी कपडे से बना है । उसकी खौदनुमा टोपी के किनारे घुडीदार है ।

२ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक स्त्री छोटे बाहो वाली नीले रेशमी कपडे की बनी कसी चोली, जिसकी मोहरियो पर मोतियो की झालर है, पहने है[१५८] । दक्षिण में अब भी चोली की मुहरियो पर सोने के दानो की लडें लगाने की प्रथा है । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में हम एक दासी के पहरावे मे तीन कपडे यथा, एक कसी चोली जिसके ऊपर शरीर के अंगो के सुगमता से सचालन के लिए बगलो मे ऊपर से नीचे तक कटा हुआ सुदर कचुक है, तथा अंग सौष्ठव को दिखलाती एक साडी अथवा घघरी है (आ० ४०६)[१५९] । इसी लेण मे एक दूसरी जगह हम इसी तरह के एप्रन से मिलने जुलने वस्त्र देख सकते है जो सफेद जमीन पर काले सितारो वाले कपडे से बना है । इसमें शरीर की बगले दिखलायी देती है[१६०] ।

१६ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे पखा हाकने वाली स्त्री एक स्तनपट्ट और

१५४—याजदानी, वही, प्लेट० ३१ ए०

१५५—हैरिंगम, वही, प्लेट० २८, ३१

१५६—मुकुल दे, अजटा एण्ड बाग १८० पृ० के सामने लगा प्लेट

१५७—हैरिंगम, वही, प्लेट० ८१, प्लेट० ७

१५८—याजदानी, वही, भा० २, प्लेट० ८ पृ० ८

१५९—वही, २ प्लेट० १७ ए०

१६०—वही, २ प्लेट० २५

घघरी पहने है (आ० ४०७)[१६१]। उसी दृश्य मे मृतप्राय राजकुमारी के पास बैठी एक दासी अधबहिया जाकेट पहने है।

१६ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक बैठी हुई दासी घुटनो तक पहुचता कसा हुआ अधबहिया कचुक पहने है (आ० ४०८)[१६२]। दवा तैयार करती हुई एक दूसरी दासी छाती को ढकता हुआ और शायद और नीचे की ओर जाता हुआ अधबहिया कचुक पहने है, पीछे का निचला भाग अनावृत मालूम पडता है (आ० ४०९)।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक स्त्री पारदर्शी कपड़े की बनी घघरी और वैकक्ष्य पहने हुए उपवन में घूम रही है (आ० ४१०)[१६३]।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे बुद्ध की सेवा में निरत एक स्त्री बिना कधो और बाहो वाला धारीदार कचुक और रत्न जटित छ पहली टोपी पहने है (आ० ४११)[१६४] उसी दृश्य में एक दूसरी स्त्री चौखूटी टोपी (आ० ४१२) और एक तीसरी स्त्री घाटदार (tiered) टोपी पहने है।

अजटा मे एक जगह जमीन पर पीठ पीछे बैठी एक मध्यवर्ग की स्त्री एक नीचे काले और बिना बाह की चोली पहने है जिसका ऊपरी हिस्सा हरा, पीला, और नीला है और निचला हिस्सा धारीदार (आ० ४१३)१६५।

हाथी पर सवार स्त्रियो की वेश-भूषा

बाग के भित्ति-चित्र मे एक जगह हाथी पर सवार स्त्रिया दिखलायी गयी है। पृष्ठिका में हाथी का महावत सुनहरी धारियो वाली जाघिया पहने है। तीन स्त्रियो मे एक जो महावत के पीछे बैठी है किमखाब की बनी छोटी बाहो वाली जिसकी मुहरियो पर हरी गोट लगी है पहरे है। चोली का आगा स्तनो और पेट को ढकता हुआ नीचे बढता हुआ जाघो पर समाप्त होता है। इसका निचला भाग अर्धवृत्ताकार कटा है और दोनो छोर चाकदार है। यह स्त्री एक धारीदार घघरी भी पहनती है। एप्रन की तरह का उपरोक्त वस्त्र अजटा के भित्ति चित्रों में कई बार आ चुका है। तीसरी स्त्री का पहिरावा पहली स्त्री का सा ही है केवल चोली का निचला भाग अर्धवृत्ताकार न हो कर सादा है। इसका कपड़ा नीली चित्तो पड़ा हुआ पीला है[१६६]।

१६१—हेरिंगम, वही, प्लेट० ३५, ३८

१६२—मुकुल दे, वही

१६३—हेरिंगम, वही, प्लेट० ३५, ३९

१६४—वही, प्लेट० ४२, ५६

१६५—याजदानी, वही, १, प्लेट० ११

१६६—मार्शल, दि बाग केव्स, प्लेट० जी०

कधो पर कसीदे का काम है । लबे और सफेद घाघरे में हल्के नीले रग की चूदनदार झालर लगी है (आ० ४०१)[१५४] । बायी ओर की दासी का पहरावा कुछ थोडे फरक के साथ वैसा ही है । इसकी लाल टोपी के साथ एक पीठ पर लहराता रुमाल लगा है जिसका एक सिरा कमर में खोस दिया गया है । कचुक के कधो, मोहरियो और गले पर समूर लगा मालूम पडता है । लबे घाघरे की चुनी-झालरे हल्के हरे और नीले रग की है (आ० ४०२) ईरानी सरदार के साथ बैठी हुई स्त्री की वेश-भूषा दासियो के वेश-भूषा सी ही है।

१७ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र के मध्य मे एक दासी जो अपनी वेश-भूषा से विदेशी मालूम पडती है, फुल्लो से अलकृत कचुक तथा गोल टोपी, जिसके छज्जे ऊपर मुडे है और जिसके चोटी पर कुब्बा है, पहने है[१५५] । उसी लेण के एक दूसरे चित्र में एक सेविका कचुक और रुमाल, जिसके दोनो छोरो की गट्ठी गले पर लगी है, पहरे है (आ० ४०३)[१५६] । उसी चित्र में एक दूसरी दासी दो बगल मे लगे हुए तसमो वाली टोपी पहरे है (आ० ४०४)।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक विदेशी दासी काही रग की एक अधबहिया जाकेट पहने है जो कमर तक चपकी है और जिसका आगा और कोने खुले हुए है (आ० ४०५)[१५७] । जाकेट के कपडो पर चौफुलियो की नकाशी है। उसका लहगा शायद धारीदार रेशमी कपडे से बना है । उसकी खौदनुमा टोपी के किनारे घुडीदार है ।

२ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री छोटे बाहो वाली नीले रेशमी कपडे की बनी कसी चोली, जिसकी मोहरियो पर मोतियो की झालर है, पहने है[१५८] । दक्षिण में अब भी चोली की मुहरियो पर सोने के दानो की लडें लगाने की प्रथा है । उसी लेण के एक दूसरे चित्र मे हम एक दासी के पहरावे मे तीन कपडे यथा, एक कसी चोली जिसके ऊपर शरीर के अंगों के सुगमता से सचालन के लिए बगलो मे ऊपर से नीचे तक कटा हुआ सुदर कचुक है, तथा अग सौष्ठव को दिखलाती एक साड़ी अथवा घघरी है (आ० ४०६)[१५९] । इसी लेण मे एक दूसरी जगह हम इसी तरह के एप्रन से मिलने जुलने वस्त्र देख सकते है जो सफेद जमीन पर काले सितारो वाले कपडे से बना है । इसमें शरीर की बगले दिखलायी देती है[१६०] ।

१६ नं० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे पंखा हाकने वाली स्त्री एक स्तनपट्ट और

१५४—याजदानी, वही, प्लेट ३९ ए०

१५५—हेरिंगम, वही, प्लेट २८, ३१

१५६—मुकुल दे, अजटा एण्ड बाग १८० पृ० के सामने लगा प्लेट

१५७—हेरिंगम, वही, प्लेट ८५, प्लेट ७

१५८—याजदानी, वही, भा० ३, प्लेट ८ पृ० ८

१५९—वही, २ प्लेट १७ ए०

१६०—वही, २ प्लेट २५

घघरी पहने है (आ० ४०७)[१६१]। उसी दृश्य मे मृतप्राय राजकुमारी के पास बैठी एक दासी अधवहिया जाकेट पहने है।

१६ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक बैठी हुई दासी घुटनो तक पहुचता कसा हुआ अधवहिया कचुक पहने है (आ० ४०८)[१६२]। दवा तैयार करती हुई एक दूसरी दासी छाती को ढकता हुआ और शायद और नीचे की ओर जाता हुआ अधवहिया कचुक पहने है, पीछे का निचला भाग अनावृत मालूम पडता है (आ० ४०९)।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री पारदर्शी कपड़े की बनी घघरी और वैकक्ष्य पहने हुए उपवन में घूम रही है (आ० ४१०)[१६३]।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे बुद्ध की सेवा मे निरत एक स्त्री बिना कधो और बाहो वाला धारीदार कचुक और रत्न जटित छ पहली टोपी पहने है (आ० ४११)[१६४] उसी दृश्य में एक दूसरी स्त्री चौखूटी टोपी (आ० ४१२) और एक तीसरी स्त्री घाटदार (tiered) टोपी पहने है।

अजटा में एक जगह जमीन पर पीठ पीछे बैठी एक मध्यवर्ग की स्त्री एक नीचे काले और बिना बाह की चोली पहने है जिसका ऊपरी हिस्सा हरा, पीला, और नीला है और निचला हिस्सा धारीदार (आ० ४१३)[१६५]।

हाथी पर सवार स्त्रियो की वेश-भूषा

बाग के भित्ति-चित्र मे एक जगह हाथी पर सवार स्त्रिया दिखलायी गयी है। पृष्ठिका मे हाथी का महावत सुनहरी धारियो वाली जाघिया पहने है। तीन स्त्रियो मे एक जो महावत के पीछे बैठी है किमखाव की बनी छोटी बाहो वाली जिसकी मुहरियो पर हरी गोट लगी है पहने है। चोली का आगा स्तनो और पेट को ढकता हुआ नीचे बढता हुआ जाघो पर समाप्त होता है। इसका निचला भाग अर्धवृत्ताकार कटा है और दोनो छोर चाकदार है। यह स्त्री एक धारीदार घघरी भी पहनती है। एप्रन की तरह का उपरोक्त वस्त्र अजटा के भित्ति चित्रो में कई बार आ चुका है। तीसरी स्त्री का पहिरावा पहली स्त्री का सा ही है केवल चोली का निचला भाग अर्धवृत्ताकार न हो कर सादा है। इसका कपड़ा नीली चित्ती पड़ा हुआ पीला है[१६६]।

१६१—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५, ३८

१६२—मुकुल दे, वही

१६३—हेरिंगम, वही, प्ले० ३५, ३९

१६४—वही, प्ले० ४२, ५६

१६५—याजदानी, वही, १, प्ले० ११

१६६—मार्शल, दि बाग केव्स, प्ले० जी०



४१०



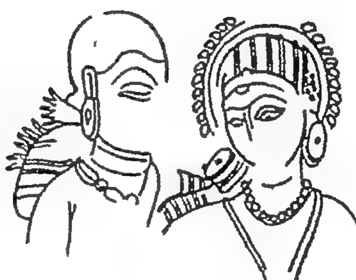
४११



४१२



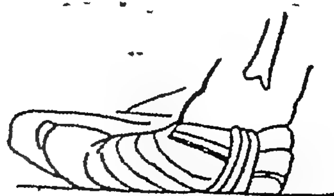
४१३



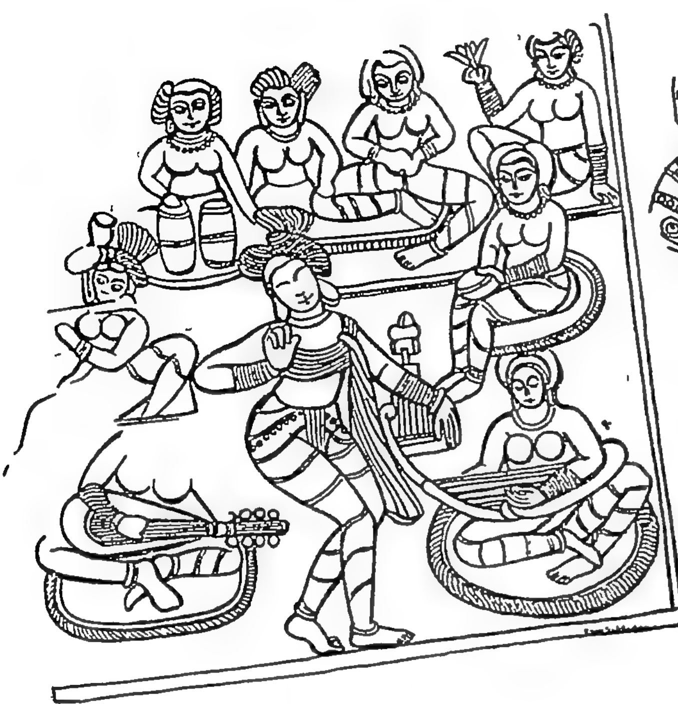
४१४



४१५ ए०



४१५ बी०


४१६


४१७


४१८


४१९


४२०


४२१

अजंटा मे स्त्रियो के शिरोवस्त्र और मुकुट

अजटा के भित्ति-चित्रो में प्राय स्त्रिया नगे सिर होती है, पर रानी और दूसरी उच्च श्रेणी की महिलाये कभी कभी मुकुट पहनती है । कुछ सेविकायें टोपिया भी पहनती है । कभी कभी चित्रकार हमे स्त्रियो के स्थानिक शिरोवस्त्रो की भी झलक दे देते है । १७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक स्त्री, जिसके तन पर यो ही मामूली सा कपडा है, एक छपे अथवा कसीदा किये रूमाल से अपना सिर ढके है[१६७] । २ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र में एक स्त्री धारीदार और कामदार टोपी पहने है। फीतो की तरह कधो पर लटकती चिद्धिया शायद टोपी की झालर की प्रतीक है (आ० ४१४)[१६८] । इस तरह का शिरोवस्त्र अजटा के भित्ति-चित्रो और एलोरा की मूर्तियो मे काफी आता है ।

जगली स्त्रियो की वेश-भूषा

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक जगली स्त्री पर्णनिर्मित घघरी पहने दिखलायी गयी है । इस घघरी की बनावट बहुत सादी है, केवल पत्रो सहित टहनिया एक मनको की तिलडी करधनी से आगे पीछे लटका दी गयी है (आ० ३२४)[१६९] ।

ग्रामीण स्त्रियो की वेश-भूषा

अजटा की कला का सबध राजमहलो से है और इसमें ग्रामवासियो के चित्र कम ही आते है । अजटा के भित्ति-चित्रो मे ग्रामीण स्त्रिया छोटी साडी पहनती है । न० २ की लेण के एक भित्ति-चित्र मे अपने प्रसाधन मे निरत ग्रामीण स्त्रिया सकच्छ धारीदार छोटी साडिया पहनती है । उनके बाल या तो एक रूमाल से ढके होते है या फीते से बधे होते है (आ० ४१५ ए० बी०)[१७०] ।

नाचने, बजाने और गाने वाली स्त्रियो की वेश-भूषा

ग्वालियर रियासत के पवाय नामक स्थान से मिले हुए एक प्राक्-गुप्त या नाग-युग के उतरग मे एक नृत्य का दृश्य अकित है । इस अर्ध चित्र मे आयी वेश-भूषा का काफी महत्त्व बुदेलखड मालवा की वेश-भूषा के इतिहास के लिए है। इस दृश्य मे आठ बजाने वाली मध्य में एक नर्तकी को घेर कर बैठी है । यह नर्तकी घुटनो तक की धोती पीछे लाग मार कर पहने है। साडी अथवा धोती पहनने का यह ढग बुदेलखड मे अभी तक प्रचलित है । उसकी छाती बाये कन्धे पर सकरमुद्धी लगे वैकक्ष्य से ढकी है । उसका केश वेश फेरवटदार है ।

१६७—हेरिंगम, वही, प्लेट०३५

१६८—याजदानी, वही, भा० २, प्ले० ३२ तथा ३३वी

१६९—हेरिंगम, वही, प्ले० २७, २९

१७०—प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम की प्रतिकृति से

पृष्ठिका में बजानेवालियां तथा नर्तकी तरह तरह की धोतियां और सामने बधने वाली चोलियां पहने है (आ० ४१६)[१७१]।

१७ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे मजीरा बजाती हुई एक परियो का गिरोह दिखलाया गया है। वे साड़ियां और सुदरता से बधे कमरबद पहनती है और उनके दुपट्टे पीछे फड़कते है[१७२]। १ न० की लेण के एक भित्ति-चित्र मे एक गायक एक लबा नीला और धारीदार रेशम का बना कचुक पहने है। धारियो के बीच में हम पेचक, वृषभ और हसो की आलकारिक आकृतियां देखते है (आ० ४१७)[१७३]। ये अलकार पडी पट्टियो मे है जिनके दोनो ओर वृत्तो से सजी पट्टियां है। उसी गरोह मे एक नर्तकी चूदरी का बना कचुक पहनती है।

१ न० की लेण के महाजनक जातक वाले भित्ति-चित्र में नर्तकी एक लबा, गहरे भूरे रंग का वृत्तों से अलकृत पूरे बांह का कचुक पहरे है (आ० ४१८)[१७४]। इस कचुक के ऊपर एक एप्रन जैसा वस्त्र है जिसके पक्ष अग सचालन के सुभीते के लिए ऐसे कटे है कि उसके निचले कोने अलग से झूलते है[१७५]। उसका लबा घाघरा बैगनी, हरी और पीली धारियो से सुसज्जित है जिन की सफेद जमीन पर नग बने है। ढोल बजाने वाली की छाती एक धारीदार स्तनपट्ट से, जिसकी गट्ठी पीछे बधी है और छोर नीचे लटक रहे है, ढंकी है। उसकी जांघिया अथवा घघरी के बीच में एक नग जवाहिर से सुसज्जित पट्टी लगी है (आ० ४१९)।

बाग के एक भित्ति-चित्र में गायिकाओ के दो गिरोह दिखलाये गये है। बायी ओर के गिरोह में एक नर्तकी को चारो ओर से घेर कर सात बजाने वालियां खडी है। नर्तकी एक पूरे बांह का हरियाली लिए हुए घुटने तक पहुंचता पीले रग का कचुक, जो वृत्त-बिंदु अलकार से सुसज्जित है, पहने है। कंचुक चाकदार है और उसके मुहरियो और चाकदार किनारो पर गोट लगी है। चौड़ा कोणाकार गला लगता है पीछे से पोशाक की सुन्दरता बढाने के लिए लगा दिया गया था। पाजामा हरियाली लिए हुए पीली धारियों से सुसज्जित है और उसका कचुक से खूब जोड बैठता है (आ० ४२०)[१७६]। उसका सिर सुनहली धारियो वाले एक रूमाल से ढका है। टिपरी बजाने वाली, जो ढोल बजाने वाली के बगल में खडी है, के बाये कधे पर एक नील और सुनहरी धारियो वाला दोहरा रूमाल है (आ० ४२१)। उसके बगल में खडी एक दूसरी टिपरी बजाने वाली हरी और नीली धारियो वाला घाघरा पहने है। उसका कचुक का बदामा गला खुला है (आ० ४२२)। नर्तकी के दाहिनी ओर खडी तीन टिपरी बजाने

१७१—एन० रि० आ० डि०, ग्वा०, १९३०-३१, प्ले० ८

१७२—हेरिंगम, वही, प्ले० ५७

१७३—याजदानी, वही, भा० १, प्ले० १० ए

१७४—वही, प्ले० १२-१३

१७५—इस वस्त्र की तुलना सारनाथ से मिले गुप्तयुग के उतरग पर एक नर्तकी के वस्त्र से कर सकते हैं। साहनी, वही, प्ले० २७

१७६—मार्शल, वही, प्ले० डी०

वालियो में बीच वाली एक आस्मानी रग की अधबहिया कचुकी पहने है जो छाती को ढाकती हुई घुटनो तक पहुचती है । घघरी में हरी धारिया है और उनके बीच की सादी पट्टियो पर कटकुट है (आ० ४२३ ए० बी०) ।

बजाने वालियो और नर्तकी के दूसरे गरोह में बैठी हुई नर्तकी पहले गरोह की नर्तकी जैसा ही पहरावा पहने है । उसके पीछे खडी एक बजानेवाली फाख्तई रग की चोली जो शायद रुपहले किखाब की बनी है पहरे है । उसकी एप्रन की काट पहले गिरोह की एक गाने वाली के कचुकी की काट जैसी है ।

बाग के एक और भित्ति-चित्र मे एक स्त्री गायिकाओ का गिरोह है उसमे सबकी सब चोलिया पहने है । बीच वाली गायिका सफेद चित्ती वाली हरी चोली पहने है । उसके बायी ओर वाली नर्तकी मुकुट पहने है और उसका जूडा एक सफेद रूमाल से ढका है, उसके नीचे कचुक पर एक एप्रन की शकल वाला वस्त्र है । नर्तकी की बगल वाली गायिका आसमानी रग की अधबहिया चोली पहने है[१७७] ।

कपड़ो पर आये हुए अलंकार

अभी तक तो हम पहरावो पर आयी हुई नक्काशियो का वर्णन करते आए है लेकिन अजटा के भित्ति-चित्रो में अकित परदो खोलियो इत्यादि पर भी नक्काशिया मिलती है। इनका इसलिए अधिक महत्व है कि गुप्त-युग की कपड़ो पर की नक्काशिया और कही देख नही पडती । न० १७ की लेग के एक भित्ति-चित्र मे हम दो परदे देखते है । उनमें से एक परदा हरे रग का है और सफेद बिंदुओ की पक्तिया से पट्टियो मे विभाजित है । उस पर फूल की नक्काशिया भी बनी है । दूसरे परदे पर गेरुए रग की धारिया है और सफेद जमीन पर नीले फूलो की पखडिया बनी है (आ० ४२४)[१७८] । इसी लेण के एक दूसरे चित्र मे धारीदार कपडे की गद्दी है जिसमे एक पट्टी छोड कर दूसरी पट्टी मे शतरज का अलकार बना है (आ० ४२५)[१७९] । उसी लेण के एक तीसरे चित्र में, जिसमे काशिराज सुनहरे हस की पूजा करते दिखलाये गये है, कई थानो के परदे लटके है । काशी बहुत प्राचीन काल से ही कपडे का केन्द्र था और इसीलिए काशी सबधी दृश्य में नक्काशीदार कपडो का प्रदर्शन कोई आश्चर्यजनक बात नही है । एक टुकडे में तिरछी पक्तियो में सजे फुल्ले है (आ० ४२६)[१८०] । दूसरे में खिले फूल है और तीसरे मे पेचको की लड़िया है ।

१ न० की लेण के एक महल के चित्र में भी हम कुछ कपडो पर बनी नक्काशिया

१७७—वही, प्ले० सी०

१७८—हेरिंगम, वही, प्ले० १, १

१७९—वही, प्ले० २२, २४

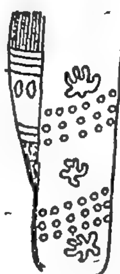
१८०—वही, प्ले० २५, २८

पाते है[१८१]। स्त्रिया धारीदार कपड़ो की वनी घघरियाँ पहने है। एक हल्के रंग के कपडे से वनी रानी की घघरी पर कत्थई रग की पड़ी हुई धारिया है जिन पर तीर के फलो जैसे अलंकार, जो पक्षियो के रूढिगत आकार भी हो सकते है, वने है (आ० ४२७)। रानी के ठेठ वायी ओर की स्त्री की घघरी पर वृत्त बने है। पृष्ठिका मे वायी ओर खडी चामरग्राहिणी एक हल्के हरे रग की घघरी, जिस पर कत्थई रग की धारिया पडती है, पहने है। उसी लेण के एक महल के चित्र में गद्दिया चौपतियो से सजे कपडे से वनी है (आ० ४२८ ए० वी०)[१८२]। पुन उसी लेग के एक चित्र में दो तकियों पर निम्नलिखित नक्काशियाँ वनी है[१८३]। (१) चापेय की तकिया का करडा सुनहरा अथवा रुपहला है जिस पर रेशम तथा सुनहले या रुपहले तार से छोटे छोटे सितारे बने है। (२) रानी की गद्दी के गहरे रग के कपड़े पर सितारे अथवा चौपतिया वनी है।

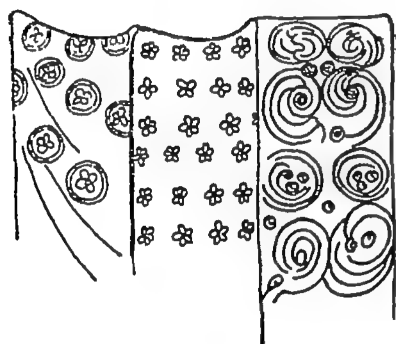
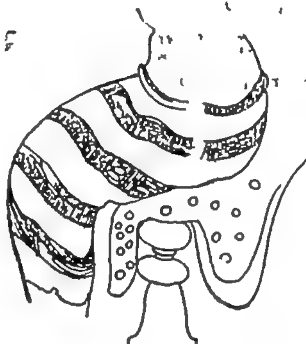
२ नं० की लेण के एक चित्र मे गद्दी के कपडे पर शतरंज का अलंकार जिसके कोनो पर सितारे है वना है[१८४]।

१८१—वही, प्ल० १४, १६
१८२—वही, प्ले० २८, ३७
१८३—याजदानी, वही, भा० १, पृ० ५९, प्ल० ३४ ए० १
१८४—वही, भा० २, प्ले० १२




४२२ ४२३ ४२३ ४२४ ४२५



४२६ ४२७ ४२८ ४२८

अनुक्रमणिका

प्रा० ३०

कवर्ग

चवर्ग

टवर्ग

तवर्ग